आंगन गलियां चौबारे

रामकुमार 'भ्रमर'

मैं और यह उपन्यास

देश, काल, समाज और जीवन को देखने पहचानने का सबसे बढ़िया तरीका है—निरक्षर शिक्षितो और साक्षर अशिक्षिता के बीच एक साथ जीना।

उपरोक्त शब्द किस मित्र से सुने हैं या कहा पढे हैं—कह नही सकता, पर इतना जानता हू कि मैंने पिछले लगभग बीस वष उक्त दो पक्तियो पर ही जिये हैं और लेखक के नाते निरतर महसूस करता रहा हू कि मुझे इससे लेखन मे बहुत शक्ति, सहयोग और नये-नये विषय मिले है।

आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक स्तरा पर विभिन्न सघर्षों या सुविधाओ मे जीन वाले अनेकानेक लोग मेरे मित्र हैं, पर व्यक्ति से सहज व्यक्ति स्वर पर भेंट करके मुझ जितना लिखने के लिए मिला है और जितना समझने के लिए मिला है—पुस्तको या लेखक मित्रो से नही। विभिन्न वर्गों और पेशो के लोग मेरा मित्र-परिवार है और यही कारण है कि मेरे बहुत से लेखक मित्रो, प्रकाशको को मुझसे शिकायत रहती है कि सामान्यत मैं समारोहा, गोष्ठियो और कॉफी हाउसो की शोभा का सुख लाभ नही उठा पाता। होते होते अब यह स्वभाव भी बन गया है, आदत भी। कभी कभी इससे तकलीफ भी होती है, अखबारी चर्चा और समीक्षकीय लाभ भी खोने पडते हैं, पर यह जानकर सन्तोष भी होता है कि मैं लिख पाता हू और मैंने कुछ काम किया—यह भाव मेरे लिए जितना सुखकर है, उतना यह नही कि 'मैंने अमुक को गोष्ठी मे इस तरह जमा दिया और उस तरह उखाड दिया' का साहित्यिक सदानन्द।

यदा-कदा ऐसे साहित्यिक-सदानन्दी मित्रो से यह भी सुनने को मिलता है कि 'आप तो मिलते ही नही ? कभी घर भी नही बुलाते या अमुक समारोह मे आप काड भेजने पर भी नही आये ?' तब सहज भाव से आरोप शिरोधाय करके मुसकराकर क्षमा माग लेता हू। तत्काल मुझ पर आरोप आता है—

'आप तो बहुत लिखते है ! इतनी इतनी पुस्तकें ? मुझे हैरत होती है, इस तरह के प्रश्नकर्ता मिला पर। स्पष्टीकरण आता है— 'हमारे लिए तो इतना लिखना कठिन। या या कहिए कि लिखने की इच्छा ही नहीं होती या कि लिखा ही नही जाता !' यह और ज्यादा हैरत की बात है मेरे लिए। क्या हिन्दुस्तान जैसे देश म जहा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नितात वयक्तिक और धार्मिक समस्याओ के अम्बार मौजूद हैं—वहा मेरे सहधर्मी लेखको से लिखत नही बनता ? या कि विषय नही मिलते ? या यो कि लिखा ही नही जाता ? या कि समय नही है ? या जानबूझकर कम लिखने और कम लिखकर प्रचार माध्यमो से उसका शोर मचाना ही उनका स्वभाव बन चुका है ? कितने कितने कारण हो सकते है इसके ?

किसी बार इनमे से किसी कारण को इस तरह के लोगो पर मैं लाग नही कर पाया हू और मुझे हर बार यही लगता है कि जिस कमहीनता और सुविधाभोगी मानसिकता से विभिन्न स्तरो पर देश कमजोर हो रहा है, उसम कता स्तर पर भी देश का यही कष्ट है।

बहरहाल इन साक्षर अशिक्षितो या कुछ जरूरत से ज्यादा ही सतक और समझदार व्यवहारिको से मुझे हर क्षेत्र म भय लगा है। इस भय ने मुझे इस तरह के हमपेशाओ से दूर रखकर मुझ पर उपकार ही किया है। यही उपकार है कि मैं विविध विषयो और पात्रो से अपन लिए कथा विषय ला सका हू।

गज यह कि समाज, जीवन और देश काल को देखने समझने मे मुझे स्वय को देखन और अपने बारे म ईमानदारी से कह पाने की प्रेरणा और शक्ति भी मिली है। और यह शक्ति मैंने उस समय महसूस की जब इस उपन्यास का जन्म मेरे भीतर हुआ। जो देखा, उससे कही ज्यादा जो पिछले तीन दशको म विभिन्न हैसियतो, स्तरो और पात्रो के बीच रहकर जानने को मिला—वही इस उपन्यास की धरती है।

स्वतन्त्रता से पूव और स्वतन्त्रता के तुरत बाद, जिस उम्र, जिस सोच और जिस जिज्ञासु भाव से मैं स्वय परिवतनो को देखता, भोगता रहा हू और मेरे गिद के मर जाने पहचान पात्रो न भोगा है—वही सब प्रस्तुत कृति की आत्मा भी है, कथानक भी। सुनहरी, मोठे बुआ, सहोद्रा, रेशमा, केशर मां,

जया, मिन्नी, चन्दनसहाय सभी पात्र जितने जाने-पहचाने अजित के लिए हैं—उतने ही जाने पहचाने मेरे लिए भी है। मैंने कोशिश की है कि वे सारे परिवर्तन इसमे उसी रूप मे प्रस्तुत हो, जिस रूप में स्वतन्त्रता के बाद मेरे देश के औसत कस्बों या छोटे नगरों में हुए हैं। कपड़े, वाहन, मकानों के डिजाइन, आसनों की जगह आयी डाइनिंग-टेबलों के बावजूद जिस विशिष्ट मानसिक धरातल पर आज तीन दशक बाद के भारतीय नगर महानगर का आदमी जीता है—वह उपन्यास मे परिलक्षित हो—यह मेरा प्रयत्न रहा है।

सामान्य मानवीय गुण दोषों के साथ साथ पात्र की अपनी मानसिकता के अनुसार उसके द्वंद्व का चित्रण हो सके और उसमें किसी तरह लेखकीय मानसिकता और बौद्धिकता भाषा पर हावी न हो, यह भी मैंने कोशिश की है और यथाशक्ति साहस बटोरता रहा हूँ कि जो जैसा है, उसी तरह रह सके। उस पर आदर्श का मुखौटा ओढ़े हुए व्यक्ति, भाषा या थोथा आदर्शवादी विचार हावी न हो जाय। यही कारण है कि इस उपन्यास के किसी अपराधी का अपराध के पीछे भी तर्क है, आदर्श के नाम पर उसका अपराधी हो जाना और केवल अपराधी रहना ही मेरे लिए उस तरह सहज और स्वाभाविक नहीं हो सकता था, जिस तरह की कल्पनाएं हमने आदर्श का तथाकथित चेहरा लगाकर कर रखी हैं।

इन तीन दशकों के दौरान विभिन्न स्तरों पर इस देश की यात्रा कुछ इसी तरह की सतही, धोखेबाज और स्वयं श्लाघनीय रही है।

हो सकता है कि मेरे सोचने समझने और उस तरह लिखने की कोशिश से मेरे कुछेक साक्षर मित्रों को कष्ट हो, जिनकी मान्यता केवल स्त्री को न देखकर मां, बहिन, बेटी को देखते हुए होनी है उपन्यास या साहित्य का मतलब केवल आदर्श-भरे भाषण हैं जिनका जीवन के वास्तव्य से कोई सम्बन्ध नहीं और व्यक्ति अपने आपमें कुछ नहीं है, जो कुछ है वह समाज के नाम पर एक भीड़ है। अपने इस तरह के मित्रों से मैं सहमत नहीं हो सका हूँ। शायद इसका कारण यह है कि मैं स्वयं केवल लेखक या समाज जन्तु ही नहीं, व्यक्ति-स्तर पर भी विभिन्न स्थितियों में गुजरा हूँ, जिया हूँ, जीता हूँ। मैंने अपने आपको किसी पल पति रूप मे जिम्मेदार महसूस किया है, किसी पल पुरुष रूप में, किसी पल महज एक ऐसे आदमी के नाते जिसके माथे पर एक

पूरे परिवार का बोझ है और किसी पल अकेले आदमी के नाते जो इस भ्रष्ट व्यवस्था, ढोंगी आदर्शवादियो और भारी भीड के बीच अपने वांछित अधिकार और प्राप्तव्य को न पाकर कुठित भी होता है, विद्रोही भी होता है और लाचार भी होता है। और मुझे लगता है कि इन समूची स्थितियो के साथ जुडे रहकर ईमानदारी से यदि लिखा जायगा तो व्यक्ति, समाज, देश विभिन्न स्तरो पर जूझते सही आदमी की तसवीर खडी होगी। शालीनता, सौजन्य और भद्रता का नाम लेकर धोखेबाजी से भरी स्थितियो, भाषा, कथानक, नारो और तथाकथित कृत्रिम राजनीतिक सास्कृतिक कल्पनाओ की सृष्टि भले हो जाये— सत्य और नीर क्षीर की शाश्वत कला नही उभर सकती। यदि ऐसा कुछ किया जाता है और किया जा रहा है तो वह एक झूठे आदमी की रचना है। झूठ ने कभी किसी व्यक्ति और समाज को चेतना नही दी—गलतफहमियो और अवास्तविकता के कमहीन अधेरे भविष्य मे भले फेंक दिया हो। एक ऐसी हिन्दी भावुक फिल्म जिसमे भावना, त्याग, तपस्या, आदर्श, कुरबानी आदि आदि फार्मूला की भीड जुटायी जाय, मेरा लेखकीय मिशन नही है।

और मैं मानता हू कि जो व्यक्ति, विचार, प्रचार और आधार इस तरह के झूठे और कल्पित आदमी की रचना करता है—वह समाज और देश सापेक्ष्य नही हो सकता। मेरे विचार मे वह केवल तात्कालिक आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक उपलब्धियो को पाने का माध्यम भर है, इससे अधिक कुछ नही।

मनुष्य की शाश्वत सत शक्तियो या मूल्यो की तरह ही मानवीय दोष भी शाश्वत है। केवल सद की शाश्वतता यदि मान ली जाय तो ससार चक्र पाप और अपराध से मुक्त होकर मानवीय ही नही रह जायेगा। यह ससार है मानव हैं, इसलिए गुण भी हैं दोष भी। उसी तरह जिस तरह शरीर है और उसके शरीर सुख हैं अत शरीर दोष, दुख व्याधिया भी उसी तरह अस्तित्व मे है जिस तरह सुख हैं। और किसी भी लेखक या कलाकार का यह पवित्र धर्म है कि वह समय सत्य का चित्रण निरूपण करे। समय-सत्य का निरूपण निरतर चली आयी मानव सभ्यता की प्रगति का अनवरत क्रम है। एक वैज्ञानिक खोज का सिलसिला। कोई भी वैज्ञानिक खोज विना विरोधी

पहलू के नही होती। किसी भी पाजिटिव को बिना निगेटिव के नही बनाया जा सकता। सत्य की पहचान असत्य को जतलाये बगैर नही हो सकती। रावण के बिना राम, कस के बिना कृष्ण, कौरवो के बिना पाडव, या असत के बिना सत् की स्थापना, कल्पना महज खुद और समाज से धोखा देते हैं। सत्य की स्थापना कलाधम है, पर यह कलाधम तभी निर्वाह किया जा सकता है, जब सत्यासत्य का चित्रण किया जाये।

पर एक वडा वग है जिसने यह सोचा-समझा, योजनाबद्ध सत विचार बना रखा है कि शाश्वत के नाम पर केवल सत्यो का उपदेश करते रहना भर ही कला है, सस्कृति रक्षा है, और सही मायने मे समाज रचना का पुनीत कम है। मैं व्यक्ति और लेखक के नाते ऐसे विचार से कभी सहमत नही रहा, रहूगा भी नही। यही कारण है कि मैं अपनी किसी भी रचना मे उपदेशक नही रह पाया।

इस देश मे ही क्यो, समूचे ससार और मानव सभ्यता के इतिहास म ढोगियो को पूजने की परम्परा रही है। साहित्य, राजनीति और समाज-क्षेत्र से लेकर आर्थिक और धार्मिक स्तर पर भी यही होता है और इसके साथ यह भी होता रहा है कि कटु सत्य के साथ विवेचित सही मूल्यो की ओर बढने वाले व्यक्तियो का बहुविधि शोषण, अवमानना यहा तक कि साक्षर अशिक्षितो से शिक्षोपदेश भी सुनने पड़े हैं—विभिन्न स्तरो पर क्षति भी उठानी पडी है। पर यह क्रम निरतर है, रहा है, रहेगा असल मे यह भी सत असत के कभी न खत्म होने वाले सघष की अतहीन महागाथा है।

इन विचारा पर ही इस उपन्यास की रचना हुई है और इसका हर पात्र अपने वग, स्थितियो और क्षेत्रो मे वही सामान्य मानव है जो गुण-दोष का पुतला है। वह ढोगियो के उपदेश का उद्धरण नही।

दस वष पूव जब मेरा पहला वृहद उपन्यास 'कच्ची पक्की दीवारें' प्रकाशित हुआ तो अनेक पण्डित बन्धुओ और समीक्षको ने न सिफ उसे अश्लील करार दे दिया था, वल्कि अखवारो मे भी खासी भाषणबाजिया की थी, फिर जब वही उपन्यास 'अखिल भारतीय प्रेमचन्द पुरस्कार' से सम्मानित हो गया तो सहसा उन्हाने भूल-सुधार कर लिया कि पहली बार मे समझ नहीं आया। अत मैं इस समझ के फेर के बारे मे आश्वस्त हू। हो सकता है

कि यह वृहद उपन्यास भी पहली बार में समझ न आ सके, अतः मैं अग्रिम निवेदन करना आवश्यक समझता हूं कि दूसरी बार पढ़कर ही अपनी कृपापूर्ण सम्मति दें। न भी देंगे तो यह उपन्यास फिर से पाडुलिपि तो बनने से रहा। मैं इसी पर सन्तोष कर लूंगा कि जिन पाठकों की मुझसे रचना पेक्षाए रहती है उनके प्रति मैंने अपना कर्म और धर्म पूरा किया।

देशी विदेशी विचारकों, लेखकों और उपदेशकों के उद्धरण देकर अपने लेखकीय विचारों को 'सही' का जामा पहनाना भी मुझे नहीं आता अतः जो कुछ मैं लिखता हूं, वह मेरे निजी के सोचे समझे या पढ़े लिखे, देखे-भोगे का निष्कर्ष है। वह मेरा निजी है, अतः उससे मेरे किसी पाठक मित्र को कष्ट हो तो मैं उनका अपराधी हूं और यदि सुख मिले तो उस श्रेय का अधिकार भी मेरा और सिर्फ मेरा ही है।

—रामकुमार भ्रमर

यह चालीस पार की उम्र भी खूब है। सबका जी होता है कि थोडी देर आखें मूदकर सुस्ता लिया जाये। जीवन भर, गणित मे आदमी—कितना ही कमजोर क्यो न रहा हो—अनचाहे ही लेखा-जोखा करने लगता है। जमा-खर्च, जोड बाकी। सब।

बरसो पहले अजित ने अपनी गली के किराना व्यापारी माखन सेठ से जब चालीस पार का गणित सुना था तो हसने का जी हो आया था। मन हुआ था, कहे कि परचूनी की दुकान चलाते चलाते तुम्हे आकडो मे जीने की आदत पड गयी है। यह पागलपन है।

पर आज जब अजित ने खुद चालीस पार किये हैं तो माखन सेठ का वह गणित याद हो आया है। और एक माखन सेठ का ही क्यो, गारा-पत्थर ढोने वाले श्यामा का भी, ग्यारह बच्चो की मा सुरगो का भी, पढी लिखी जया का भी और उसकी चाची के साथ साथ कुन्दन दरजी का भी। सबका गणित। अपनी अपनी तरह जोड बाकी—जमा खर्च। अलग अलग तरह के खाते।

अजित का अपना भी तो एक गणित है—एक खाता।

माखन सेठ बोला था, 'बस, बहुत हुआ। तराजू के पलडो मे दावबाजी करके बहुत कमाया। बेटिया परायी हो गयी। दो बेटे हैं। दो लाख नकद बैंक मे फिक्स डिपाजिट कर दिया है। दोनो सिर्फ ब्याज मे ही जीवन काट सकेंगे। सारा हिसाब किताब जमा दिया। अब कोई चिन्ता नही।"

माखन सेठ के इस चालीस साला गणित ने भविष्य के खाते भी अपनी तरफ से लिख लिये थे। अजित को याद है। देखनेवाले कहते थे, "सच ही तो अब माखन को कैसी चिन्ता ? सब कुछ तो जमा हुआ है, बहुए जेवरो से लदी पटी है दुकान दौड रही है। अब क्या कमी ?"

और अजित को भी लगा था—कुछ भी तो शेष नही रहा। सारा हिसाब

किताब जमा हु गा है। पूरी सडक पडी है। माखन क यटे दौडे च ने जायें—कहीं काई अवरोध, रोक-टोक या खतरा नही।

पर भूल चूक लेनी-देनी हर हिसाब म होती है। हर खाता, हर आकडा इस अजाने का गुलाम।

अजित ने यह भी देखा है—यही—भूल चूक लेनी-देनी। तभी तो माखन सेठ का हर आकडा, हर हिसाब, हर जोड-बाकी गलत हो गया। माखन सेठ के देखते ही देखते चालीस पार के बा‍द उन साला म बेटो के ही हाथ दुकान ब‍द हुई बहुओ के जेवर एक एक कर सिलकन साडिया के साथ ही सरककर ससार पथ मे जा मिले और फिर शेष फिक्स डिपाजिट भी खतम हुआ। दाना बेटे क‍ब शहर से बाहर सरक गये थे—मालूम ही नही पडा। कुछ बरस लोग कहते थे—"कभी इस डेरी की जगह पर माखन किराने वाले की दुकान थी ’

यह हुआ था माखन सेठ के गणित का नतीजा। पर इससे गणित करने और खाते रखने की आदत का काई सरोकार नही। वह आदमी का स्थायी स्वभाव है। माखन नहीं रहा, जग‍नाथ मजदूर भी नही रहा। पर खाते सबके थ। गणित सबने किया था। अपनी अपनी तरह, अपने अपने हिसाब से।

अजित को याद है—एक हिसाब माखन की तरह जग‍ाथ का भी था। जगना-जगना कहते थे सब। कुम्हार था। हर दिवाली पर ढेर ढेर दीये लिए हुए ग‍ली मुहल्ले आता था। दिय देता। बदले म कुछ सिक्के, कुछ अना‍ज लेता। घरवाली दिवाली पर बनी मिठाइया घर घर लेने आया करती। अजित की मा स ही कहा था जगना ने—'अब ज्यादा क्या करना है हुजूर। चालीस पार कर चुका हू। बेटा सब सम्हाल लेगा। शहर बाहर तक मा‍टी पहुचाते लाते कमर दुख आती है। एक ही डर लगता है कभी कभी, बेटा उमर के जोश मे है। अगर नही सम्हला तो मैं एक तरह से मर ही लूगा।' एक आशा जाडे हुए जग‍ाथ अपने बेटे स कुछ दुखी था। वही यया, उस दयकर सब दुखी होते। लडका था जवान। लच्छेदार बाल बनाता, महगा तल लगाता और दिन में चार चार फिल्म देखा करता। कभी-कभी सुनते थ कि मा यार स जूझ भी जाता है। गिरदार लिया

करता जगन्नाथ। उसकी इच्छा थी जल्दी जल्दी गधे सम्हाल ले और उसे राहत दे, पर बेटा था कि नही सम्हला। फिर एक दिन सुना कि जगन्नाथ कुम्हार का बेटा कही भाग गया। जगन्नाथ और उसकी घरवाली रो-पीटकर रह गये। साल गुजरा। लोग भूल गये। और एक दिन गली मे शोर मचा। जगन्नाथ का बेटा लौट आया। मालूम हुआ कि बम्बई गया था—वहा फिल्मो मे काम करने लगा। उसके हाथ मे सोने की घडी थी। शरीर पर शानदार कपडे। वी०आई०पी० की अटैची लिये हुए एक आदमी पीछे। गजुआ-गजुआ कहते थे उसे। पर उसने फिल्मी नाम गजेन्द्र कर लिया था।

और इस तरह जगन्नाथ यानी जगना का भी चालीस साला हिसाब गडबड हो लिया। अजित ने यह भी देखा है। जिस खाते मे शुरू से हर जगह शून्य ही शून्य रखे थे, वही कलदारो के आकडे रखे दीखने लगे। भूल-चूक लेनी देनी मे देखते ही देखते शून्य से पीछे जाने कितने आकडे जुड गये थे।

जीवन के हाट-बाजार मे घटनाओ का गणित कुछ इसी प्रकार होता रहा है। शायद सदा ही होता रहेगा। यह चिरतन क्रम।

और उसी तरह गणित मे भूल चूक लेनी देनी का क्रम भी चिरतन।

आदमी अपनी जाड-बाकी की आदत नही भूल पाया। ईश्वर अपनी। यो ही चल रहा है ससार।

जया, कुन्दन दरजी, मायादेवी, मास्टरजी, मिन्नी, सीतलाबाई वैष्णवो, कोष्टक बाबू श्रीवास्तव चन्दनसहाय सबके अपने खाते। सबका हिसाब। ये सारे हिसाब अजित ने देखे हैं। फिर उन हिसाबो की जाच परख मे जब भविष्य आगे आया—तो भूल चूक लेनी-देनी भी देखी है। सबसे मजेदार बात यह है कि चालीस पार के इस हिसाब किताब मे वह नीरसता नही है, जो टैक्स के खाता और सरकारी बजटा मे होती है। उल्टे इन हिसाब किताबो की विशेषता है—इनकी रोचकता। इनकी कहानिया। इन सब खातो के आकडे, सब खातो की कहानिया।

जया की भी—कुन्दन की भी। चन्दनसहाय की भी। और खुद अजित की।

लगभग सभी ने अपनी अपनी तरह अपनी कहानियां खातों में दर्ज की थी—वही जगना कुम्हार या माखन सेठ की तरह में चालीस पार का जोड़-बाकी करने के लिए। पर सब कहानियां अपनी-अपनी तरह चलीं। जोड़ में आये भूल चूक लेनी-देनी की ढेर-ढेर गड़बड़ियां हुईं। इन गड़बड़ियों की अपनी कहानियां बनीं।

पर भूल चूक लेनी देनी से पहले—सिर्फ चालीस साल तक दर्ज हुई कहानियां सुनाना जरूरी है। उन्हें सुनाये बिना जीवन-खाते का यह इतिहास अधूरा रहेगा। अजित ने कितनी ही बार ये कहानियां और बही-खाते याद किये हैं पर किसी बार उन्हें सिलसिले से नहीं सजो पाया। शायद कभी न सजो पाता—अगर जया से उस कोठे पर मुलाकात न होती। तीन मंजिला सीढ़ियां पर पीक के धब्बे दीवारें सीलन से भरी हुई—अजब-सी घसम खाती हुई बदबू देती हुई—वहीं तो मिली थी जया। पर यह बहुत बाद की बात है।

मगर जया के गणित में तो पीक, बदबू, सीलन और वह कोठा नहीं था? जया ने तो सुरेश जोशी का आंकड़ा बिठाया था हिसाब में—फिर यह कैसे हुआ? क्या बिलकुल उसी तरह—जिस तरह जगना कुम्हार या माखन सेठ के साथ हुआ था—जरूर किसी भूल-चूक लेनी-देनी ने गणित गड़बड़ा दिया।

वह सारा गणित, आंकड़े हिसाब, खाता, जो जया ने बिठाया था। छोटे से शहर में। उसमें तो शायद दिल्ली शहर ही नहीं था? और दिल्ली में भी जी० बी० रोड?

और अजित के खाते में ही कहां था वेश्या बाजार? क्या उसीकी तरह जया नहीं सोचती होगी?

बेशक! गणित अजित का भी गलत हुआ—वही भूल चूक लेनी देनी का चक्कर!

सब गलत! आज जब अजित याद करने बैठा है तो लगता है सभी के आंकड़े झूठे साबित हुए। सभीके गणित गलत। कितने कितने वर्गों और कितने कितने स्तरों के गणित!

असल मे जया के गणित ने सोचने के लिए बाध्य किया है। थोडा बहुत उस दिन भी सोचा था—जब इसी वेश्या-बाजार की जया की तसवीर उसने नैनीताल के एक स्कूल मे—उस नन्ही सी बच्ची के पास देखी थी। उस पल भी लगभग उसी तरह झटका लगा था, जैसा दो दिन पहले लगा—तब जब अनायास ही जी० बी० रोड स्थित कई मजिला बिल्डिंग की सीढिया चढता, पलकें झपकाता अजित सखाराम इनामदार के साथ एकदम जया के सामने जा खडा हुआ था।

वह एक सजी धजी औरत के साथ दीवान पर अधलेटी पडी हुई किसी बात पर खिलखिला रही थी। सहसा वह बुरी तरह सहमकर अजित को देखने लगी थी। उसके पाउडर से पुते चेहरे पर अनायास ही बदलियो के कई टुकडे तिर आये थे। तेज-तेज भागते हुए।

और अजित भी क्या कम विचित्र स्थिति भोग रहा था? होठो पर पान की मेहदी, नशे मे थम थम कर डूबती पलकें, रेशमी कुरते पर नशे मे कब, किस पल पीक के कुछ छीटे गिर गये थे—अजित को मालूम ही नही।

पर उस समय तो अजित को कुछ भी मालूम नही। और जया को शायद सब मालूम। उसका कापता स्वर अजित के कानो को झिंझोडता हुआ, "तुम? " एक पल थम गयी थी वह। अजित के करीब आकर बुरी तरह सिटपिटाते हुए उसने पूछा था, "तुम—तुम अजित हो ना? आतरीवाले पण्डितजी के लडके!"

अजित चुप। जमकर रह गया था। नशा गायब। ऐसे, जसे अजित को छोडकर अचानक उन्ही सीढियो से दन् दन नीचे उतर भागा हो—जिन्ह चढकर अजित ऊपर आया था।

सखाराम इनामदार ने हैरत से सवाल किया था, "अरे, तुम इन्ह पहले से जानती हो—चन्दारानी?"

चन्दारानी! साहस बटोरकर अजित फिर से देखने लगा था वह चेहरा। यह चन्दारानी है? नही—अजित जानता है कि यह है जया। उसके मास्टर राजनाथ भटनागर की साली। देवनास्वरूप राजनाथ भटनागर की साली। राजनाथ ने शब्दज्ञान दिया है अजित को। एक अजित को ही क्यो—कइयो को! पर जया और यहा?

वह जया तो पाउडर नही लगाती थी ? न लाली, न इतने चमकीले कपडे। और न सीना के इतने उभार आधे शायद नकली—भीतर से कुदरत की असलियत को सहारा देकर उछाले, उठाये गये उभार ! छि छि ! यह जया नही है। हो ही नही सकती।

इनामदार बैठ रहा था। अजित को याद है, करीब दो घण्टे पहले कनाट प्लेस पर घूमत हुए जब अजित ने कहा था, "नही यार ! कुछ और। कैबरे तो पचीसा देख चुका हू मैं। वही, एक औरत का—टुकडे-टुकडे परत परत छिलना ना—मैं ऊब जाऊगा।"

'तब ? तब आओ—एक और जगह चलते हैं।" सखाराम ने उसे बाह से खीचकर थ्री व्हीलर म बिठाल लिया था। इससे पहले कि अजित कुछ कहे, विरोध करे—सखाराम ने ड्राइवर से कहा, "अजमेरी गेट चल यार !'

"अजमेरी गेट—वहा किसलिए ? वहा ऐसा क्या रखा है, जिसम रस हो—जिन्दगी का रग हो ?" अजित बडबडाने लगा था।

"तुम्हें जिन्दगी दिखाने ही तो ले जा रहा हू।" सखाराम इनामदार ने कहा था "लिखना नही आता मुझे। बस, इसी मे सन्तोष कर लेता हू कि तुम्हें नयी नयी रगत दिखाऊ। तुम देखोग तो किसी न किसी दिन लिखोग जरूर।"

"मगर अजमेरी गेट "

"चलो तो !" इनामदार ने उसे चुप कर दिया था और जब वे जी० बी० रोड की ओर बढे तो अनायास ही एक बार फिर अजित ने पूछा था, "कहा लिए चल रह हो ?"

"आओ ना।'

सीढिया चलते हुए अजित को कल्पना होने लगी थी। कुछ कुनमुनाकर जाने से इनकार भी किया था पर सखाराम बोला था, "हद करत हो ! लेखक बने हो। कहानिया ढूढना और जीवन देखना तुम्हारा पेशा है "

"पर यार यह जगह "

"छोडो भी ! तुम्हीने तो एक बार कहा था—कभी वश्या नही दखी। वही दिखलाता हू देखना कि औरत भी क्या है—वश्या भी कैसी है—

और   और भी पता नही क्या क्या है चदारानी !"

इस तरह अजित एकदम जया के सामने आ खड़ा हुआ था। जया नही—चदारानी के सामने। जो इनामदार के अनुसार—औरत, वेश्या, चदारानी   पता नही क्या क्या थी !

पर इनामदार कुछ नही जानता—अजित जानता है—यह जया क्या-क्या है ? यह जया नही है—पूरा एक गणित है। गणित, जिसमे ढेर-ढेर भूल-चूक निकल आयी है। गणित न होता तो जया सुरेश जोशी से जुड़ती ?

और गणित की भूल चूक न होती—तो भला अजित यहा, इस तरह जया को पाता ? चदारानी बने हुए ! तभी तो अजित साहस करके उसी तरह पूछ बैठा—"तुम   ? तुम तो जया मौसी हो ना ?"

और मायूस-परेशान खडी जया—(नही चदारानी !) एकदम से हस पडी थी। वही पायलवाली मासूम हसी मे। उत्तर इनामदार ने दिया था, "अरे नही बे ! यह तो चदारानी है। तू किस जया की बात कर रहा है—और भला तेरी मौसी   यहा कहा आने लगी ? पागल हुआ है तू ?"

अजित का चेहरा पिट गया था।

"हा, मैं चदारानी ही हू—आइए, आइए ना !" वह अजित की कलाई हौले से थामकर एक ओर खीचने लगी थी और पसीने से नहा गया था अजित।

"हा हा चदारानी है   ठीक। पहली पहली बार आया है—फिर देखती हो ना—कितना लड रहा है अपने आपसे ? इसे जरा 'नामल' करो।' हसता हुआ सखाराम इनामदार दीवान पर बिछ गया था। बोला था, "मैं तो लेटूगा। बस, कस्तूरी से कहो—एकाध पेग पडा हो तो बना दे !"

अजित कलाई छुडा रहा था। और जया निलज्ज !   जया मौसी ! उफ ! घृणा, पीडा और बेचैनी ने अजित को बुरी तरह तिलमिला दिया था। वह कलाई छोड नही रही थी। सहसा जोर का झटका देकर दूसरे कमरे की ओर खीचने लगी थी अजित को, "आओ भी !   तुम तो अब

भी लड़की बने हुए हो—इस बीस बाईस की उम्र म भी !" फिर अजित के लाख विरोध के बावजूद वह उसे कमरे म खीच ले गयी थी। सहसा फुसफुसाकर कहा था उसने, "जब आ ही गये हो तो इस तरह लौटने म क्या तुक है ?" अचानक दरवाजे पर थमकर उसने पुकारा था, "कस्तूरी !"

एक युवती आ खडी हुई थी—दुबली पतली, मगर खूबसूरत। होठ काटकर अजित को देखती हुई।

चदारानी ने कहा था, "सुन जरा, सखाराम बाबू को सम्हाल लेना। उन्ह एक पेग भी दे देना ' इसके बाद सहसा कमरे का दरवाजा बद कर लिया था उसने।

'यह यह क्या कर रही हो ?' अजित ने घबराकर कहा था।

"तुम अब भी उसी तरह डरते हो ?" जया ने एकदम ढीठ होकर उत्तर दे दिया था।

अजित को क्रोध आया था, "मैं मैं तो सोच भी नही सकता था मौसी कि तुम '

जोर से हस पडी थी वह, "और भला मैं भी कहा सोच सकती थी कि एक दिन तू ही मेरा ग्राहक बनकर आ पहुचेगा ? '

"मौसी ! लगभग चीख ही पडा था अजित।

जया पर कोई अतर नही—उसी तरह हसती रही थी, "ऐसा ही होता है अजित !"

'प्पर ? पर तुम ?"

'उस सबको छोड़ ! ' जया—नही चदारानी—अजित के करीब ही बैठ गयी थी। डबल बेड लगा हुआ था—उसपर। अजित के कूल्हो स लगभग सटी हुई। पूछा, "कुछ पियेगा ?"

'तुम्ह शरम नही आती—मुझस पहचान तो चुकी हो कि मैं अजित हू। आतरीवाले पण्डितजी का बेटा वही जो तुम्हारे घर पढने आया करता था। और और तुम इस तरह ?"

फिर हसी थी जया।

"हसती क्यो हो ?" चिढ गया था अजित। असल में उस समय बुरी तरह बोखला उठा था। कैसे न बोखलाता ? भला सोच सकता था कि जया

मौसी इस तरह मिलेगी ?—इस बस्ती में ?

"इसलिए कि तू अब भी उतने ही बेतुके सवाल करता है, जितने तब करता था।" जया मौसी अचानक ही गभीर हो गयी थी और अजित को लगा कि कही दूर चली गयी हैं—अपने चेहरे के पाउडर, बस्ती, व्यवसाय सभी कुछ से दूर। उनकी आवाज अजित को कही दूर से ही आती लगी थी—"एक बात पूछू ?"

अजित ने झुझलाते हुए कहा था, "पूछो।" वह तय कर चुका था कि अच्छी तरह धिक्कार सुनाकर जायगा जया मौसी को। इसी नक से स्वर्ग खरीदने का आदेश लिया है जया मौसी ने ? ठीक कहते थे सब—शायद उस समय भी जया मौसी वेश्या ही थी! पर तब अजित को उन सब पर गुस्सा आता था।

"ये सीढिया चढकर जब तू आ रहा था—तब तूने सोचा था कि यहा मैं मिलूगी तुझे ?"

"क्या बक रही हो ?"

'धीरज से सुन ना—इतना चिढता क्यो है ?" जया मौसी—चन्दा-रानी—कह रही थी—' तब नही मालूम था ना ?"

"बेशक!" अजित ने एकदम चीखते-से स्वर मे कहा था, "और अगर मालूम रहा होता तो यह जगह तो दूर—इस बाजार का मुह तक न देखता!"

"यही तो मैं कहना चाहती हू रे!" जया कहे गयी थी, "असल मे सीढिया चढते हुए तू इसलिए आया था कि तुझे एक रडी को पाना था—और पा गया तू!"

"क्या कुछ बक रही हो तुम ?"

"ठीक कह रही हू।" जया एक निश्वास खीचकर खडी हो गयी थी, "और अब तू वह पा गया जो तुझे पाना ही न था ऐसे ही कब कब नही सोचते हैं सब ? सीढिया चढते हैं कुछ और सोचकर और पा जाते है कुछ और—यही तो है इन कोठो, मकानो, आदमियो और सारे ससार की कहानी।"

"तुम—तुम कहना क्या चाहती हो ?'

'यह कि जहा तू आ पहुचा है और जो तूने देखा-पाया है—वही तो सच है सीढिया का लेकर सोचने माथा पटकने से क्या लाभ—वे तो सच नहीं रही। उन्हें तो तू पार कर आया।"

अजित सहसा ही चुप हो गया था—जया मौसी जो कुछ कहना चाहती हैं—साफ तो है कि उनमे उनकी पिछली जिन्दगी के बारे म कुछ न पूछा जाय!

मैं भी तुझसे यहा पूछ रही हू कि तू यहा क्या आया ?—या तुझ जैसा खानदानी लडका कोठो पर क्या जान लगा ?" जया मौसी हस पडी थी—हसती हुई पूछने लगी थी 'पियेगा ?'

'क्या ?

एक दो पेग। अगरेजी है। ग्राहका के लिए रखनी पडती है ना।"

उफ! किस कदर गिरावट और जलालत! यह सब सह नही सकेगा वह। सहा भी नही था उसने। एकदम उठ खडा हुआ था। दरवाजा खोलकर तेजी से बाहर वाले कमरे म जा पहुचा था। पीछे पीछे जया मौसी बौखलायी सी आवाज म पुकारती रही थी, 'सुन तो! ना-ना, सुनिये—अजित बाबू!

और फिर दीवान पर पडे सखाराम की ओर देखा तक नही था अजित ने। एक झटके से मुख्य द्वार पार करता हुआ पीक के धब्बा से बदरग दीवारो मे जकडी सीढिया किसी तूफान की तरह फलागता हुआ सडक पर आ पहुचा था।

कई दिन बीत गये हैं पर लगता ही नही है कि कुछ पुराना हुआ है। बीता हुआ सा। बल्कि लगता है पहले से कही ज्यादा उजागर हो गया है ज्यादा दीखता हुआ—चीखता हुआ।

कितनी बार कोशिश की ह कि दिमाग से झटककर उस सबको दूर फेंक दिया जाये, जो बार-बार उस करीब बल्कि अपने ही भीतर बैठा हुआ लगता है। जया मौसी—यानी चम्पारानी के शब्द—अब भी पीछा कर रहे हैं—" सीढिया चढते हैं कुछ और सोचकर—पा जाते हैं कुछ और यही तो ससार है!

सखाराम इनामदार बोला था—" इसका मतलब है कि तू उसे पहचानता है ?"

अजित ने जवाब दिया था, "हा।"

दूसरे ही दिन की बात है। उस दिन नशे मे बेसुधी टूटने के बाद शायद कस्तूरी या खुद जया ने ही बतलाया होगा उसे—कैसे दीवानो की तरह भाग निकला था अजित। जया मौसी पुकारती ही रह गई थी।

अगले दिन जवाबतलबी करने आ पहुचा था सखाराम, "क्या हुआ था तुझे ? मुझे तो उसी पल लगा था कि तू अपने शहर या जान पहचान की स्त्री पाकर, चदा के प्रति कुछ भावुक हो गया है।"

उत्तर मे अजित ने कुछ नही कहा था और सखाराम बडबडाता गया था, "तुझे गल्पलेखक के बजाय कवि होना था " फिर वह हस पडा था। और अजित क्या कहे—तय नही कर पा रहा था। सखाराम बडबडाता ही गया था—' अरे भलेमानस ! वहा हम जीवन का रस रग लेने गये थे न कि कविता लिखने। "

"इस जिक्र को छोड ही दो।" अजित ने टालना चाहा था। असल मे उस घटना से इतनी गिनती जुडी हैं कि अजित जोड जोडकर थक गया है—आखिर कहा गलती हो गयी थी मीजान मे ? जया ने तो अपनी ओर से सब कुछ सही-सही जोडा होगा—शायद जोडा ही था। मायादेवी की योजना से घबराकर उसने सुरेश जोशी को खोज लिया था—लम्बा तडगा खूबसूरत युवक। पढा लिक्खा। आदमी तो बढिया ही था। अजित को याद है और ऐसा भी नही लगता कि सुरेश और जया के बीच कही कुछ जोड गुणा बाकी गलत हुआ होगा—तब जया—जया मौसी से चदारानी कैसे बन गयी ?

सखाराम को उसकी भावुकता से सरोकार नही। वह समझता भी कैसे ? बात सिर्फ एक शहर की लडकी का देखन भर की तो ही नही थी। बात थी—जया मौसी की। और जया मौसी का सारा गणित, सारा बही-खाता अजित के सामने ही लिखा गया था। ऐसे कैसे भूले !

' खैर, आज दोपहर की फ्लाइट से मैं वापस भोपाल जा रहा हू।" सखाराम ने सूचना दी थी। कहा था, "जाने से पहले तुमसे मिलना था—

इसीलिए आया।"

"अब कब तक लौट रहे हो ?' अजित ने पूछने के लिए पूछा था—पता नहीं क्या, सखाराम की बातो मे बहुत रुचि नही ले पा रहा था।

जवाब म सिफ हसा था सखाराम। थोडी देर बाद कहा था, "तू तो एसे पूछ रहा है यार—जैसे मेरा कोई प्रोग्राम बनेगा। जानता तो है कि जब किसी ठेकेदार का टेण्डर अटक जाये—तब मैं वहा से खुल पाता हू।"

अजित चुप हो गया था। बेकार ही पूछा उसने। असल मे इस तरह के सवाल की गुजाइश सखाराम के साथ है ही नही। थोडी देर बाद सखाराम उठकर चला गया था।

हर महीने दो महीने बाद इसी तरह शहर मे आ टपकता था सखाराम। रिटायड जज का बेटा था। पी० डब्ल्यू० डी० म एस० डी० ओ०। सखाराम की रिश्वतखोरी उसके सारे विभाग मे मशहूर थी। अजित ने टोका भी था, "यह ठीक नही है।" और सवाल के जवाब मे सखाराम का सवाल था—"तब क्या ठीक है, तू ही बता ?"

"यही रिश्वत ! आखिर तू एक जज का बेटा है। फिर फिर तुझे कमी ही क्या है ?'

सखाराम सहसा गभीर हो गया था "पाप-पुण्य का गणित लगा रहा है न तू ?'

"गणित नही, सिफ इतना कहता हू कि हजारो रुपये की रिश्वत खाकर दिल्ली बम्बई मे दो चार दिन तक पानी की तरह पैसा बहाना, ऐयाशी करना और—जब वापसी का टिकट रह जाये—तब लौट जाना। कभी सोचा है तूने इस सबसे क्या मिलेगा ? क्या लाभ है इसम ?"

जोर से हस पडता था सखाराम, "वाह रे लेखक ! अब मुझे यह तो बता कि यह सब मैं न भी करू तो मुझे क्या मिलेगा ?"

अजित कहता 'तू बेकार बहस करता है ! "

सखाराम उठ खडा होता, ' भविष्य के निष्कर्षों पर सोचकर हिसाब किताब स जीने की कोशिश म मैं अपने जीवन की मुक्तता नही खोना चाहता। यह सब तो तू ही कर !"

और इस तरह बात खत्म हो जाती। हर एक-दो माह म हजारो की

रिश्वत से भरी जेब लिए सखाराम दिल्ली आता। अजित को साथ लेता, कभी कैबरे, कभी फाइव स्टार होटलो की सैर, फिल्में, कालगल यही कुछ चलता चलाता। जाते-जाते महगे महगे कपडे बेमतलब खरीदता। टैक्सी के किराये के साथ बख्शीश देता और वापस। इस बार भी इसी तरह चला गया था। अजित उसे आते ही याद कर लेता, जाते ही भूल भी जाता। वह भी तो अपने आने जाने को इसी तरह याद करके भूलता था।

पर इस बार उसका जाना अजित नही भूल पायेगा। असल मे यह सखाराम की ही करतूत थी जो वह जया से जा मिला और जया से मिलने का मतलब हुआ—एक लम्बी चौडी याद से जुड जाना।

इस याद का एक और टुकडा—पिछले साल, नैनीताल मे अजित के माथे से टकरा गया था

दो महीने के लिए अपने चाचा के पास गया था। दिल्ली की गरमिया सह पाना बहुत कठिन लगता था। बहुत दिनो से कह रहे थे वह—"यहा आ जाया कर। वेकेशन्स के कारण ज्यादातर होस्टल की बच्चिया अपने घर जाती हैं। मैं भी अकेला रहता हू—तू आयेगा तो वक्त भी कटेगा, कुछ लिख पढ भी सकेगा।"

हर बार कतरा गया था अजित, पर पिछले साल जा पहुचा। वहा मिली थी तुली। अजित को हैरानी हुई थी। पूरे होस्टल की लडकिया माता पिता के पास जा चुकी थी और वह खूबसूरत बच्ची वहा अकेली—ऐसा क्यो ?

चाचा ने बतलाया था—"तुली की मा हर साल आ जाया करती थी। पर इस बार बीमार हो गयी। एक दो बार मुझसे मिल भी चुकी थी। बच्ची बडी हतभाग्य है पिता रहे नही—मा हैं। उन्होने मुझे लिखा कि इस बार बच्ची को मैं अपने साथ ही रख लू। वह नही आ सकेंगी।"

अजित को पीडा हुई थी। किशोर आयु की तुली। खूबसूरत आखें पतले-पतले होठ, गेहुआ रग। बडी मीठी मीठी बातें करती थी। अजित घुल मिल गया था। कहानिया उपन्यास पढने का शौक था तुली को। अक्सर अजित से बातें किया करती—'लेखक कैसे लिखते है ? उन्हें कहानी सूझ कैसे जाती है ? और फिर वे उसे उसी तरह लिख भी डालते

है बाबा रे ! बहुत कठिन काम है। लगता है कि पढनेवाले के सामने वे सब लोग वसे वैसे ही घूम फिर रह हैं—जस जैसे उन्हें लेकर लिखा गया है ! इसी तरह के सवाल। हर सवाल मे स्वर की मिठास और उस मिठास से कही ज्यादा सरलता और स्नेहिलता

तुली बहुत घुल मिल गयी थी और उसन अपने पिता की तसवीर दिखायी थी अजित को। लम्बे चोडे शानदार व्यक्तित्व वाला एक युवक। बोली थी 'यह है मेरे पिता। कपडे का व्यापार करते थे। एक प्लेन क्रैश मे " तुली का गला भर्रा गया था—आखें छलक आयी थी। अजित ने जल्दी ही जिक्र टाल दिया था।

और तुली एक दूसरी तस्वीर ले आयी थी, 'मेरी मा को देखिएगा अकिल ? बहुत भली है—सो स्वीट !" कहते हुए तुली ने अजित के सामने जया की तस्वीर ला रखी थी—'देखो—यह !

अजित बुरी तरह चौंककर तस्वीर देखन लगा था—जया ?

तुली मुस्करा रही थी 'अच्छी है ना—आप मिलेंगे तो बहुत खुश होगे।'

और अजित उस बच्ची का चेहरा देख रहा था। लगता था जैसे उसके चेहरे से जया का चेहरा निकल रहा है—जया मौसी और फिर तुली के गिर्द बहुत से चहरे घिर आये है—राजनाथ मास्टर माया देवी, मोटे बुआ, दरजी कुन्दन और अजित खुद—मिन्नी के साथ बरामदे मे खेलता हुआ।

सहसा अजित परेशान हो उठा था। तुली से पिता नाम के युवक की तसवीर फिर स मगवाकर देखी थी—नही। यह सुरेश जोशी नही है।

पर वह दूसरी तसवीर जया की ही है। तब तुली का पिता कौन है ? यह तसवीर किसकी है ? लगा था कि सारा कुछ गडबड हो गया है—सारा हिसाब। पूरा ही गणित।

अजित को मालूम है—अब से बरसो पहले जया मौसी ने पति का जोड गणित तो सुरेश जोशी के साथ ही बिठाया था। फिर बाकी मे यह तसवीर कैसे आ गयी ? किसकी तसवीर।

बच्ची को ज्यादा कुरेदा नही था। कहा था कि वह जाये। अजित थोडी देर आराम करगा पर आराम नही कर सका था—बार बार जया

मौसी के हिसाब किताब से ही जूझता चला गया काफी कुछ कुरेद भी डाला था—ढेर सा। पर सब अनसुलझा ही रहा। सब गलत सलत।

सोचा था कि उस समय तक गलत सलत ही रहेगा—जब तक किसी दिन जया मौसी से भेंट न हो जाये।

और जया मौसी से इस तरह भेंट होगी जी० बी० रोड के जिस्म-फरोश बाजार में—कौन जानता था? सोच भी कैसे सकता था?

तुली शायद अब भी नैनीताल के उसी पब्लिक स्कूल में हो?

मगर जया यहा चन्दारानी है।

उस स्कूल में तो जया कुछ और ही है। बच्ची ने भी जो कुछ बतलाया था, उसके अनुसार वह सब गलत है—जो अजित ने देखा है।

पर आख देखा—गलत भी कैसे हो सकता है? जया मौसी ने तो अजित के उस आख देखे सच पर मोहर लगा दी थी—" और मैं ही कहा जानती थी कि एक दिन तू मेरा ग्राहक बनकर आ पहुचेगा!"

तो सुरेश जोशी कहा गया? नैनीताल के स्कूल में पढने वाली तुली के पास पिता के नाम पर जो फोटो है—वह तो सुरेश जोशी का है नही।

तो कौन है वह आदमी?

और चन्दारानी कैसे बन गयी—जया मौसी? उन्हाने तो अपने हिसाब से सारा गणित ठीक ही बिठाया था फिर अचानक कौन-सा शून्य छूट गया जिसने सारे आकडे झुठला दिये?

असल में उस दिन अजित ने जया मौसी के पास से भागकर गलती की। कितना तो बुलाती रही थी वह? अजित का मन एक अजीब सी तकलीफ और उलझनों में बेचैन होने लगा।

तुली के पास उस दिन पिता की जगह सुरेश जोशी की फोटो न देखकर भी अजित को जया बहुत याद आयी थी। बार-बार उसकी कहानी याद आती रही थी—पर दूसरे कामो ने दबा ली थी। अब अचानक जिस रूप में साक्षात् जया मौसी को देखा है—उसके कारण उनकी कहानी के अतिरिक्त कुछ सूझ ही नही रहा।

पर एक दिक्कत है—आधी कहानी जया मौसी के पास ही है। बल्कि अजित की देखी कहानी का भी काफी कुछ हिस्सा—जया मौसी के पास

है। पर वह कहती हैं—" उन सीढियो को लेकर सोचने और माथा पटकने से भला क्या लाभ—जिन्हे तू पार कर आया है ?" या यो कि जया मौसी ही पार कर आयी हैं।

असल मे लेखक होना भी कैसी परेशानी मोल लेना है। एक बार मिन्नी बोली थी— तू एक लेखक बनेगा ? कहानी लिखता है ना ?"

'हू।"

'और तूने सुना है—लेखको के बारे मे लोग क्या कहते हैं ?"

'क्या ?"

'यह कि दद उठे जच्चा के और दम निकले दाई का। समझा ?" मिन्नी हस पडी थी। भुनभुनाता हुआ अजित चला आया था। हमेशा शरारत ही करती थी मिन्नी।

आज वही बात याद हो आयी है। सच ही तो—लोग ठीक कहते हैं। किसके साथ क्या हुआ ? और हुआ तो वैसा क्यो हुआ ? यह वेदना लिये लिये अजित भी क्या अपने ही भीतर कम भुनभुनाता—शोर मचाता रहता है ? अब के जया मौसी को लेकर ही बठ गया है।

जया मौसी के सोच लेकर बैठने का मतलब है—एक तरह से अजित का अपनको लेकर हिसाब किताब याद करने लगना। कहा किसने, किस किस तरह गुणा जोड बाकी किये और कहा कहा गलती की। और जब जया मौसी की कहानी सोचने कहने चला है तब वह सब भी आ जाता है—जो अजित ने देखा है। और उस सबका बयान किये बिना जया मौसी की कहानी शुरू ही नहीं होती।

तो सबसे पहले अजित को वही कहानी याद करनी होगी—स्वतत्रता से पहले और फौरन बाद की कहानी।

असल म कहानी के लायक जया मौसी तभी हुई थी और शायद कहानी को समझना देखना भी तभी से अजित ने शुरू किया था तभी अजित ने जया मौसी, मिन्नी, मायादेवी सबको पहली-पहली बार देखा था। और उन्हें देखने के लिए जमीन बनी थी एक छोटी-सी कहानी। इस कहानी से गुथी कई छुटपुट कहानिया के बीच ही जया मौसी की कहानी

जनमी पनपी थी इसलिए वही से अजित याद करेगा

ग्वालियर। शहर के कपडे पहने हुए एक कस्बा। तब तीन लाख आबादी थी। मकानो, गलियो, सडको के चेहरे बनावट अजब अधकचर ढग की। ऐसे ही घर, आगन और गलियो मे से एक गली मे पला था अजित जया सब! सबका अपना एक ससार अपने अपने गणित, अपनी अपनी उम्र

एक दिन कार्पोरेशन के कुछ लोग आये थे। उनम से एक सीढी लिये हुए था। उस आदमी ने कानेवाले शभू नाई के मकान की दीवार पर सीढी लगायी थी और एक सूचना पट्ट जड दिया था—सरदार मराठे का बाडा म्यु० वाड नम्बर दस।

शक्ल से गली, नाम से बाडा। अब भी वैसा ही होगा। हो सकता है कि उनम से कुछ चेहरे *गायब हो गये हो, जो उस जमाने मे वहा चहका करते थे*

चहक ही थी। जिस मकान पर सूचना पट्ट लग गया था, वह शभू नाई का मकान था। जब वह नही रहा, तब भी वह उसीका मकान कहलाया करता था। ठीक उसी तरह जिस तरह सरदार मराठे सरदार नही थे, फिर भी सरदार कहलाते थे। पर उन दिनो शभू भी था और सरदार मराठे सरदार भी थे। रियासतें खत्म होने से कुछ पहले की बात है। यही कोई साल दो साल पहले की।

सारी गली चहकती थी। कोनेवाले अपने चारमजिला मकान की छत पर सरदियो की दोपहरो मे शभू नाई चढ जाया करता था। छत पर टाट का एक बोरा बिछा लिया करता। बगल मे पेटी। पेटी मे अस्तुरा, धार-पत्थर, बाल काटने की मशीन, कघा, तेल, साबुन कैंची और न जाने क्या-क्या होता। यहा वह बच्चा की कटिंग करता था। बच्चे फुरतीले होते हैं। बिना हाफे, बिना थके उस कुतुब मीनार पर पहुच जाया करते। देखते कि शभू हाफ रहा है। सास का रोग था उसे। चौमजिले पर चढने के बाद कम से

कम चालीस मिनट तब यह हाफ ठीक से काबू मे नही आती थी। हाफ काबू मे आये, तब हजामत बने। बच्चे शभू का हाफना बन्द होने की प्रतीक्षा करते। स्वय अजित ने कई-कई बार यह प्रतीक्षा की थी। इस प्रतीक्षा म बच्चे उसकी छत पर शोर मचाते रहते। कभी कभी उत्साह मे दौडने लगते और घबराकर हाफते हाफते ही शभू उन्हें डाटता डपटता, "अरे र मरना है क्या? ठीक से खेला!"

कुछ बच्चे सहम जाया करते। कुछ अवहेलना कर देते। गति कुछ धीमी हो जाती, पर शोर शरावा ज्यो का त्यो होता रहता। सहमे हुए बच्चे छत की मुडेर से सटकर खडे हो जाते और महल्ले के घरो मे झाकने लगते। शभू के मकान की छत सबसे ऊची थी। ऊची होने की ठट्ठी। चारमजिला था मकान। शभू की मा कहा करती थी—मकान नही है, गली की कुतुब मीनार है यह!

मुडेर से झाकने पर भय लगता। गली कितने नीचे थी? तिसपर गली म फर्श बिछा हुआ था। बडे बडे पत्थरो का फर्श। आदमी गिर तो मटके की तरह फूट जाये। अजित सिहर जाता। नीचे देखना बन्द कर देता। थोडी देर पलकें बन्द कर खडा रहता, फिर मुहल्ले टोल मे बिखरे यहा वहा के मकान देखने लगता।

शभू के मकान की छत से सारी गली बाजार के मकान दीखते। दूर दूर तक। सुकुल जमनाप्रसाद का मकान, सुरगा का दोमजिला मकान जिसकी ऊपरी मजिल पर पत्थर के पाट बिछे हुए थे। शभू के मकान से सटी सीतलाबाई वैष्णवी की पाटोर। सरदार मराठे का बाडा। बाडे मे बधे दो घोडे। इन घोडो की मालिश करता हुआ सीतलाबाई का पति वैष्णव द्वारकादास।

अजित की दृष्टि दूर तक बिछ जाती। मकान छोटे और छोटे होते हुए दृष्टि-परिधि से बाहर हो जाया करते। औसत मकानो और मकानवालो को अजित जानता था। गली से अलग होते हुए भी ये मकान और मकान वाले गली की जिन्दगी से परस्पर गोद की तरह चिपके हुए थे चाद मिया का मकान। चाद मिया के बिलकुल सामने उनके बडे भाई इब्राहीम की इमारत। इब्राहीम को अजित ने बहुत कम देखा है इसलिए बहुत साफ

याद नही है वह। पर चाद मिया याद है। रोज देखने थे। गरमियो की हर शाम छत पर उन्हे घण्टो तक देखा जा सकता था। पतग लेकर, भरी दोपहर म छत पर चढ जाते और उनके साथ साथ महल्ले के चार छह लडके चढे रहते। कोई दूर, दूसरी छत पर पहुचकर चाद मिया की पतग को 'छुट्टी' दिया करता कोई माजे की घिर्री—चरखी—थाम रहता, कोई निरुद्देश्य ही मिया की पतग का उडने देखता। कोई मिया के लिए अलग-अलग किस्म के मजो की चरखियो का स्टाक सजाये बैठा रहता। शहर के पतगबाजो म मशहूर थे चाद मिया। कहते है कि जिन्दगी म सिफ तीन बार उन्होने पतग कटवायी थी। एक बार तब, जब भारत पाकिस्तान का बटवारा हुआ था और व बहुत परेशान हुए थे, दूसरी बार तब जब खुद महाराजा ने उन्हे पेच लडाने क लिए बुला लिया था। यह कहकर कि—"सुना है मिया बडे जोर से पतग उडाते हो, आज जरा हम तुमसे पेच लडाकर देखेंगे।"

चाद मिया की घिग्घी बध गयी थी। कहा महाराज, कहा मिया! कापते स्वर म बोले, "हुजूर! अन्नदाता हैं। गुलाम की क्या औकात कि सरकार से पेच लडाये? हिज हाइनेस मुझे बख्श दीजिये! मैं जूतिया ढोनेवाला आदमी हू। सरकार से मुकाबले की जुरत कैसे कर सकता हू?"

पर नही माने महाराज। चाद मिया को हुक्म दे दिया कि पेच लडायें।

क्या करते मिया। गहरी सास लेकर महाराज को एक कोर्निश बजाया और दो साथी लेकर महल की बगलवाली छत पर जा चढे। जोते नापे और बजरग का नाम लेकर छोड दी पतग आसमान मे महल के गिर्द सारी राजधानी घिर आयी थी। बडे बडे पतगबाज यह मोरचा देखने हाजिर हुए। पतगो का मुकाबला नही था। सेवक और सरकार का मुकाबला था। मिया और महाराज की पतगो ने बडी बडी करवटें ली, बडे बडे दाव खेले, पर आखिर मे मिया की पतग कट गयी। लोगो को विश्वास ही नही होता था। पर हजार हजार आखो ने देखा कि चाद मिया की पतग आसमान के थप्पड खाती हुई धरती की ओर चली आ रही थी। फिर आ भी गयी थी। मिया घर चले आये थे। लोगो म कानाफूसी फैल

गयी थी। देखने के बावजूद विश्वास नही कर पा रहे थे वे। अत म सब एक नतीजे पर आ पहुचे थे कि चाद मिया ने खुद हाकर पतग कटवायी है। मजे मे एक रगा दे दिया होगा। न देते तो दम जगह महाराज की थू थू होती कि अदना गुलाम से पतग कटवा ली। भला ऐसे होते हैं महाराज ! छि !

महाराज के सामने भले ही अदना हो चाद मिया, पर महल्ले मे बडे महत्त्वपूण थे। सरकारी रगरेज थे वह। मराठा रियासत। सिपाही, सरदार, और खुद महाराज लम्बी-लम्बी पगडिया लगाते थे। हर माह हजारो पगडिया धुलतीं, बनती थीं। चाद मिया और उनके बडे भाई इब्राहीम रगसाजी म माहिर थे। पीढियो से यही पेशा कर रहे थे। महाराज की तबीयत आ गयी और वे दोनो भाइयो को रियासत म ले आये। पलो मे दोनो रगसाज भाइयो का हुनर मोहरो म बदल गया। दोनो ने इस बाजार म आमने सामने वे बिल्डिगें तानी कि आज तक सारे बाजार की चुनौती बनी खडी हैं।

चाद मिया और इब्राहीम मिया की कई छोटी बडी बेगमे थीं। सब परदेदार। महल्ले के बच्चो के सिवा उन्हे और कोई नहीं देख पाता था। अगर कोई देखता भी था तो चाद मिया और इब्राहीम के अपने घर के बच्चे मर्द और गुलाम बादिया

पर अजित न सबको देखा है। कुछ के चेहरे तो आज तक याद हैं। सारी जिन्दगी याद रहेंगे। चेहरे ही तो नही थे वे। सबके सब कहानिया भी थे। आदमी कहानियो मे जीता है, कहानियो मे रहता है, कहानियो म मरता है। कहानिया उसे नही छोडती। वह कहानियो को नही छोडता।

चाद मिया के पासवाला मकान भटनागर मास्साब का था। पता नही, घर का था, या किराये का, पर रहते थे वहीं। उनकी तीसरी पत्नी माया देवी, एकलौता बेटा—वीरन भटनागर। वीरन, अजित का हमउम्र भी था, दोस्त भी। बल्कि यो कि सारा बचपन ही वीरन के साथ गुथा हुआ है सिर्फ वीरन के साथ ही क्यो ? जया और मिनी के साथ भी तो गुथा हुआ था अजित का जीवन पता नहीं, कब गुथ गया था ? इतना याद है कि एक-ना नहीं, दसियो गाठो म गुथा हुआ था वह गाठें पक पडी,

कैसे पडी, अजित को कुछ भी याद नही है। सिर्फ इतना याद है कि वह भटनागर मास्साब के यहा, पढने के लिए ले जाया गया था

सारे महल्ले टोले के लोग अपने-अपने बच्चो को मास्साब के यहा भेजते थे। वे एकलौते मास्टर थे सारे बाजार मे।

भटनागर मास्टर साहब। पूरा नाम राजनाथ भटनागर। जाति से कायस्थ, पर जीवन म पण्डित। सारे बच्चे उन्हे 'मास्साब' कहते। अजित भी कहता था। पर उस दिन तो अजित पहली पहली बार उनके सामने ले जाया गया था।

मकान की निचली मजिल बन्द थी। द्वार टीन की पत्तियोवाला। चन्दनसहाय श्रीवास्तव की अगुली पकडे हुए अजित दूसरी मजिल की सीढिया चढा था।

चन्दनसहाय श्रीवास्तव अजित के मकान मे किरायेदार था। उसीने अजित की वृद्धा मा को सुझाया था भटनागर मास्टर का नाम। उनसे अच्छा और कोई अध्यापक शहर मे नही मिल सकता। बेंत लेकर बैठते हैं और बात की बात मे सारे गिनती पहाडे गले उतार देते है। चाहे जैसा शैतान बच्चा हो और अजित तो यो भी कुशाग्रबुद्धि है पहली बार मे ही पाठ कठस्थ कर लिया करेगा।

"कौन, भटनागर?" अजित की मा को गली के ससार से अलग कुछ मालूम ही नही था। कभी जरूरत ही नही पडी थी मालूम करने की—पर जब से अजित के पिता मरे—उन्हें बहुत कुछ जानना पड रहा था

"वही, बनिये के सामनेवाले। "

"कौन सा बनिया?'

"जिसकी किराने की दूकान है।"

"कौन-सी?"

"तुम्हे तो कुछ भी नही मालूम, केशर मा!" चन्दनसहाय बोला था, "और तुम्हें मालूम हो, यही क्या जरूरी है। बस, तुम्हारा काम हो जायेगा। भटनागर साहब के चरणो मे अजित को पहुचाये देता हू। जीवन बन जायेगा इसका।"

मेशर मा यानी अजित की मा चुप हो गयी थी। सच वह रहा था चन्दन । जानने की जरूरत ही क्या है ? अजित के लिए अध्यापक मिलना चाहिए, सो मिल जायगा। बात खत्म हुई। चन्दनसहाय भरोसे का आदमी था। पुश्तो से अजित के परिवार म उसका आना जाना था। जब स छोटी कचहरी गाव से उठकर शहर मे आ पहुची थी, तब से चन्दन उनके यहा किरायेदार हो गया था। नीचे क तीन कमरे और दालान उसके पास थे। किराया दो रुपया महीना। या दो रुपये मे इतना बडा हिस्सा कही नही मिल सकता था, पर अजित के पिता धनिक भी थ गरीबनवाज भी। चन्दन को उन्होने गाव म छोटी कचहरी पर काम लगवाया था। भाग्य का खेल कि चन्दन शहर आकर भी उन्ही के चरणो म आ बैठा। बोला था 'यही आ गया हू। आपकी कृपा से यह काम मिला है, अब आप ही की कृपा चाहिए ताकि सिर छुपाने को शहर म कोई घर मिल जाय।'

अजित के पिता गगाप्रसादजी हस दिये थे ठीक है। कल से तुम पत्नी बच्चो को लेकर यहा आ जाना। नीचे क दो तीन कमरे खुलवा दूगा।

खुल गये थे कमरे। पहले महीने ही चन्दन सिर झुकाये हुए आ खडा हुआ। गगाप्रसादजी ने पूछा "अब क्या चाहते हो ? कोई कष्ट है तुम्हें ?

चन्दन ने उत्तर नही दिया। कापते हाथो से दो रुपये उनके सामने रख दिये। पण्डितजी ने पूछा यह किसलिए ?

"जी जी किराये खाते मे स्वीकार लीजिये।' कुछ हिचक के साथ चन्दन ने कहा था।

पण्डितजी यानी अजित के पिता ने चन्दन को नीचे से ऊपर तक देखा था। सब उन्हे पण्डितजी ही कहते थ। सोचा था कि क्या सचमुच तीन कमरो और एक दालान का किराया दो रुपया माहवार होता है ! कभी किराये से मकान दिया हो ऐसा अवसर आया नही था।

इधर चन्दन सकोच म था। पण्डितजी का स्वभाव जाना सुना है। ऊचे कुल और जमीदार परिवार के है। सस्कारो म रत्ती रत्ती रईसी भरी है। हो सकता है कि रुपये चन्दन के मुह पर मार दे और कहे— निकल जा यहा से ! मूर्ख, हम रुपये दिखाता है ! दो रुपल्ली ! तीन कमरे और

दालान जब दो रुपये म मिलते थे, वे जमाने लद गय ? छलने आया है हमे ? —और यह भी हो सकता है कि पण्डितजी को किराये भाव की जानकारी ही न हो। हजारो म खेलनेवाले आदमी। मकान किराये के धधे की उन्हें क्या जानकारी होगी। इसीलिए स्वीकार लेंगे। यह सोचकर कि हो सकता है, यही किराया बनता हो इसीलिए ले आया है। स्वीकार लिया तो चदन का 'खेल' बन जायेगा।

और बन गया था चदन का खेल! पण्डितजी ने कहा था—"ठीक है।"

चदन के भीतर सरोवर लहराने लगा था। खुशी और सफलता का सरोवर। सरोवर म हलचल हुई थी। झुककर प्रणाम किया था और लौट आया था। तब से कई साल बीते। पण्डितजी स्वगवासी हो गये, चदन का किराया दो रुपये ही बना रहा। अब तक वही चला आ रहा है।

वस्तुस्थिति म चदन किराया नही देता, किराये की औपचारिकता पूरी करता है। सारी गली जानती है। लोग बीस तीस रुपयो मे एक एक कमरे के लिए सिर मारते घूमते ह और चदन अजित के घर म दो रुपये देकर मकान मालिक के ठसे से रहता है। महल्लेवालो ने एक दो बार अजित की मा को समझाया भी है— 'किरायेदार है तो किरायेदार की तरह रखो। पुराने जमाने की और बात थी। अब घर के एक कोने मे कोई बिस्तरा रखे तो उसके दो रुपये देने पडते हैं। चन्दन की दो रुपल्ली का क्या मतलब! "

केशर मा उपेक्षा बरत जाती, 'ऊह! गरीब है भाई। कचहरी के नाजिरो का मिलता ही क्या है? पाच पचास रुपल्ली कुल तनखाह मिलती है। तिसपर भरी पूरी गिरहस्ती। क्या होता है! मरने दो! समझेंगे कि गरीब की सहायता ही कर रहे हैं।"

"पर ।"

'पर-वर कुछ नही। चदन आदमी भला है। बचपन से अजित के पिता की कृपा पायी ह उसने। उनका दिया स्नेह, अब मै कैसे तोड दू? वे' नही रहे, इसका अथ यह तो नही कि उनकी बात ही नही रही। नही नही। चदन के मामले म मैं कुछ नही सुनूगी।'

और कभी नही सुना उन्होने। कहनेवाले थक चुके है। समझ चुके ह कि केशर मा चदन के मामले म कुछ नही सुनती। न जाने क्या जादू फिरा

दिया है बुढिया पर। जाननेवाले जानते हैं कि चन्दन कितना बडा जादूगर है। जादू ही है। स्वभाव से नम्र, सेवाभाव से भरा हुआ, रहन सहन म सादा। जन्म भले ही कायस्थ कुल मे हुआ हो, सस्कार सारे ब्राह्मणो के हैं। नियमित स्नान, व्रत उपवास और पूजा-पाठ—सब कुछ। सुबह भोर से लेकर आठ बजे तक रामायण की चौपाइया गुजाता रहता है घर म। ऊपरले हिस्से मे बैठी केशर मा वाह् वाह् करती रहती हैं—"उस माता की कोख को धन्य है, जिसने चन्दन सा बेटा जनमा। ऐसा सीधा-सरल, धमव्रती! "

गजब का आज्ञाकारी है चन्दन! केशर मा को उसका बडा सहारा है। जनमने को तो सात बेटे पैदा हुए थे, पर उम्र एक को ही मिली। यही अजित। और अजित छोटा है। चौदह् वष का। चौदह् वष की उम्र भी कोई उम्र होती है। तिसपर अजित तो दुनियादारी के नाम पर चौदह् का होते हुए भी दस जसा है। गली से आगे कौन सा बाजार है—उसने देखा नही। सिक्के गिनना भी अभी कुछ ही साल हुए ठीक से समझा है। समझता कैसे। पिता के वैभव ने कभी अवसर ही नही दिया। हरदम दो चार नौकर मौजूद रहते थे। सुई इधर से उधर करने की जरूरत भी नही पडती थी। घर से स्कूल तक पहुचाने के लिए नौकर जाया करता था, स्कूल से घर लाने के लिए नौकर। पर पण्डितजी के जाते ही सब कुछ हवा मे उड गया। ऐसे, जसे सपना हो गया हो पर वह एक अलग कहानी है—अलग गणित।

फिलहाल सपना सा ही लगता है स्वय चन्दन को भी और केशर मा को भी। पण्डितजी जीवित होते तो अजित क्यो किसी अध्यापक के घर पढने जाता? अध्यापक का ही आना पडता। चार पैसे ज्यादा लेता और क्या! पर वे गये—सब गया! सब बीत गया !

केशर मा ने एक गहरी सास ली थी। कहा था, 'ठीक है। ले जाओ अजित को, पर समझा देना उसे क्या नाम बताया तुमने उस मास्टर का?'

'भटनागर।

"हा, भटनागर। उन्हे समझा देना। अजित शैतान है। इसपर कठोरता से काबू रखें।'

"जी।' चन्दन ने सकेत से अजित को बुलाया था। वह सिमटा हुआ कोने म खडा था।

गली मे उतरते ही चन्दनसहाय ने अजित की ओर अगुली बढा दी थी। अजित को पसन्द नही आया था यह तरीका। कब तक उसे बच्चा ही समझा जाता रहेगा ? चार साल के बच्चो की तरह किसी बडे की अगुली थामे हुए चलना कितना अजीब लगता है ! छि !

पर विरोध कैसे किया जा सकता है। चन्दनसहाय बुजुर्ग है। भाई साहब कहना पडता है उसे। अब से नही, जाने कितनी छोटी उम्र से अजित उसे भाई साहब ही कह रहा है, अजित को स्वय भी याद नही है। जरा बहस की और वह केशर मा से कह देगा। और इस तरह की शिकायत उन तक पहुचे कि अजित बडो के मुह लगता है अजित के भीतर एक फुरहरी फैल गयी। केशर मा के थप्पडो का एहसास इस तेजी से हुआ जैसे कानो के पास बजे हैं—अभी, इसी वक्त चुपचाप अगुली थाम ली थी उसने।

भटनागर मास्साब की सीढियो तक तरह-तरह की हिदायतें देता गया था चन्दन—' देखो, वहा किसी भी तरह की शैतानी न हो ! दसियो बच्चे पढते हैं। कहीं ऐसा न हो कि उनके साथ-साथ तुम भी बिगड जाओ ! हा, खयाल रहे !"

सीढिया पूरी हुई। वे ऊपर थे। अजित न विस्मय से देखा था। दालान-नुमा लम्बा कमरा था। टाट पट्टी बिछी हुई थी। एक-दूसरे से जोड जोडकर फर्श बना दी गयी थी। कुछ बच्चे थे। सब महल्ले के। ज्यादातर को अजित जानता था। कुछ को देखा था, कुछ गली के ही थे इसलिए सखा थे। वे भी विस्मय से अजित को देख रहे थे क्या लाया गया है ? शायद पढने के लिए ही लाया गया होगा !

और अजित सोच रहा था—इस तरह होती है पढाई ? यह तो बिल कुल स्कूल लगा हुआ है। वैसा ही स्कूल, जैसा सरकारी स्कूलो मे होता है। बच्चे पुस्तकें लिए हाजिर है और मास्टर गायब !

"मास्साब कहा है ?" चन्दनसहाय ने नम्र स्वर म बच्चा से पूछा था। कोई भी जवाब दे

"भीतर हैं। ' एक बच्चे ने उत्तर दिया। चन्दन जानता था उसे। मराठे साहब का बडा लडका है। पूरा नाम है जसवन्तराव या ऐसा ही, पर सब उसे मोटे बुआ माटे बुआ कहते हैं। बहुत शरारती। परले दरजे

का थमडालू। सारे महल्ले के बच्चा की रूह कापती है उससे। क्या इसके साथ पढना होगा ?

तब तक मास्टर साहब आ पहुचे। आखा पर नीचे की ओर ढुलकता हुआ चश्मा, मक्खी सी मूछें, पूरी बाहा की कमीज। नग पैर। अजित को सिर से पैरा तक घूर रहे थे। ऐसे जस जू म कोई जानवर देख रहे हो। कैसी दृष्टि थी उनकी !

"पण्डितजी का लडका है। आतरीवाल पण्डितजी का।" चन्दन सहाय न परिचय दिया था उसका।

' हू। क्या नाम है रे ?" मास्साब टाग सम्हालते हुए बाले, "पढेगा ? कौन सी कक्षा म है ?

'अजित—मिडिल म हू।"

"पहले प्रणाम कर। च दनसहाय न उस झिडका था।

अजित को भी लगा था भूल हुइ है। तुरत हाथ जोडकर प्रणाम कर लिया था।

"ठीक ह। ठीक है। ' मास्साब बाले थे "पुस्तके लाया है ? '

जी नहीं अजित सहम गया था। यह तो सोचा ही नही। मा ने भी नही बताया। मा भी भूल गयी होगी पर चन्दनसहाय ता समझदार था। घर पर ही याद दिला सकता था अजित को।

च दनसहाय सफाई दे रहा था, "अभी तो केवल आप तक सौपन आया था मैं। पहल इसकी मा को बताना होगा ना कि टयूशन कितना होगा ? "

पाच रुपय माहवार। सबसे पाच रुपय ही लेता हू। किसीसे कम ज्यादा नही। यह मिडिल मे होता या पहल म। पाच रुपय ही दन पडते। सारी गली जानती है कि राजनाथ मास्टर के यहा किसीसे भेदभाव नहीं होता।'

' जी। जी हा। चन्दन सकपका गया।

' ता क्या कहत हो ? ' मास्साब न एनक कुछ खास ढग स नाक के ऊपर सरका ली थी। वहा, जहा उसे हाना था। वह ढग विचित्र था। एक अगुली बडी तजी स दायी कनपटी की आर उठती थी और एनक की बाह पर लगकर धीम स उस ऊपर उठा ले जाती थी

"जी, कहना क्या है। आज से यह आपका शिष्य हुआ। इसका जीवन आपको सौंपता हू।   "

"ठीक है। ठीक है। अब तुम इसे ले जाओ। अभी पुस्तकें देकर भेज देना। देख लूगा कि कैसा मिडिल मे पढता है।"

"अभी?"

'हा। अभी। कोई लन्दन से आना है क्या इसे? बस्ता कन्धे पर लटका देना—चला आयेगा।   "

"जी।" चन्दनसहाय बोला था "नमस्कार।"

'ठीक है।" मास्साब मुडकर भीतर चले गये। चन्दनसहाय और अजित सीढिया उतर आये। सारे रास्ते दोना चुप रहे थे। सोच रहे थे कि अजीब हैं भटनागर मास्टर। बात करते हैं तो लगता है कि हजामत बना रहे हैं दन दन दन दन

चन्दनसहाय के मन मे सराहना। मास्टर ही क्या, अगर बात मे रोब न हो। शैतान से शैतान बच्चो से पाला पडता है। इस तरह न करें तो एक को भी न सम्हाल पायें   और अजित चिन्तित। पता नही क्या हो? बहुत क्रोधी लगते हैं   तिस पर अभी ही वापस आना है। अकेले आना होगा। हो सकता है कि तब तक और बच्चो की छुट्टी हो चुके। अजित अकेला ही उनके सामने होगा   फिर से एक फुरहरी बदन को छू गयी   वसी ही फुरहरी जैसी केशर मा के सामने जाकर हो आया करती है

बस्ता है अजित के पास। किरमिच का बस्ता, पर ज्यो का त्यो नया निकार रखा है। कुछ अच्छा नही लगता कि आदमी मिडिल मे पढे और चौथी कक्षा के बच्चे की तरह बस्ता लटकाये हुए सडक पार करे

पर मास्साब ने कह दिया है कि बस्ता लटका देना—चला आयेगा। बस्ता लेकर ही जाना होगा। न ले गया तो मालूम नही क्या हो। भडक पडें। कह कि धरती म से निकला नही है और फशन करता है!   इसी तरह की बातें करते हैं।

अनचाहे ही अजित न बस्ता कन्धे पर लटका लिया था। जी हुआ था कि शीशे के सामन खडा होकर अपनेको देखे   कैसा लगता है? बिलकुल

जोकर लगता होगा।

पास के कमरे मे केशर मा वठी हु। रोज शाम को इसी तरह बैठ जाती हैं। इस कमरे म महल्ले टोले की दो चार स्त्रिया उनके करीब एकत्र हो जाती हैं। इन सबपर उनका दबदबा है। सुकुल जमनाप्रसाद की नवविवाहिता सुनहरी तो सुबह से शाम तक जमी रहती है। अब भी जमी होगी। न जाने कहा कहा की बातें होती है उनम ? कभी कभी अजित कुछ भी नहीं समझ पाता। चुपचाप पडा सुनता रहता है। बीच म किसीका जिक्र चले तो पूछता है, कौन ? '

केशर मा सख्त आवाज म कह देती हैं 'तू नही जानता। तुझे ऐसी बातो से क्या करना ? सो चुपचाप !"

अब शाम से सुनहरी आ जमी है ।

' क्या रे जाना नही है ' केशर मा की आवाज आती है।

"बस जा ही रहा हू—मा ! जा ही रहा हू।' घबराकर अजित उत्तर देता है। शीशे के सामने आ खडा हुआ था। मन खराब हो उठा। कैसा बुरा लगता है ? छि !

सीढिया उतरते समय केशर मा की हिदायत काना म आ पडी थी, "देखना, एसा न हो कि मरे पास कोई शिकायत आये ? कान तोड दूगी तेरे। "

अजित झल्लाहट से भर उठा था। कोई कारण तो था नही इस हिदायत का ? हमेशा बौखलाहट, हमेशा बिना कारण चीखना चिल्लाना, न जाने कौन-सी मशीन लगी है मा के मुह मे ! क्या समझती होगी सुनहरी ? सोचती होगी, अजित बिलकुल ही बच्चा है। और अजित यह कभी पसन्द नही कर पाया कि उसे बच्चा समझा जाये ! कम से कम सुनहरी या सुनहरी जैसी उम्र की स्त्रिया के सामने तो उस अपना बच्चा होना या कहलाना कभी पसन्द नही आया। सुनहरी की भी क्या उम्र है अभी ? बहुत हुआ तो अजित से तीन चार साल ज्यादा होगी ? तीन चार साल का फक भी कोई फक होता है ? अगर सुनहरी के सामने अजित बच्चा है तो सुकुल जमनाप्रसाद के सामने सुनहरी बच्ची है। सुकुल उसका पति है और उम्र मे उससे दस या बारह साल बडा है। सुनहरी उसकी दूसरी विवाहिता है

पहली वाली बडी सीधी थी। अजित को याद है वह। तव सचमुच अजित बच्चा था। सुनहरी जितना बोलती है, सुकुल की पहली पत्नी उतना ही चुप रहती थी। सुनहरी जितनी सुदर है, वह उतनी ही असुदर थी। काली और मुह पर चेचक के दाग। सुकुल जमनाप्रसाद उसे बहुत पीटा करता था। कुछ सिसकिया महल्ले मे सुनी जाती थी, पर किसीने उस स्त्री की चीखें कभी नही सुनी। सुनाई पडती थी सिर्फ सुकुल की गालिया मा, वहिन, वेटो—सबको लेकर कैसी कैसी गालिया वकता था सुकुल! छि! अजित याद करता है और जी मितलिया खाने लगता है।

बहुत दिनो तक अजित समझ नही पाया था कि सुकुल अपनी पहली पत्नी को क्यो पीटा करता था अब भी ठीक तरह समझ नही पाया है। वस, थोडा थोडा सुना-समझा है। वह भी इसलिए कि सुनहरी और केशर मा म उसे लेकर बातें होती हैं

"वस, सहोद्रा कह देती थी उससे और वह मीरा को पीटने लगता! राम राम, देखा नही जाता था मुझसे! कैसा जुल्म! रो रोकर मर गयी वेचारी।"

"अब मैं देखूगी बुआ। वह राड मुझे कैसे पिटवायेगी?" सुनहरी कहती, "अगर जूतिया पडवाकर उसीको घर से न निकलवा दिया तो मेरा नाम सुनहरी नहीं।"

अजित की समझ मे कुछ न आता। सिवा इसके कि सहोद्रा सुकुल जमनाप्रसाद को सिखा देती थी कि तू मीरा को पीट! वह पीटता था। हमेशा पीटता रहा। और एक दिन मीरा मर गयी। अब वह सुनहरी को भी पिटवाना चाहती है और सुनहरी इस चैलेंज को स्वीकार रही है कि देखेगी सहोद्रा उसे कैसे पिटवायेगी।

पर सहोद्रा क्यो किसीको पिटवाती है? सहोद्रा—जो सुकुल की माई (मामी) है। अजात अजब से दिमागी घपल मे पड जाता। अब तक पडा हुआ है। कुछ भी समझ नही आता। हा, इतना लगता है कि न तो बिना कारण कोई किसीको पिटवाता है और न पीटता है। जरूर, कोई कारण है। ऐसा, जो अजित की बुद्धि से परे है। कभी न कभी तो समझ आयगा ही। और समझने के लिए बहुत से अवसर पडे हैं। सुकुल भी है, सुनहरी

भी और सहपाठी भी । सद्दारा सुकुल के मकान मे ही रहती है । उसकी मामी ठहरी ।

सीढियां उतरकर गली मे आ जाता है अजित । दो मिनट बाद भट नागर मास्साब के यहां होगा । मालूम नही कि क्या पूछ बैठे ? भिन्न ? एलजेब्रा ? ज्यामेट्री ? अगरेजी पोइम ? सूर, मीरा, कबीर ? वसे चिन्ता की बात नही है—अजित को बहुत कुछ याद है । पर कह रहे थे वह—'देखता हू कैसा मिडिल मे पढता है ।' लगता है कि आज टेस्ट लेंगे पढाई का से ।

शाम उतरने लगी है । गरमियो की शाम । गली मे चारपाइयां पड रही है । सुरगो और उसके कम्पाउण्डर पति ने चारपाई बिछा ली है । तीन चार पाइया पडती है उनकी । एक पर सुरगो का पति शामलाल कम्पाउण्डर दो बच्चियों को लेकर लेटता है और दूसरी पर दो बच्चियों को लेकर सुरगो । तीसरी चारपाई पर बतरतीबी से तीन बच्चियां समायी रहती हैं । सुरगो हर साल बच्चा देती है सात दे चुकी । अब तक लडका नही हुआ । एक दिन केशर मा से कह रही थी 'देखो तो मेरा भाग्य ! ' और केशर मा समझा रही थी, 'अभी तेरी उमर ही क्या है । भगवान पर भरोसा रख । अगली बार जरूर बेटा होगा ।'

चारपाई के करीब से गुजरते हुए अजित ने चोर नजर सुरगो की ओर लगा दी । लगा कि सुरगो का पेट कुछ बढा हुआ है जरूर उसमे बच्चा ही होगा । लडकी नही लडका । केशर मा कह रही थी कि इस बार ।

दो कदम आगे बढा था अजित । देखा कि शभू नाई द्वार पर बैठा जोर जोर से खास रहा है लालटेन की धीमी रोशनी मे अजित ने उसका चेहरा देखा और जाने क्या भय लगा उसे । कैसी भयानक खासी ! शभू का आधा चेहरा रोशनी म, आधा अधेरे म । गालो म गड्ढे आखें बाहर को उबलती हुई । इस तरह जैसे उछलकर अभी गली म आ गिरेंगी । पथरीली गली म । पत्थरो से चोट खाकर फूट जायेंगी । बस ही जैसे शभू की छत से अजित गिरे और गागर की तरह फूट जाय । गली म खून ही खून ।

नरकासुर शभू ! अजित ने जल्दी जल्दी कदम आगे बढा दिये ।

शभू का वह खासना, कफ उगलना। चेहरा सह नही पा रहा था वह अनायास अजित को रेशमबाई का खयाल हो आया। शभू की पत्नी। गोरी, सगमरमरी औरत। सारा मोहल्ला, गली और गली से बाहर बाजार भी रेशमबाई को सराहता है। क्या जवानी, क्या सुन्दरता और क्या रूप रग ! लगता ही नही है कि नाइन है। राजकुमारी सी लगती है। पहनाव ओढाव भी ठप्पे वाला। एक दिन सुरगो की बात सुनी थी अजित ने। शायद वैष्णवी सीतलाबाई कह रही थी। शभू और रेशम का जिक्र 'मुझे तो विश्वास नही होता बहिन ! इस चाण्डाल का कैसे वरा होगा रेशम ने।"

"विश्वास की क्या बात है।" सुरगो अपने घर की देहरी पर आलथी पालथी मारे हुए गोद की सातवी बच्ची को आचल मे छिपाये हुए थी, "कलदारा मे बडा जोर होता है। शभू से रेशमा नही ब्याही है, बल्कि विक्टोरिया रानी के जमाने वाले कलदारो से ब्याही है। शभू के पास हैं। गडे हुए हैं।"

'ऐसे कितने होगे ?" वैष्णवी ने पूछा था।

"होगे—सौ पाच सौ ! '

' बस, सौ पाच सौ पर ही आ मरी रेशम ! '

"रेशम नही मरी, उसके मइया बाप आ मरे ! ' सुरगा ने मुह बिचका कर कहा था। तभी उसकी गोद की बच्ची रैं रैं कर उठी थी। सुरेगा ने उसे धमका दिया था, "मर ! चुप रह राड ! '

अजित गदन झुकाये सब सुनता गया था। अपने घर का चबूतरा चढते चढते वैष्णवी के शब्द कानो मे आ टकराये थे। शब्द जिन्होने देर तक अजित का मन मथा था। आज तक याद है वैष्णवी बोली थी, 'अब इसमें धरा क्या है ! मरा खाली कनस्तर ! खो खो कर बजता रहता है। मुझे तो नीद भी नही आती। यही, बगलवाली पौटार मे सोता है। रात भर खासी सुनती हू। ऐसी गति से तो भगवान ऊपर ही उठा ले, वह ज्यादा अच्छा "

और फिर सुरगो का उत्तर ।

' ऐसे कैसे उठा लेगा, बाई ! शभू का जी तो इस हवेली म धरा है। जब किसीका जी किसीमे अटका हो तो गले मे आकर भी प्रान नही

छूटत ! समझी !"

चवतरा पार कर द्वार मे समाया था अजित वैष्णवी के शब्द

"अरे, मर जाये हीजडा कहीं का ! "

हीजडा ? शभू ? हीजडे तो वे होते हैं जो किसीके यहा बच्चा पैदा होने पर नाचते गाते है। उनकी आवाज भारी, चलने का तरीका अजब, बोलन का तरीका अलग, नगे हो जाते है शभू तो ऐसा है नही ? फिर हीजडा कैसे हुआ ? वैष्णवी भी कैसी पागल है ! ठीक से किसीकी उपमा भी नही दे सकती ! अजित ने सोचा था, पर इस सोच के साथ ही साथ यह एहसास भी था कि वैष्णवी वडी है। वच्ची तो है नही, जिसकी उपमा ऊलजलूल होगी। जरूर कोई वात होगी, जिस कारण वह शभू को हीजडा कह रही है। मन मे वात समा नही सकी थी। सीधा केशर मा के पास गया था, "एक बात पूछू, मा ?'

'पूछ। क्या है ?"

"हीजडा कौन होता है ?"

केशर मा ने कुछ परेशान होकर उसे देखा था। शायद सोच रही थी कि यह कसा सवाल कर रहा है। कोई तुक है भला ! बोली थी, "तूने हीजडे नही देखे क्या ? वे हीजड ही तो थे, जो अभी देवीदयाल पोस्ट मास्टर के यहा वच्चा होने पर आय थे ?"

"पर शभू तो उनमे था नही ?" अजित ने विस्मित होकर कहा।

'कौन शभू?"

"यही—शभू नाई। सीतला भाभी कहती हैं कि वह हीजडा है। अजित ने वात स्पष्ट वात की।

केशर मा ने उसे घूरकर देखा था। अजित डर गया। यह दृष्टि उनके बहुत क्रोधित हो जाने की दृष्टि है। वह गुर्रायी थी, "चुप मूख ! तू क्या औरतो की वातें सुनता रहता है। जा यहा से ! "

भाग आया था अजित। प्रश्न आज तक ज्यो का त्यो मन मे रखा है। क्या कहा गया था शभू को हीजडा ? और केशर मा ने भी इनकार नही किया कि सीतला वैष्णवी झूठ वोलती है। उलटे अजित को डाटकर भगा दिया।

शभू नाई की खासी अजित के कानो मे हलकी हो गयी है काफी आगे निकल आया है। गली के मोड पर।

छोटे बुआ और मोठे बुआ चले आ रहे है। मास्साब के यहा से छुट्टी हो गयी होगी इनकी। अजित करीब पहुचा तो मोठे बुआ ने पूछा, "क्यो—जा रहा है?"

"हू।" अजित आगे हो लिया। जाने क्यो मोठे बुआ से बहुत बातचीत करने का मन नही होता। केशर मा की भी हिदायत है कि उससे ज्यादा बातचीत नही की जाये। सगति खराब है उसकी! अजित कुछ नही समझता। बस, इतना जानता है कि मोठे बुआ झगडे करता रहता है, मारपीट करता है, झूठ बोलता है और सिगरेट पीता है। इसलिए कोई पसन्द नही करता उसे। यहा तक कि उसका सगा भाई छोटे बुआ तक उसे पसन्द नहीं करता। ऐसा क्यो करता है मोठे बुआ? क्या मजा आता है इसमे उसे? पर किस आदत का क्या मजा है—यह उस आदत को समझे बगैर अजित क्या जानेगा?

इब्राहीम रगरेज के मकान मे शोर था। बाहरी कमरे मे। उनके परिवार में बच्चे भी बहुत हैं। शोर मचा रहे थे। एक को जानता है अजित। मुन्ने मिया। म्यानीदार पायजामा और चौखाने की कमीज। वैसी ही, जैसी उनके बाप इब्राहीम की तहमद होती है। मुसलमान तहमद बाधते हैं या पायजामा पहनते ह। शक्ल से ही पहचान मे आते हैं। मुन्ने मिया के बाल ताबिये हैं, रग गोरा। जबान मे मिठास। कभी कभार उनसे बात हो जाती है। यू ही चलते फिरते अजित मिल जाता है।

"कहा चले मिया?" मुन्ने पूछता है।

अजित जहा जा रहा होता है, बता देता है। बस, उसे यह बुरा लगता है कि मुन्ने उसे मिया कहे। एकाध बार विरोध भी करना चाहा है, पर कर नही पाया। जाने क्यो?

मुन्ने मिया घर मे घुस जाते हैं। चाद और इब्राहीम का परिवार ही ऐसा है। *ज्यादा किसीसे घुलते मिलते नही। बाकी घर हिन्दुओ के हैं। उनका* तौर-तरीका, रहन सहन, वेश भूषा—सब अलग। कैसे आपस मे घुलें? फिर अजित को तो घर से भी हिदायत मिली है। चाद या इब्राहीम के घर ज्यादा

आना जाना नही है। दूर की दोस्ती अच्छी। शायद इह भी अजित को लेकर ऐसी ही हिदायतें हागी। अजित सोचता है।

भटनागर मास्साब के घर के सामने कुछ लोग हैं। शायद उस मकान मे मेहमान आय हुए है। कुछ चखचख हो रही है उनमे। अजित ध्यान नहीं देता। दे नही पा रहा है। दिमाग मे सिफ भटनागर साहब समा बैठे हैं पहली पहली वार उनके सामने वैठकर पुस्तक खोलेगा अजित। चन्दनसहाय कह रहा था कि बेंत लेकर बैठते हैं और सारी पढ़ाई पलक मारते गले में उतार देते हैं

सीढिया चढ रहा है अजित। दिमाग में एक घुनझुनी भरी हुई है। बेंत भटनागर साहब आखो से नीचे खिसककर नाक पर अटकता चश्मा और सामने अजित बैठा होगा। गणित की किताब खोले हुए। चक्रवृद्धि ब्याज का सवाल गणित कुछ कमजोर है अजित का।

ऊपर आ पहुचा। देहरी पर ही थमा रह गया। क्या कहकर पुकारे? बरामदा खाली है। सिफ टाट पट्टी टाट पट्टी के एक ओर फैली स्याही। शायद किसी बच्चे ने दवात लुढका दी क्या कह? पुकार ले—मास्साब!

'कौन हो तुम?'

अजित चौक गया। सामने एक लडकी खडी है। नीली फ्राक, सफेद सलवार। बिलकुल अजित के बराबर कद। शायद इतनी ही उम्र होगी। गोरी भूरी, सुदर सी लडकी दो चोटिया। एक आगे, एक पीछे। बाल तो खूब लम्बे हैं। केशर मा कहती है कि लम्बे बालावाली औरतें भाग्यवान होती हैं। लडकी भाग्यवान होगी। होगी क्या—है ही। मास्साब की लडकी है और मास्साब के यहा मिडिल मे पढ़नेवाला बच्चा हो या पहले दरजे म— पाच रुपये के भाव पढाया जाता है। खूब पैसे आते होगे? पर क्या मालूम यह लडकी मास्साब की ही है या किसी और की? अजित भी गजब का पगला है। जबरन किसी लडकी के बारे मे ऊटपटाग सोचे जा रहा है

"क्या नाम है तुम्हारा?' वह पूछ रही थी।

"अजित शर्मा।'

"क्या काम है?"

"पढ़ूगा।"

"हमारे यहा पढोगे ?"

"हू ।" अजित ने स्वीकार म सिर हिलाया ।

"पिताजी पढायेंगे तुम्हे ? उन्होने वुलाया है ?"

अजित चुप रहा । क्या कहे ? कह दे कि 'हा' । और कह देने से पहले यह मालूम ही नही है कि लडकी किसकी है ? हो सक्ता है मास्साव की हो—हो सक्ता है उनकी न हो

"क्यो ?"

"हा, मास्साब पढायेंगे ।"

"रोज पढने आया करोगे ?" लडकी की आवाज और मीठी हो गयी थी । अजित को अच्छी लगी । उसने पुन हा मे सिर हिला दिया था । तभी मास्टर साहब की आवाज आयी, "कौन है मिन्नी ? '

"एक लडका है, पिताजी ।"

"कौन लडका है ? अच्छा अच्छा—वही होगा । पण्डितजी का लडका । ले आओ उसे ।"

"चलो ।" वह बोली । अजित पीछे हो लिया । दालान पार करके लडकी कमरे मे समा गयी । अजित चुपचाप पीछे । फिर मास्टर साहब के सामने

"बैठो ।" मास्साब बोले ।

अजित बैठ गया । स्प्रिंगवाले खिलौने की तरह । जैसे खटका दबाते ही खिलौने का धड नीचे हो जाये । बहुत कम देख पाया है कमरे को, पर कुछ-कुछ देख लिया है । लडकी चारपाई पर बैठ गयी है । एक खूबसूरत-सी औरत भी बैठी है—जवान । हो सकता है कि मास्टरनीबाई हो मास्टर साहब के 'घर से' । किसीकी औरत उसके 'घर से' ही होती है । ऐसा ही तो कहते हैं सब ! पर मास्टर साहब इतने बूढे सिर के बाल सफेद और उनकी मास्टरनी इतनी सुदर और जवान नही नही—अजित ऊटपटाग सोच रहा है । लडकी होगी मास्टर साहब की । पर क्या जरूरी है कि लडकी ही हो ? घरवाली भी हो सक्ती है । पर जरूर हो सक्ती है । शभू नाई की घरवाली है रेशमा । दोनो मे कितना अतर है ! फिर भी मद-औरत है । शभू उसका घरवाला है और रेशमा शभू की घरवाली है । ऐसा

ही यहा हो—क्या मालूम ? इसका मतलब है कि मास्साब के पास भी विक्टोरिया रानी के जमाने के कलदार होंगे। यही कोई सौ पाच सौ। जिस किसी बूढ़े के पास ऐसे सौ-पाच सौ कलदार हो, वह बडी आसानी से अपने लिए एक सुदर सी जवान घरवाली ला सकता है। मास्साब भी ले आये हैं ।

मास्साब स्टूल पर बैठे हुए हैं। तम्बाकू रगड रहे है चुटकी भर कर दाढ के नीचे दबा लेते हैं, फिर सवाल करते हैं, "हा, तेरा क्या नाम है ?"

"अजित।"

"सातवें मे कौन से दरजे से पास हुआ था तू ?"

"पहला नम्बर ! सारे स्कूल मे पहला नम्बर था मेरा।"

"अच्छा अ ! शाबास ! लडका होशियार है। पुस्तक लाया है ?"

"जी।"

"निकाल उन्हे।"

अजित ने बस्ते मे से पुस्तकें बाहर निकाली। गणित, अलजेब्रा, भूगोल वल्ड हिस्ट्री, गद्य पद्य, अगरेजी पोइट्री ।

"बस बस।' मास्साब बोले, "एक साथ सब पढ लेगा क्या ?" फिर झुककर उन्होंने पुस्तकें उठा ली। पन्ने पलटे। चश्मे को अगुली का झटका देकर ऊपर किया और बुदबुदाये, पुस्तकें तो सभी नयी रखी हैं। क्या पढा है तून ?"

'जी, सब पढ चुका हू मैं। अब रिवीजन कर रहा हू।'

रिवीजन कर रहा है !' अचरज व्यक्त किया उन्होंने, "पर पुस्तकें तो इतनी साफ सुथरी रखी हैं जैसे अभी खरीदी गयी हो। हूऊ !"

"पढाते हो या जासूसी करते हो तुम ?" जवान औरत ने मास्साब को टोका। अजित चौंक गया। यह तो बिलकुल डाटना हुआ। बस, निश्चित हो गया कि यह औरत मास्साब के घर से ही है। उनकी बेटी होती तो इस तरह थोडे ही बोल सकती थी ।

मास्साब खिसियानी हसी हस दिय, "वह तो यू ही यू ही पूछ रहा था मैं। बस लडका बहुत इटेलीजेण्ट है ।

' इण्टेलीजेण्ट न होता तो पहले दरजे से कैसे पास होता !" जवान

औरत पुन बोली। अजित ने कुछ डरकर उसे देखा। मास्साब से ज्यादा गुस्सैल लगती है उनकी मास्टरनी और अजित यहा पढने आया करेगा। मास्साव के अलावा यह भी तो घर मे हागी, पर तभी मिन्नी पर दृष्टि जा ठहरी । यह लडकी अच्छी है। कितनी मीठी आवाज इससे दोस्ती करेगा अजित।

मास्साब चुप हा गये थे। सहम से गये थ। औरत को लगा कि वे बोलना चाहकर भी बोल नही पा रह है थोडी देर बाद कहा था, "ऐसा कर—आज मिन्नी के साथ पढ ले । घण्ट भर बैठना। यह भी मिडिल मे ही है। मैं कल से तुझे पढाया करूगा। ठीक ?"

"जी।" अजित ने स्वीकार मे सिर हिला दिया।

मास्साब उठ खडे हुए, "अच्छा, माया! सब्जी बताओ। क्या लाना है ?"

हू—तो माया नाम है मास्टरनीबाई का। अजित ने सोचा। अच्छा नाम है।

मिन्नी चारपाई से उतर आयी। अजित से बोली, "चलो, बाहर बरामदे म पढेंगे। मैं भी अपनी पुस्तकें लाती हू।"

अजित ने पुस्तकें बटोरकर बस्ते मे रखी और चुपचाप बाहर चला आया। टाट-पट्टी पर बैठते समय एक गहरी सास ली। उस कमरे मे कुछ घबराहट होने लगी थी, नही जानता कि क्या, पर बाहर आकर तसल्ली हुई है । आगे से बरामदे मे ही बैठा करेगा। मास्टरनीबाई से कुछ भय लगता है लगने का ठहरा, जब मास्साब ही उनके सामने सहम जाते है, तो अजित तो बच्चा

"अजीत " मिन्नी सामन आ बैठी।

"अजीत नही, अजित । मेरा नाम अजित है। 'ज' पर छोटी 'इ की मात्रा—अजित।"

"अच्छा अच्छा।" वह हसी। अजित को अच्छा लगा। दात झक्क् सफेद है पूरी बत्तीसी सिलसिलेवार। फिर कुछ झेप भी हुई। अजित के स्वय के सामनेवाले दो दात बडे है। बाहर नही निकले हुए ह पर चौडे हैं। दोना के बीच थोडी जगह भी है। इतनी कि उस बीच एक छोटा-सा दात

और समा सकता है। जब जब शीशा देखता है—उसे अच्छा नही लगता। हालांकि सब कहते हैं, वे बुरे नही लगते। केशर मा तो कहती हैं कि बडे दात भाग्यवान के होते हैं। धनी भी होता है ऐसा आदमी—पर यहा जो जगह है इसके कारण ऐसे आदमी के पास धन ठहरता नहीं वस, आता जाता रहता है।

भीतर से मास्साब और मायादेवी के स्वर आ रहे हैं। शायद मास्साब को वता रही है कि क्या-क्या लाना है । अजित को अच्छा नही लगा। मास्साब इतने धीमे क्या बोलत ह। जबकि मायादेवी की आवाज वह साफ साफ सुन पा रहा है क्या भय लगता है मायादेवी से ? क्या लगता है ?

'तुम तो मिडिल मे पढते हो ना ?" मिन्नी पूछ रही है।

'हा।'

"तब यह बस्ता क्यो रखते हो ? जरूरत की किताबें रखा करो।"

अजित चुप। लगा कि बरामदे का निचला सीमट फोडकर भीतर चला गया है। उसे खुद पसन्द नहीं है, पर मास्साब न कहा था वही झेंपवाली हरकत हुई।

मिन्नी मुस्करा रही है। कहती है "आगे से मत रखा करो बस्ता। अब तुम छोटे थोडे हो। क्या उम्र है तुम्हारी ?'

'चौदह साल का हो रहा हू। इस महीने पूरा हो जाऊगा।"

मैं भी चौदह साल की हो रही हू। फरवरी मे हो जाऊगी। बस, तुमसे दो महीने छोटी हू—है ना ?'

'हू।' अजित कह गया, पर बस्ता रखने की झेंप अब भी भीतर समायी हुई है।

"मिन्नी !"

'हा।" वह चली गयी—भीतर। अजित देखता रहा। लडकी तेज है। अच्छी भी है। खूब बातें करती है। अजित भी उससे खब बातें किया करेगा। पर केशर मा को मालूम पड गया कि वह पढने जाता है और बातें करता रहता है तो पर मालूम कसे होगा उन्हे ?

भीतर से मिन्नी की आवाज आ रही है 'एक प्याला और दा ना ! "

"क्यो ?" कोई पूछ रहा है।

"बाहर एक लडका बठा है—बरामदे मे।" मिन्नी बता रही है।

"कौन लडका ?"

"अजित।"

"कौन अजित ?"

"एक नया लडका आया है। दो ना मौसी ! "

क्या ला रही है अजित के लिए ? कुछ चीज है। शायद दूध या चाय। प्याले म तो ऐसी ही चीजें आ सकती हैं, पर यह मौसी कौन है ? क्या मिन्नी अपनी मा को मौसी कहती है ? हो सकता है—कहती हो। पर वह कोई और होगी। न होती तो पूछती क्यो कि कौन लडका है। जरूर वह कोई और है। मास्टरनीबाई को तो मालूम है कि अजित नाम का एक नया लडका पढन आने लगा है कौन है वह ? मिन्नी आ जाये तो उसीसे पूछ लेगा कि कौन है।

मिन्नी आ गयी। हाथ मे एक प्याला। अजित की ओर बढा दिया, "लो !"

अजित ने उसकी आखो म देखा। बहुत अच्छी लडकी है। कितनी प्यारी आखें, मुस्कान, स्नेहिल व्यवहार खूब पटेगी इससे। मगर नये-नये परिचय मे इस तरह खाने पीने की चीजें नही स्वीकारी जाती। केशर मा की सख्त हिदायत है कि किसीके यहा ऐसा उथला व्यवहार नही करना चाहिए। अजित न इनकार कर दिया, "नही, मैं नही लेता।"

"क्या ?"

"इसलिए कि मैं नही लेता।"

' पर कोई कारण भी तो हो ?"

अजित तय नही कर पाया कि क्या कारण बताये। बोला, "मा न कह रखा है।"

"क्या कह रखा है ? ' मिन्नी ने प्याला अजित के सामने रख दिया।

"यह कि इस तरह खाने पीने की चीजें किसीसे नही लेनी चाहिए। कुछ अच्छा नही लगता है।"

"तुम्हारी मा बहुत अच्छी ह, पर उन्होने यह तो कहा नही होगा कि

मिन्नी के यहा मत पाना ! लो ना ! पिओ। ठडी हो जायगी चाय ।"

अजित ने उसकी ओर निरीह भाव से देखा। अब इनकार नही कर पा रहा है। *इतना स्नेह भरा आदेश कैसे ठुकरा दे !* पर केशर मा की हिदायत ! बोला 'तुम पिओ ना ! "

"फिर वही बात। पी लो। इस बार पी लो, फिर कभी नही कहूगी। अच्छा ! तुम्हारे लिए मौसी ने दी है।"

'कौन मौसी ?'

"बताऊगी तुम्हे। बहुत अच्छी हैं मेरी मौसी। हमारे साथ ही रहती हैं। तुम चाय पिओ।'

अजित ने प्याला अपने करीब खीच लिया। प्लेट मे उडेल उडेलकर पीने लगा। मिन्नी उसकी ओर देख रही है बहुत खुश। जसे अजित के गले मे उतरा घूट मिन्नी के गले म उतर रहा हो। अचानक पूछ बैठा था अजित, "तुम नही पिओगी ? अपना हिस्सा मुझे पिला रही हो ?" मन मे मलाल। पहले खयाल आ जाता तो आधी आधी कर लेता। अब तो जूठी कर चुका है।

"*मेरे लिए मौसी बना रही हैं।*"

"ले, मिन्नी !"

अजित ने मुडकर देखा।

"यह है मेरी मौसी।" मि नी ने कहा।

अजित के एक हाथ म प्लेट है, दूसरे म प्याला। अभिवादन कसे करे ? सिर झुकाकर सकेत स प्रणाम किया, 'नमस्ते !"

"नमस्ते !"

अजित लगातार देखे जा रहा है—ऐसी होती है मौसी ? बिलकुल लडकी। लडकी मौसी हो गयी है। उसे अपनी मौसी का खयाल आया—बूढी ह। सारे बाल सफेद। चेहरे पर झुरिया। मा के साथ देखता है तो लगता है कि हा कोई मौसी है। सेंट परसेंट मौसी। पर यह मौसी मुश्किल मे मिन्नी से दो-तीन साल बडी होगी और मौसी बन गयी ! अजित का जी हुआ हस कसी मौसी है !

"पिओ, देख क्या रहे हो !" मिन्नी न उसे टोका। अजित को लगा भूल हुई है। सिटपिटाकर पीने लगा।

मौसी कहलानेवाली लडकी भीतर चली गयी। अजित सोचता रहा। हो सकता है कि यह लडकी मिन्नी की असली मौसी न हो। वैसी ही हो जैसी दूर के रिश्ते मे उसकी एक चाची हैं अजित से दो साल बडी चाची। अजित को बडा अजीब सा लगता है जब उन्हें चाची कहना पडता है। शब्द मुह से भागते से लगते हैं। मन कहता है कि क्या चाची-चाची कहता है । और अजित भागकर शब्दो को पकड लाता है। फिर जोडता है शब्द। तब एक सम्बोधन—चा आअ ची ई ऽ।

ऐसी ही होगी यह मौसी। अनायास पूछ बैठा था वह, "यह तुम्हारी असली मौसी हैं ?"

"असली नही तो क्या। बिलकुल असली हैं।' मिन्नी ने उत्तर दिया।

झेंप का एक थपेडा और सहा अजित ने। ऐसे पूछना चाहिए भला ? क्या सोचती होगी मिन्नी ? यह कि बिलकुल ही मूख है। एक तो बस्ता लटकाता है, तिसपर मूखता की बातें करता है। उल्लू।

"नकली मौसी कसी होती हैं ?" मिन्नी पूछ रही है।

"हैं ? वह वह " अजित को सूझता नही कि क्या कहे। जो कचरा बिखर गया है, उसे कैसे बुहारे ?

"बताओ ना, कैसी होती है नकली मौसी ? ' वह बहुत गभीर है। सोच मे कि एसा क्यो पूछा था अजित ने ? पहचान होनी चाहिए कि असली कैसी होती है, नकली कैसी।

अजित सफाई देता है, "मरा मतलब था कि तुम्हारी यह मौसी दूर के रिश्ते की मौसी तो नहीं हैं। इसलिए पूछा था।"

"नही नही। यह बिलकुल असली ह।" मिन्नी आश्वस्त हो जाती है। थब समझी असली नकली का भेद क्या होता है। कहती है, "यह जा कमरे मे मेरी मा को तुमन देखा है ना "

'हा।"

"उनकी छोटी बहिन ह मेरी मौसी। असली छोटी बहिन। हमारे

नानाजी नागपुर मे रहते हैं। नानी नही रही हैं, इसलिए मौसी का हमारे घर पर ही छोडा है उन्होने।"

"क्या नाम है तुम्हारी मौसी का ?"

'जया-जया कहते हैं सब। वैसे पूरा नाम जयवन्ती है । अच्छा नाम है ना ?"

"हा, बहुत अच्छा नाम है।" अजित कहता है। नाम मस्तक मे गहरे तक उतार लिया है—जया जया जयवन्ती।

सडक पर शोर होने लगा शायद लोग झगडने लगे है। मिन्नी दौड कर झरोखे पर जा पहुची, फिर वही से अजित को बुलाया, "ऐय् देखो, तुम्हे एक मजा बताऊ !

अजित भी दौड गया। दोनो ही कोहनिया टिकाकर झरोखे से झाकने लगे। आते समय जिन लोगो को भीड की शक्ल मे देखा था, वे जोर-जोर से झगड रहे थे अजीब अजीब बाते। अजित ताल मेल बिठाने की कोशिश कर रहा है— क्या झगड रहे है ?

"जब विदा ही नही करनी थी, तो ब्याही काहे के लिए ?" एक बूढा आदमी कह रहा था

'हमने लडकी दी है तो क्या हत्या करने के लिए दी है ! जाओ, तुमसे जो बने सो कर लो। बिलिया नही जायेगी !' देहरी पर खडा व्यक्ति जवाब दे रहा है। अजित जानता है उसे। भरोसेराम नाम है। बिजलीवाला। सडक के खभो पर बिजली म कोई गडबड हो जाती है तो यह नसैनी (सीढ़ी) लेकर उसे सुधारने जाता है दूर दूर तक देखा है उसे। कितनी लम्बी नसैनी होती है ! बिलकुल खम्भे के सिर तक पहुच जाती है। एक तरफ से भरोसेराम उसे कधे पर लिए रहता है, दूसरी तरफ से कोई और। उसी जैसा कोई बिजलीवाला। कई बार अजित की अपनी गली मे ही भरोसेराम नसनी लेकर आ चुका है पर यह किस लडकी की बात कर रहा है ? क्या ? किसकी हत्या करनेवाले हैं य लोग ?

"अरे, हरामी। मैं सब जानता हू। तू नक म जायेगा ! कीडे पडेंगे तेरे। जवान बेटी घर म बिठाये रहगा तो किसी दिन लुच्ची हो जायेगी ! हा नई तो। " बूढा कह रहा है।

"अरे, जा। ऐसे कैसे लुच्ची हो जायेगी! मेरा खून है। तुम जैसो का नही। "

"तो नही भेजेगा तू ?"

"नही!" भरोसेराम चिल्लाता है।

"तुझे जूते खाने है क्या ? हा नइ तो!"

"अरे, मर गये तुझ जैसे जूते देनेवाले!"

"मैं कहता हू, भरोसे हा नइ तो!"

"अरे जा। क्या करेगा तू!"

वे एक दूसरे की ओर झपट पडते है। कुछ लोग दौडते हैं। वे—जो अब तक दूर खडे तमाशा देख रहे थे—गलीवाले।

अजित के बदन मे सन्नाटा फैल जाता है। झगडा बढ रहा है मार-पीट, खून खच्चर

"क्यो, यहा क्यो खडे हुए हो ? तमाशा हो रहा है क्या! जाकर पढो!" अजित और मिन्नी घबरा जाते हैं। पीछे मे मास्टरनीबाई डाटती है। दोनो सहमकर पुन बरामदे मे आ बैठते हैं। एक-दूसरे की ओर देखते हुए। फिर देखते हैं कि मास्टरनीबाइ स्वय झरोखे से झाकने लगी है। "ऊह, खुद तो देख रही है और हम दोनो को भगा दिया।" मिन्नी बुद-बुदाती है।

देर तक शोर होता रहता है फिर धीमा होने लगता है और फिर गायब! शायद वे लोग चले गये हैं, जिन्हें भरोसेराम भगा रहा था कौन थे वे ? माया देवी और जया झरोखे से हट आती हैं। बडबडाती हुई—"कमीना है!"

"समझ मे नही आता, लडकी को इस तरह घर बिठाये रहने का क्या मतलब है ? जब शादी हो चुकी तब विदा मे एतराज क्यो करता है ?"

"लुच्चा है। " मायादेवी की टिप्पणी।

"अगर त्रिलिया की ससुरालवाले उसकी मार पीट करते हैं तो उन्हें समझाया बुझाया जा सकता है, इस तरह इस तरह कब तक जवान लडकी को घर म बिठाये रखेगा यह!" जया कह रही है। मिन्नी की मौसी। अजित पुस्तक खोलकर सामने रखे हुए है। आखें शब्दो पर, मगर दिमाग

जया और मायादेवी की वातो म केंद्रित। शायद यही स्थिति मिन्नी की भी है।

"यह सारी जिन्दगी बिलिया को घर बिठाये रहेगा। देख लेना।" मायादेवी कह रही है।

"यह कैसे हो सकता है? क्या लडकी को अक्ल नही है। बिलिया भी तो छोटी नही। समझदार है"

तू नही समझेगी।" मायादेवी कहकर भीतर चली जाती है। कमरे मे। जया थोडी देर उसी तरह खडी रहती है—सोच म डूबी हुई, फिर अचानक मिन्नी से पूछती है "कितना पढा तुम लोगो ने?"

अजित और मिन्नी सिटपिटा जाते हैं। पढा तो कुछ भी नही है।

"इसका मतलब है कि तुम दोनो गप्पें करते रहे हो। क्या?"

दोनो निरीह भाव से जया मौसी की आखो म देखते है। अजित देख रहा है—यह मौसी है। कितनी सुदर लडकी मौसी हो गयी। सिनेमा मे ऐसी लडकिया ही तो काम करती हैं। सलवार, कुरती और कुरती मे उभरे दूध जया मौसी है सुदर। गुस्से म हैं, पर कितनी अच्छी लगती हैं। सहमा अजित को लगता है कि मूर्खता कर रहा है। बराबर आखो मे आखें डालकर घूरते जाना कोई अच्छी बात है क्या। तपाक स दृष्टि चुका लेता है। पुस्तक के शब्दो से अटका देता है। पर आखें भी कमाल की चीज है। शब्दो म भी जया मौसी को ही देख रही हैं। पूरे पेज पर वही तो खडी हैं अजित को देखती हुई।

सीढिया से पदचाप कोई आ रहा है। शायद मास्साब अजित सीढियोवाले द्वार की ओर देखता है मास्साब नही हैं। कुदन दरजी

कुदन बरामदे म आ जाता है। हृष्ट पुष्ट शरीर, आकर्षक व्यक्तित्व। पाजामा कुरता पहने हुए है। श्रीजल्गार। अजित खूब पहचानता है उसे। इस मकान के ठीक सामनेवाले मकान म रहता है वह। नीचे के कमरे म उसकी दुकान है। एक ऊचा टेबल सामने रखकर कपडे काटता है फिर सिलाई मशीन पर जा बैठता है। बडा माहिर आदमी। ब्लाउज सीने लिए मशहूर है कुदन। पर यहा किसलिए आया है?

वह जया मौसी की ओर देख रहा है लगातार बिना कुछ बोले। अजित को जया मौसी की ओर उसका इस तरह देखना, कुछ अच्छा नही लगता। पर क्या कहे? शायद जया मौसी भी कुदन की वह दृष्टि सहन नही कर पा रही है। अजित समझ रहा है। जया मौसी के चेहरे पर कुछ आवेश और घृणा सी छलक आयी है। क्यो? पता नही। पर है—यह तय है।

"नमस्ते!" देर बाद वह बोलता है।

जया मौसी जवाब नही देती। तेजी से पास के कमरे मे समा जाती है। शायद वह कुदन को बिलकुल भी पसन्द नही करती ह।

कुदन के चेहरे पर सहसा उखडाव पैदा हो गया है। एक पल चुप रहकर पूछता है, "बहिनजी कहा है? "

"बैठक मे।" मिनी उत्तर दे देती है।

कुदन भी बैठक मे समा जाता है।

मिनी कहती है, "गणित निकालो!"

"है? हा हा।" अजित सवाल खोजने लगा है। पर भीतर ही भीतर एक सवाल भी मथ रहा है उसे—कुदन के प्रति जया मौसी इतनी बेरुखी क्यो बरत रही थी? जरूर कुदन ने कभी झगडा किया होगा है भी झगडालू! स्कूल आते जाते मे कई बार अजित ने देखा है कि कुदन ग्राहको से झगडता रहता। गालिया भी बकता है वह गन्दा।

भीतर बैठक से कुदन और मास्टरनीबाई की फुसफुसाहटें आ रही हैं। फिर दबी मुदी हसी की आवाज छि। यह कोई अच्छी बात है? कुदन को बहुत मुह लगा रखा है शायद? वरना कहा एक दरजी, कहा मास्टरनी बाई

"क्या सोच रहे हो?" मिनी पूछती है।

"कुछ नही।"

"तो निकालो, कलम!"

अजित कलम ढूढता है। नही है शायद घर पर छूट गयी। नही—बैठक मे बस्ता खोला था, तब तो कलम थी—शायद वही है जल्दी म वही रह गयी होगी।

"क्या।'

"कलम शायद बैठक में वहीं रह गयी। मैंने बस्ता खोला था ना।"

"तो उठा लाओ।"

अजित को कुछ सकोच होता है। मास्टरनीबाई हैं बैठक में और बहुत तेजमिजाज हैं कैसे जाये ?

"जाओ, उठा लाओ। वहीं होगी।" मिन्नी कहती है। कह नहीं रही है अजित को बैठक की ओर धकेल रही है

उठ पडता है। दब कदमों बैठक की ओर जाता है देहरी पर कदम भी चोरों की तरह रखता है। फिर भीतर

चौंक जाता है अजित। वे भी चौंकते हैं। कुन्दन दरजी और मायादेवी। छिटककर इस तरह अलग हो जाते हैं जैसे पिंगपांग की बालें उछली हों टेबल के इधर उधर

क्या कर रहे थे व ? कुन्दन मास्टरनीबाई को चूम रहा था। वैसे ही जैसे सुरगो अपनी गोदवाली बच्ची को चूमती रहती है पर सुरगो तो इस तरह कभी नहीं चौंकती। वह सबके सामने बच्ची को चूमती रहती है जबकि कुन्दन एकदम चौंक गया। मास्टरनीबाई भी

"क्या ? क्या बात है ?" मास्टरनीबाई ने एकदम सवाल किया। बहुत तेज आवाज। गडता हुआ स्वर।

डर गया था अजित कांपकर खडा हो गया, "जी जी, वह मेरा पेन यहीं छूट गया। उसीको लेने "

'कहा है ? " कुन्दन भी घबराया हुआ है। क्या घबरा रहा है ? वह अजित का फाउण्टेन पेन ढूढने लगा है। यहा वहा। उसे क्या मालूम कहा छूटा है ?

और अजित फर्श से पेन उठा लेता है। डरते हुए कहता है, "यह। यह रहा।"

'ठीक है—जा। "मायादेवी का सख्त स्वर।

अजित भाग आता है। डरा हुआ। चेहरे पर हवाइया उड रही हैं। ऐसी जैसे किसीने पीट डाला हो। खूब जोर जोर से। रो नहीं रहा है पर रोने की स्थिति मिन्नी आश्चर्य से देखती है उसे। पूछती है, "क्या हुआ ?'

"ऍं ? कुछ नही। कुछ भी तो नही।"

"मिल गया पेन ?"

"हू ? हू-हा। मिल गया।" अजित कहता है। अब भी 'नामल' नहीं हो पाया है वह। सब आखो के सामने है कुदन और मास्टरनीबाई वह पलग पर चित लेटी हुई थी और कुदन उनके ऊपर झुका हुआ उन्हें चूम रहा था—'च्चु चु '

तभी अजित पहुचा

छि ।

"क्या हुआ ?" मिन्नी फिर फिरकर पूछ रही है। अजित का चेहरा पिटा हुआ है। जरूर कोई बात हुई है ऐसा क्यो हो गया है उसका मुह ?

' मुझे डर लगता है।"

"कैसा डर ?"

"मालूम नही।"

"हिश् डरपोक ! यह तो हमारा घर है। यहा काहे का डर ?" मिन्नी उसे डाटती है। और वह मिन्नी की ओर देखता ही रह जाता है। क्या कहे कि कैसा डर है। बस, महसूस कर रहा है कि वह डर रहा है।

कुदन बैठक से निकलता है। अजित उसकी ओर देखता है। मिन्नी भी। उसने नजर दबा ली है। गरदन भी। चुपके से जीना उतर गया है ऐसा क्यो किया है उसने ? बिलकुल चोरो की तरह और आखो के सामने अजित फिर कुछ पल पहले का दृश्य देखने लगा है मास्टरनीबाई, कुदन, च्चु-चु

मास्साब नही आये अब तक ?

"मिन्नी !" बैठक से मास्टरनीबाई की पुकार।

"क्या अ ?" मिन्नी यही से पूछती है।

"इस लडके से कह दे कि अब घर जाये। घण्टे भर से ज्यादा हो गया। कब तक पढेगा !"

मिन्नी कहती नही है। अजित की ओर देखती है। अजित पुस्तकें समेटने लगा है। बस्ता बन्द करता है। उठ खडा होता है चप्पल पहनकर जल्दी-जल्दी सीढियो की ओर

मि नी पीछे पीछे आती है। उदास स्वर म पूछती है, "जा रह हो ?"

'हा।' वह सीढिया उतरकर गली म आ जाता है। गरदन उठाकर देखता है—मि नी झरोखे पर आ टिकी है। उसीकी ओर देखती हुई कितनी अच्छी लडकी है ?

"ऐए लडके !

शायद अजित को ही पुकार रहा है कोई। आवाज की दिशा मे सिर घुमाता है अजित।

कु दन दरजी है। गरदन से सकेत कर उसे बुला रहा है।

जाने क्या अजित को उस पर क्रोध आने लगता है। जी होता है न जाये, पर चला जाता है उसके सामने। कुछ तेज आवाज मे कहता है "मेरा नाम अजित है।"

"अच्छा अच्छा।" कुन्दन मुस्कराता है। आवाज मे मिठास, "यहा आओ, दुकान म। भीतर।

"क्या ?'

'आओ तो।'

अजित भीतर समा जाता है। कु दन के एकदम पास पहुचकर पूछता है, 'अब बोलो, क्या बात है !'

कु दन थोडी देर उसकी ओर देखता रहता रहता है फिर जेब से एक दुअ नी निकालकर अजित की ओर बढा देता है, "लो !'

अजित कभी दुअ नी देखता है, कभी कु दन का चेहरा, "यह क्यो ?'

' इसलिए कि तुम बहुत समझदार लडके हो। लो ! "

पर बात क्या है ?

बात ? बात तो कुछ भी नही है। तुम्हे देखकर मेरा दिल खुश हो गया है। लो तो सही ! ' कु दन एक हाथ से अजित की हथेली पकडकर दूसरे से दुअ नी उसपर रख देता है।

अजित की समझ मे नही आता—क्यो खुश हो गया कु दन ! और दुअ नी ? दुअ नी तो बहुत होती है ? उसमे दो दो पैसेवाली छह पतगें आ सकती हैं। जी होता है कि ले ले सहसा दृष्टि झरोखे पर चली जाती है। मि नी खडी है वहा। उसके करीब ही जया मौसी। देख रही हैं क्या

सोचेंगी दोरा ? अजित कोई भिखमगा है ? उसके पिता वडे आदमी थे। सब जानते हैं। सारा महल्ला। आतरीवाले पण्डितजी ! एक झटके से दुअन्नी झटककर एक ओर गिरा देता है वह और फिर तीर की तरह कुन्दन की दुकान से बाहर गली मे आ जाता है एक बार जया मौसी की ओर देखता है फिर तेजी से घर की ओर चल पडता है।

दूसरा दिन।

अजित ठीक उसी वक्त पहुचा था—पहले दिन वाला वक्त। छोटे बुआ मोठे बुआ रास्ते मे मिले थे। छोटे बुआ ने टोका था, "तुझे अलग से बुलाते हैं मास्साब। क्यो ?"

अजित समझा नही। अचरज से उसकी ओर देखने लगा। अलग से बुलाने का क्या मतलब !

"मतलब यह कि तुझे हम लोगो के साथ नही पढ़ाते हैं मास्साब ! क्यो ?"

"ऐसा तो कहा नही है मुझसे। बस, कल जिस वक्त गया था, उसी वक्त आज जा रहा हू।" अजित ने उत्तर दिया।

छोटे बुआ ने फिर कुछ नही कहा। चला गया। अजित सोच मे डूबा हुआ मास्साब के यहा तक चला आया। सबसे पाच रुपये लेते हैं। अजित से भी ले रहे हैं, फिर अलग से वक्त क्यो देने लगे। शायद आज कह देंगे कि अजित भी उसी वक्त पर आया करे, जब और बच्चे आते हैं। पर जब तक कहें नही, अजित अपनी ओर से वक्त कसे बदल सकता है।

सीढियो तक आते न आते उसकी नजर अनायास ही कुन्दन दरजी की दुकान पर जा पडी थी। उसने भी देखा था अजित को। फिर बुलाने लगा। वही अगुलियो का सकेत—अजीव पागल आदमी है ! अजित ने सोचा और ठिठक गया। जबरदस्ती उसे दुअन्नी देना चाहता है। क्या देना चाहता है ? सहसा आखो म गये दिन का दृश्य ताजा हो गया। मास्टरनीबाई, कुन्दन और च्वु चु

गन्दा कही का ! इतनी बडी उम्र के लोग भी आपस मे एक दूसरे को चूमते ह ? अजित ने तो कभी देखा नही है।

वह बुला रहा है

क्या जाये अजित ? जाना ही होगा। गरदन ऊपर उठाकर देख लिया था पहले। मास्साब के घर का झरोखा सूना है। कल की तरह जया मौसी और मिन्नी वहा नही हैं।

अजित जा पहुचा, "क्या बात है ?"

"यार, तू कल नाराज हो गया।"

अजित का जी हुआ—हसे। नाराजी का क्या कारण ? अजित क्यो नाराज होगा इससे ? लगता है कि कुन्दन का दिमाग चल गया है। कुछ बोला नही।

कुन्दन ने पुन दुअन्नी निकाल ली। फिर एक और इकन्नी साथ मिलायी। बोला, "बस, अब तो खुश है ! ले—तीन आने है। बारह बजे वाली मैटिनी देखना। रख ले।'

"पर क्या ?"

"क्या—क्यो क्या करता है ! रख ले। मजे कर !"

पागल ! अजित कभी उसे, कभी पैसो को देखने लगा।

"ले ना !

'मैं बिना काम पैसा नही लेता।' अजित ने तर्क दिया।

'काम भी बताऊगा।'

'पहले काम बताओ।'

"अच्छा, यो ही सही। ले—काम सुन !" कुन्दन ने इधर उधर और सड़क पर देखा। फुसफुसाया, "कल तूने क्या देखा था ?'

"कहा ?'

"वही। मास्साब के यहा। "

"कब ?'

"जब तू पेन लेने माया बहिनजी के कमरे म गया था। मैं भी था वहा। याद है ना ?'

"याद है।"

"तो बता, क्या देखा था तून ?"

अजित ने उसे घूरकर देखा। कोई खास बात याद नही आती। बस यही

कि कुन्दन मास्टरनीबाई को चूम रहा था। शायद यही पूछ रहा है वह।

"बोल।"

"मैंने तुम्हे देखा था। तुम मास्टरनीबाई की मिट्ठी[1] ले रहे थे। प्यार कर रहे थे ना उन्हें?"

"शिश ई ई! चुप!" कुन्दन का चेहरा उतर गया। एक पल चुप रहा, फिर दबे स्वर मे बोला, 'तो सुन, यही काम करना होगा तुझे! तूने जो कुछ देखा है, वह किसीसे कहना मत। अब ये ले पैसे और मजे कर!"

अजित परेशान हो उठा। यह भी भला कोई काम हुआ। कुन्दन बिलकुल पागल है! मूख!

"करेगा ना?" वह पूछ रहा था।

"हू।" सोचता रहा अजित। यह काम भी कोई काम है। जो देखा है वह किसीसे कहना नही है। कर लेगा। तुरत बोला, "कर दूगा।"

"ठीक है।" कुन्दन ने गहरी सास ली, "अब जा!"

पैसे लेकर अजित उसकी दुकान से उतर आया। सीढिया चढकर मास्साब के यहा जा पहुचा। बरामदा खाली है। कहा गये सब? एक पल चुप रहकर पुकारा, "मिन्नी!"

"कौन है?"

यह मिन्नी की आवाज तो है नही। फिर?

जया मौसी थी। दरवाजे से बाहर आ खडी हुई, "अरे—तुम हो! आओ। आओ।"

अजित आगे बढकर टाट पट्टी पर बैठ गया। कल की तरह बस्ता लटकाकर नही आया है। मिन्नी खुश होगी। पर कहा है मिन्नी?

"अरे, तुम यही बैठ गये?" जया मौसी ने मुडकर देखा। बोली, "मेरे साथ आओ। मेरे कमरे मे बठना। आज मैं तुम्हे पढा दूगी। जीजाजी और जीजी मिन्नी को लेकर बाजार गये हैं। मुझसे कह गये हैं कि तुम्हे पढा दू। आओ!"

ये क्या पढायेंगी! अजित ने सोचा। क्या ये ज्यादा पढी-लिखी है?

1 मिट्ठी—चुम्बन

पूछ भी लेता, पर साहस नही हुआ। उठा और उनके पीछे हो लिया।

बहुत छोटा सा कमरा है जया मौसी का, पर खूब सजा हुआ, साफ-सुथरा कमरा। एक चारपाई। टेबल कुरसी। रैक मे किताबें। मोटी मोटी किताबे। जाहिर है कि अजित स बहुत ज्यादा पढी लिखी हैं वह। जरूर उसे पढा सकती हैं।

कुरसी की ओर सकेत कर दिया उन्होने, "वहा बैठ जाओ।"

अजित बैठ गया। उनकी ओर देखने लगा। जो वह कहे—वही पुस्तक अजित खोल ले। कितनी सुन्दर है! आवाज भी कितनी मीठी! कितना अच्छा रह यदि रोज जया मौसी ही पढायें। मिन्नी साथ पढे और कोई भी न हो। अजित बहुत खुश रहा करेगा।

'देखू तुम्हारी पुस्तकें।"

अजित न पुस्तकें बढा दी।

उन्होने पुस्तके लौटी पलटी, फिर वापस अजित का दे दी। बोली, "मैं तुम्हे थोडी देर बाद पढाऊगी। पहले एक बात बताओ!"

अजित प्रश्नातुर दृष्टि से उन्हे देखने लगा।

"कल शाम को तुम्ह कुन्दन ने बुलाया था ना? "

"हा।'

"क्या कह रहा था?"

"जी—ई मुझे पैसे दे रहा था—दुअन्नी।

'किसलिए?"

'कल तो उसने बताया नही था। आज बताया। पर मुझे लगता है कि वह पागल है मौसी। आज उसने मुझे " कहते कहते रुक गया अजित। यह क्या बके जा रहा है। कुन्दन न पैस ही इस काम के दिये हैं कि किसीको कुछ न बताया जाये।

'क्या बताया था उसन?" जया मौसी करीब आ गयी हैं। चारपाई उस कुरसी स सटी हुई है जिसपर अजित बैठा हुआ है। और वह चारपाई पर हैं मछली की तरह सरककर पास चली आयी हैं आज उन्होंने साडी पहन रखी है। शायद जाजट की साडी है। हल्का आसमानी रग चिकनाहट। सरकन की ट्टइ। अजित के नथुना मे लवेंडर की तेज

खुशबू समा गयी है। जी हो रहा है कि खब लम्बी सास खीचकर यह खुशबू आता तक समो ले   कितनी प्यारी खुशबू और कितनी प्यारी जया मौसी

"बोल ना। क्या कह रहा था कुन्दन ?" जया मौसी कुरेद रही हैं।

अजित उनकी आखो म देखता है। अचानक डरने लगा है। क्या बता दे उन्हे ! पर कुन्दन   पसे ही न बताने के लिए दिये है। बता भी देगा तो क्या होगा। कोई खास बात तो है नही   मगर यह बेईमानी होगी कुन्दन के साथ। अजित गभीर स्वर मे कहता है, "वह बात बतानी नही है, मौसी। उसन पैसे ही इसके लिए दिये हैं। यह देखो ! " जेब से दुअन्नी और इकन्नी निकालकर जया मौसी की ओर बढा देता है।

जया मौसी कभी उसे और कभी पैसो को देखती ह। एक गहरी सास लेकर कहती है, "ठीक है, तब मैं नही पूछती। पर एक बात कहती हू, अच्छे घर के लडके इस तरह किसीसे पैसे नही लिया करते। मेरा कहा माने तो उसके पैस उसे वापस कर देना।"

अजित उनकी ओर देखता रहता है। लगता है कि उन्हें अजित का सारा व्यवहार अच्छा नही लगा। यह भी पसन्द नही आया ह कि वह किसी से पैसे ले। कितनी भली है वह और अजित की शुभचिन्तक भी हैं। बिलकुल इस तरह कह रही ह जसे अजित की अपनी ही कोई हो। निश्चय करता है अजित, उसके पैसे वापस कर देगा।   केशर मा को मालूम होता तो वह भी इसी तरह कहती। यह भी हो सकता था कि वह अजित को थप्पड मारती।

क्या उनसे भी छिपा लेता अजित !

नही छिपा सकता था। फिर जया मौसी से क्यो छिपा रहा है ? बोला, "तो बता दू बात ?"

"पर तूने उसे वायदा दिया है कि नही बतायेगा।"

"जब उसके पैसे वापिस कर दूगा, फिर कैसा वायदा ?" अजित ने तक किया था।

जया मौसी के चेहरे पर एक मुस्कराहट फैल गयी।

अजित ने कहा, 'बात मे बात नही है, पर कुन्दन उसके लिए तीन

आने खच कर रहा है। कल की वात है । मैं आपक यहा आया था ना "

"हू ।

"मेरा फाउण्टेन पेन मास्टरनीबाई के कमरे म रह गया था। तुम्हारी जीजी हैं ना, उनके कमरे म। मैं पेन उठाने कमरे म गया था। देखा कि कुन्दन दरजी तुम्हारी जीजी को चूम रहा था। बस, कुल यही बात है।"

जया मौसी के चेहरे पर गहरी गभीरता है। इधर उधर देखती हैं। जैसे डर गयी हो।

अजित समझ नही पाता क्यो डर गयी हैं। कहता है, "मौसी, क्या बडे बडे लोग भी प्यार मे एक-दूसरे को चूम लेत है ! हैं ? मैंने तो कल पहली पहली बार ही दखा है।

'चुप ! ' जया मौसी ने होंठा पर अगुली रखकर उसे धमकाया।

चुप हो गया वह पर चकित। ऐसे ही कुन्दन करने लगा था और बिलकुल वैसे ही जया मौसी क्या सचमुच इसमे कोई छिपाने जैसी बात है ?

थोडी देर के लिए दोनो तरफ चुप्पी फैल गयी। अजित को अच्छा नहीं लगा। अभी अभी जब जया मौसी उससे बात कर रही थी, तब अजित कितना खुश था। अब ऊबने लगा है

"चल पढ ! "थोडी देर बाद जया मौसी बोली थी। चेहरे पर वैसी ही गभीरता थी सिफ गभीरता ही नही, उदासी भी। अजित को लगा कि कोई ऐसी बात हुई है, जिससे उन्ह दुख पहुचा है। पूछना चाहता है कि क्या हुआ पर पूछे कैसे ? साहस नही हो रहा है। अजित को पछतावा है। यदि जानता होता कि उसकी बात से जया मौसी को कष्ट होगा तो बताता क्यो।

"क्या सोच रहा है—पढेगा नही ?"

"हैं। हा हा। पढूगा। अजित न पुस्तक खोलकर सामने रख ली। जया मौसी उसके करीब झुक आयी। अजित फिर से विचलित हो उठा। कितनी प्यारी खुशबू ! ऐसी, जैसे चमेली की बेल के करीब खडा है अजित। नथूने फुलाये और फिर सास खीच ली—स्सू ऊ ऊ।

चौंककर पीछे हट गयी वह "क्या करता है ?

अजित झेंप गया। सचमुच वदतमीजी कर बैठा है। इस तरह खुशबुए सूघी जाती हैं भला ? सू-ऊ ऊऽ न भी करता तो सहज ढग से महक नाक मे समाती रहती। कहने लगा, "आपने चमेली का तेल लगाया है ना ?"

कुछ कहा नही जया मौसी ने। उसकी आखो मे देखने लगी। होंठो पर मुस्कान। बिलकुल वैसी ही सोंधी सोंधी महक जैसी।

"लगाया है ना ?"

"हा।"

"मुझे चमेली की खुशवू बहुत पसन्द है। इसीलिए सूघने लगा था "

अजित शायद आगे भी कुछ कहता, पर सहसा रुक गया। जया मौसी की मुस्कान गायब हो गयी है। उसकी जगह तेज उदासी ऐसे, जैसे बारिश से पहले बादल धुंधलाने लगता है क्या रो पडेगी जया मौसी !

उस दिन बहुत परेशान हो गया था अजित—यह मौसी भी अजीब हैं ! एक तो एकदम बच्ची सी ह, तिसपर पल मे उदास हो जाती हैं—पल म खुश

पूछने-जानने की आगे कितनी तो कोशिश की थी अजित ने—पर जया मौसी ने अपने मुह से कुछ नही बतलाया था बतलाया था तो बहुत दिन बाद बोली थी, "तुझे चमेली बहुत पसन्द है ना ?"

"हा—उसकी महक।" अजित ने उत्तर दिया था—पर अजित तब बडा हो गया था और बहुत सी कहानियो से जान पहचान हो गयी थी उसकी। इस जान पहचान का ही परिणाम था कि जया मौसी एकान्त मे कई बार अपनी नागपुर की यादें सुनाने लगती थी। उन्होने एक बार कहा, "जानता है अजित—नरेश को भी चमेली की महक बहुत पसन्द थी " और फिर जया मौसी से ही नरेश के बारे मे बहुत कुछ जानने-समझने को मिला था असल म तब अजित बहुत झेंपता था, जब जया मौसी अपना मन उसके सामने खाली करने लगती थी एक बार ज्यादा लजा गया तो बोली थी, "तू भी खूब है अजित ! अरे, अब तू बडा हो गया है। चूकि मन से तू बच्चे जैसा निर्मल है—इसीलिए तुझे सामने पाकर बोलती हू। यहा और किसीसे कुछ कहते सुनाते भी डर लगता है "

और फिर वे याद करती, बोलती ही चली जाती—

"'मुझे चमेली की खुशबू बहुत पसन्द है।' नरेश भी यही कहता था। बिलकुल यही शब्द।' इसी तरह जया के चेहरे के करीब आते ही वह सास खीच लिया करता था। जया डर जाया करती। कहीं वह उसे हिरश्।

कालिज ग्राउण्ड मे अनायास हुई थी दोनो की मुलाकात। बहुत अर्सा नहीं गुजरा है। जया को पल पल याद है। स्मृतियो के फ्रेम में जडा हर पल।

हिस्लप कालेज। बायलॉजी की एक किताब नरेश और जया। एक ही किताब की माग की थी दोनो ने। एकसाथ

लायब्रेरियन हसा था, "क्या आप लोग तय करके आये है कि लायब्रेरी का इम्तिहान लिया जाये ?'

"जी!' नरेश चकित हुआ था।

'जी हा।" लायब्रेरियन बोला, "मेरे पास एक ही किताब है और उसे एक ही वक्त म आप भी चाहते हैं और मिस जया भी। बताइये—क्या करू ? पहले आप दोनो तय कर लीजिए।'

वे एक-दूसरे को देखने लगे थे। जया और नरेश बोलन मे नरेश ने ही पहल की, 'अगर आपको एतराज न हो तो मेरा मतलब है कि सिफ एक ही दिन के लिए चाहिए मुझे। सारी रात जुटकर नोट्स तैयार कर लूगा।

"मैं भी सारी रात जुटकर नोटस तैयार कर सकती हू।" जया का उत्तर। आवाज मे सख्ती। सख्त ही रहना चाहिए। जरा ढीलापन आया और लडके पीछे हो लेते है कभी रफी की आवाज के सहारे कभी रॉक एन रोल की धुन पर जया हमेशा सख्त रहती है। इतनी सख्त कि लडके करीब नही आते। एक दो को सबक भी दे चुकी है—फटकार! सारा कालेज कहता है—मिच है! हरी, चिरपरी मिच!

नरेश मुस्करा दिया था। कितनी प्यारी मुस्कराहट! सिलसिलेवार दतपक्ति, तेज, कौंधती हुई दृष्टि, उन्नत ललाट। सीधे सपाट बाल। कोई विशिष्टता या बनाव नही था उनम। सादगी भरा रहन सहन जाने क्या जया को वह अच्छा लगा था, पर तुरत चैतन्य हुई थी वह। उस इस

तरह नही डिगना चाहिए। सैकडो लडके हैं कालेज मे। उनमे पचासो सादा होगे। पहली नजर मे सब ऐसे ही बनते हैं जैसे शातिनिकेतन स चले आ रहे हो

"ठीक है। तब आप ही ले जाइए किताब। रात भर मे नोट्स तैयार कर लीजियेगा। परसो मैं कलेक्ट कर लूगा।" नरेश ने कहा था।

जया को लगा कि व्यग कर रहा है। इतनी लम्बी चौडी पुस्तक। दसियो महत्त्वपूण प्रश्न। खुद पहले डीग हाक चुका है, इसलिए अब कतरा रहा है। जया खूब जानती है इन छोकरा की जात। दूसरा को 'ओब्लाइज' करते हैं और खुद आदश बनते हैं। ऊह! ऐसा कोई उपकार नही सहेगी जया। बोली थी, "नही नही, आप ही ले लीजिए। मैं परसो कलेक्ट कर लूगी।"

नरेश कुछ कहे, इससे पहले ही जया चल पडी थी। चाल मे धमक। देखती है कैसे तैयार करेगा नोटस। मजाक है कोई। रात भर मे पूरी पुस्तक के नोट्स! अकड दिखा रहा है। ऐसे दसियो लडके देखती है रोज।

पर वह दसियो म से नही था। तीसरे नही दूसरे ही दिन सिद्ध हो गया। फ्री पीरियड मे थी जया। लान म बैठी हुई थी। पीछे आ खडा हुआ था वह।

"मिस जया! "

मुडकर देखा उसने। कुछ उखड सी गयी। यह छिछोरापन खूब समझती है। जरा बहाना मिलना चाहिए लडका को—टेप की तरह चिपक जाते हैं। अब यह चिपकन लगा है

नरेश ने पुस्तक उसकी ओर बढा दी, "लीजिय! "

जया को विश्वास नही हुआ। क्या सचमुच नोटस तैयार कर लिये हैं उसने? आश्चय से देखने लगी थी उसे।

"मैंन तैयार कर लिये है नोटस। रात को ही पूरे कर लिये थे। आपका घर नही जानता था, वरना वही पहुचा आता। आपको बहुत जरूरी थी न इस पुस्तक की?'

"नही नही, एमी ता कोई बात नही थी। बस यू ही " जया कुछ

हडबडा गयी थी। जाहिर है—नरेश और लडको की तरह नही है। वरना रात भर मे नोटस। बहुत कठिन काम है! असभव-सा !

"खैर लीजिये।' उसने पुस्तक जया के सामने रख दी थी—चला गया था। इस तरह जसे जया मे कोई आकर्षण ही नही है

पर नरेश न आकर्षित कर लिया था उसे। और कोई लडका होता तो इसी बहाने दस बातें कर जाता, पर अजीब है नरेश!

सहम के साथ पुस्तक उठाकर घर चली आयी। बार-बार उसका ख्याल हो आता। परीक्षायें करीब। नोटस तैयार करन थे। चार-पाच दिनो तक जया जुटी रही थी पर फिर भी काम अधूरा। लायब्रेरी से पत्र आ गया था नरेश के पास—'एक सप्ताह हो चुका है। पुस्तक वापस आनी चाहिए ताकि दूसरे छात्र छात्रायें उसका उपयोग कर सकें एक दिन फिर नरेश उसके पास था, 'मिस जया! "

जी!'

'वह पुस्तक नोटस पूरे हो गये या नही?"

"जी! असल मे "

'खर कोई बात नही। आप पुस्तक दे दीजिये। लायब्रेरी म माग हो रही है।"

'पर मेरे नोटस "

"उसका इतजाम है मेरे पास।" नरेश ने एक नोटबुक उसकी ओर बढा दी थी, 'इसमे मरे नोटस ह। आप इनसे नोटिंग ले लीजियेगा। ठीक?"

"जी!" कुछ झेंप लगी थी उसे। झेंप के साथ साथ एक रोमाच भी हो गया था नरश के सान्निध्य का रोमाच। उसकी योग्यता का प्रभाव और उसकी दया कृपा। कृपा ही तो है। अन्यथा बिलकुल पढाई के वक्त कौन लडका अपने नोटस इस तरह दे सकता है। सकोच के साथ बोली थी, "पर आप "

"कल तक आप बचे खुचे नोटस पूरे कर लीजियेगा। बस। फिर मैं देख लूगा अपने नोट्स। ठीक है?'

सहसा जया पछताव स भर उठी—कितनी अशिष्ट है वह। अब तक

नरेश खड़ा हुआ है और वह उससे उसी तरह बातें किये जा रही है। शिष्टाचार भी नहीं बरता है जया ने। उससे बैठने के लिए तो कहना था।

"आप आप बैठिये ना!"

"नहीं। मैं जल्दी में हू। पुस्तक दे दीजिये। ताकि जमा कर आऊ।" जया से उत्तर देते नहीं बना था। चुपचाप पुस्तक उसे थमा दी थी।

"थैंक्यू!" वह मुड़कर तेजी से चला गया था।

जया उसे जाते देखती रही। लगा जैसे नरेश की ओर से मिलन वाली उपेक्षा अच्छी नहीं लग रही है क्या समझता है उसे? क्या जया सुन्दर नहीं है? आकर्षक नहीं है? कोई और लड़का होता तो इस तरह काम की बात करके भाग गया होता? इस बार सामने आये—जया भुगत लेगी उसे। अगर दीवाना न कर दिया तो नाम नहीं।

पर ऐसी हरकत करना क्या ठीक होगा? हिश्श! जया भी क्या-क्या सोच लेती है। भले घर की लड़की को इस तरह सोचना चाहिए भला! मगर इसमें बुरा भी क्या है? सिर्फ सबक देना है नरेश को। किसी सुन्दर और आकर्षक लड़की से किस तरह व्यवहार करना चाहिए—यही सिखाना होगा।

मगर ?

जरूर सिखाना होगा! बनता है बहुत! हुह!

और जया सिखाने लगी थी उसे। नरेश के नोटस लेकर बाद में बोली थी, "प्लीज नरेश! तुम ही तैयार कर दो मेरे लिए। राइटिंग स्पीड नहीं है मेरी।"

नरेश ने स्वीकार लिया था। सोचा था रिवीजन ही हो जायेगा। दो दिन बाद उसने नोटस तैयार करके दे दिये थे। फिर एक नया नखरा किया था जया ने, "क्या ऐसा नहीं हो सकता कि फ्री पीरियड में तुम मेरे साथ ही रहा करो। ज्वाइण्ट स्टडी किया करेंगे।"

नरेश चकित। भले ही सारे कालेज में जया को 'हरी मिर्च' कहा जाता हो, पर नरेश के लिए तो शक्कर की तरह मीठी साबित हो रही है। कुछ पल जया की आंखों में देखता रहा था

यही तो चाहती है जया। पागल बनाकर छोड देना है। जया न दष्टि मे कौंध भर ली थी कौंध जो अधर बादलो को चीरकर उनके दिल म दरारें डाल दती है—तज बिजली सी कौंध !

और निरीह नरश। यह कौंध उसने सही थी। दिल तक उतार ली थी, पर पचा नही पाया। शायद यही शुरुआत थी जया और नरेश के बीच उस अनजान स्रोता की, जो न जाने कितने एकातो मे सगम की तरह मिले थे—एक हुए थे

सारा कालेज जानने लगा था। 'हरी मिच' और नरेश के बीच काटा है। मछली काटा ! मालूम नही यह मछली काटा मुमकिन कैसे हुआ है। सरासर हैरान कर डालनेवाली घटना थी। फ्री पीरियडो मे उन्हें साथ साथ दखा जाता था, कालेज मे बाहर कई बार नाटको और समारोहो म भी साथ साथ पाय गये थे दसियो बार एकात सडको पर उन्ह साथ-साथ घूमते दखा जाता था

जया ने कितनी बार नही चाहा था कि यह अपनेको पीछे खींच ले। यही तो सोचा था उसने। पागल बनाकर छोड देना चाहती थी पर नरेश बहुत ताकतवर साबित हुआ था। जया हर क्षण रबर की तरह तनती रहती—अब अलग हटा लेगी अपनेको। यही करना है। यही करना चाहिए पर दूसरे ही क्षण जया के भीतर बैठा हुआ कोई और उस पर हावी होने लगता नही। ऐसा नही कर सकेगी। कर ही नही सकती। कितनी असमथ और कमजोर हो चुकी है वह !

कई बार उनके बीच वायदे होते। कहीं मिलना है जगह निश्चित हो जाती और जया जानबूझकर उस दिये समय पर अपने आपको रोक लेती पर कितनी दर यह रोकना हो पाता था। घडी के काटे ज्यो ज्यो भेंट के निश्चित वक्त की ओर सरकते, त्यो-त्यो जया बेकाबू होने लगती जायेगी। जाना ही होगा।

नही जाना है ! निश्चय।

नरेश का चेहरा, सवाल और दष्टि मे समाया हुआ जया के प्रति समपण का भाव। सब कुछ कितने शक्तिशाली। जकड की तरह और उस जकड मे कसी हुई जया। एकदम लाचार। उठ पडती। जायगी। चली

जाती। निश्चय सरदियो के बर्फ की तरह पिघलकर वह जाया करता।

कितनी बार। न जाने कितनी बार यही हुआ था। फिर एक सहज स्वाभाविक स्थिति जनम आयी थी। अब दूरी कठिन। जया भूल गयी थी कि नरेश के प्रति कभी क्या कुछ सोच रखा था उसने

वायदो का रख कब बदल गया था, यह जया को मालूम ही नही हुआ था। परीक्षायें समाप्त हुई थी। जया की मा ने निश्चय किया था इस बार ग्वालियर जायेंगी। जया की बडी बहिन मायादेवी के पास। दो माह वही बीतेंगे

और उस दिन एकात मे जया ने खबर नरेश को दे दी थी, "हम लोग दीदी के पास जा रहे हैं। वेकेशन्स मे वही रहना होगा।"

नरेश के चेहरे पर एक सन्नाटा उग आया। दो माह! कितने लम्बे होते हैं दो माह! कुछ बोला नही था। बोल नही सका।

"तुम मुझे खत डाला करना। यह लो पता।" नरेश की ओर एक चिट बढा दी थी उसने।

चुपचाप चिट ले ली थी उसने।

'कुछ कहोगे नही?" जया महसूस कर रही थी कि उसके भीतर क्या गल रहा है। एक सैलाब बन रहा है—जिसे थामना कठिन।

"क्या कहू?' वह बोला। जया को लगा कि किसी सुरग के दूसरे छोर पर खडा होकर बोल रहा है वह और जया? क्या वह भी उसके लिए उतनी ही दूर खडी रहकर नही बोल रही है?

दोना के बीच एक चुप। चुप, पर कितने कोलाहल से भरा हुआ चुप। खौलते हुए पानी के दो टब। डुब्ब! डबऽ डब्ऽ ड्बऽ!

थोडी देर बाद जया बोली थी, "जाना ही होगा। कल ही चली जाऊगी। सामान सारा पैक हो चुका है।"

'किस ट्रेन से जा रही हो?"

"डीलक्स से। दोपहर को चलती है। यही कोई एक डेढ पर। स्टेशन आआगे ना?"

"आऊगा।"

फिर चुप

इस चुप के बाद दोना के बीच सूनी दष्टिया रिक्तता शब्दो की भी, मन की भी। वे विदा हो लिये थे एक दूसरे से पर सगम मे मिला पानी इस तरह लौटा करता है भला !

जया ग्वालियर आ गयी थी। अक्सर एक सूनेपन मे घिरी रहती। मा को मालूम था। उहाने ही माया दीदी को बता दिया था। एतराज नही था किसीको। बस, नरेश की ओर से एतराज था। उसके पिता कट्टर सनातनी ब्राह्मण ! एसा कैसे हो सकता है कि कायस्थ की बेटी उनकी कुलवधू बन ! बेनेशस मे यह विवाद नरेश और उसके माता पिता के बीच तनाव की हदा तक बढ गया था

पत्ता म सारी खबरें दिया करता था नरेश पिता ने क्या कहा, फिर नरेश ने क्या उत्तर दिया और फिर पिता किस तरह उग्र हो गये। जया बचैन और उत्तेजित होने लगती। क्या ऐसा हो सकेगा कि नरेश और जया जीवनसाथी बन जायें ? विश्वास नही होता था।

जया न बहुत कोशिश की थी, अपने आपको विश्वास दिलाये रखने की, किन्तु भविष्य का अशुभ पहले ही उसके भीतर आ बैठा था। हर बार मन का उत्तर उबल पडता— 'नही ! असभव है ! जया और नरेश बस, इतन तक ही रह जायेंगे। फिर अलग। हमेशा हमेशा के लिए !''

और नरेश का हर पत्र उसके परिवारिक विवादो और तनावा की नयी नयी सूचनाओ से भरा हुआ। अत की दो चार पक्तियो म आश्वासन होता। नरेश जया का सोचा होकर ही रहेगा। भले ही नरेश को माता पिता तिरस्कृत क्यो न कर दें। वह जया को नही छोडेगा। कभी नहीं

कितने खोखले आश्वासनो मे बहलाय रखा था नरेश न ! बकेशस खत्म होते होते तक सिद्ध हो गया था यह। सहसा विश्वास नही कर पाती है जया ! कैसे ? इतना कमजोर तो न था नरेश ? पहले उसके पत्रो की भाषा नम हुई थी—निराशा की ओर बढती हुई, फिर और ख्य फिर और

" जया ! जरूरी नहीं हाता है कि आदमी जो सोचे, वह पूरा हो

ही जाये। पर देखने म पूण दीखनेवाला ही तो पूण नही है। सम्पूण वह है जो हमारे भीतर है। और हम जहा, जिस स्थिति मे भी रहगे एक-दूसरे से जुडे रहेंगे। यही हमारी पूणता होगी "

यह भाषा थी उस पत्र की, जिसके आधार पर पहली बार जया ने अनुभव किया था कि अथाह समुदर के बीचोबीच खडी किसी नाव को आधी ने डगमगा दिया है फिर और ज्यादा डगमगायी थी नाव। फिर थपेडे ही थपेडे लगातार!

अचानक नरेश के पत्र आने बन्द हो गये थे। जया बैचेन। हर पल भटकाव मे गिरफ्तार भूली भूली-सी। कुछ गुमे हुए को खोजती हुई। उसे क्या मालूम था कि सारे जीवन कुछ गुमा रहेगा और वह हर घडी खोजती रहेगी। इस निरतर खोज मे ही जीवन बीत जायेगा

एक सहेली को पत्र भेजा था जया ने। सकेतात्मक ढग से पूछा था कि नरेश कहा है?

उत्तर आया था। विवाह कर लिया है नरेश ने। किसी और नगर मे चला गया है। नागपुर मे अब सिफ माता पिता रहते हैं।

पत्र गिर गया था हाथ से शब्द शब्द बिखरा हुआ बिखरकर पारे की तरह, जया की अगुलियो की पकड से परे पारा भी कही पकडा जा सकता है। पगली जया! पारा बटोरने की कोशिश आज तक किये जा रही है

वेकेशन्स खत्म हुए थे। मा ने नागपुर चलने के लिए कहा और जया बोली थी, "बस, अब नही पढगी।"

"क्या?"

"मन नही है।" जया का उत्तर, "अब तो कही नौकरी कर लूगी।"

मा जानती थी। क्या टूट गयी जया। पर क्या कहे। उनके हाथ मे कुछ भी तो नहीं है। नरेश पर क्रोध आता है—'कमीना! पाखुरिया चुन ली फूल सी जया की। अब सिफ एक इम्प्रेशन शेष है—कभी फूल थी वह!'

"खैर, मत पढना। पर नागपुर तो चलेगी। वही कही तुझे सर्विस मिल जायेगी। मामाजी कोशिश कर देंगे।"

'कोशिश क्या यहा नही हो सकती ?" माया दीदी ने बीच म ही तक किया था। 'यहा भी कम सोर्सेज थोडे हैं अपने। कुछ न कुछ जरूर हो जायगा। इसे रहने दो यही।'

मा चुप हो गयी।

जया यहा है। कितने माह तो हो चुके हैं अब तक कुछ नही हुआ। रोज दरखास्तें छोड देती है यहा वहा। भटनागर मास्साब तीर-तुक्के मिलाते है। न जाने कितने अफसरो और नेताओ तक ये तीर तुक्के मिलाये गये हैं। पर कुछ नही हुआ। बेकारी के दफ्तर म रजिस्ट्रेशन भी करवा लिया है

माया दीदी सोचती है, लडकी काम करती है। महगा जमाना है। एक नौकर रखनी तो कम से कम सौ-सवा सौ माहवार का खर्च आता। अब जया है तो कम से कम यह अभाव नही खलता। सारी जिन्दगी ही नक हुई जा रही थी मायादेवी की। सारा दिन खाना बनाने, खाने और खिलाने म ही बीत जाया करता था। अब कम से कम चार जगह आने-जाने को तो वक्त मिलता है

और जया ! यादें है। उन्हें भूलने की कोशिश है। ठहरा हुआ एक समुद्र है और इस समुद्र की नमी है—रग रग म बिंधी हुई। कभी-कभी बहुत नम हो उठता है यह समुद्र

आज भी नम हो आया है अजित ने जो दृश्यवर्णन किया, वह उस क्षण से कितना मिलता जुलता था, जिसे न जाने कितनी बार जया ने नरेश और अपने बीच झेला था।

एक बार तो बिलकुल ही जया के चेहरे पर झुक आया था वह सास जोर-जोर से चलती हुई गरमियो के दिन। अम्बाझिरी तालाब पर टहलने चले गये थे दोनो

"हिश्श ! क्या करते हो ? इतने बेताब्। " झिडकी देकर जया ने चेहरा किनारे कर लिया था वहीं तो चमेली की खुशबू पसद है—नरेश को, जया ने जाना था

पर यह सब नरेश को लेकर अजित ने बहुत बाद म जाना—जितना

जाना, सब जया मौसी ने ही गाहे बगाहे भावावेश मे सुनाया था यही कुछ क्यो ? बहुत कुछ। अक्सर बडे भावुक क्षणो मे बोल जाया करती थी। बस, इतना खयाल रखती कि कोई न हो। मिन्नी भी नही। पर यह बाद की बात है—उससे पहले बहुत कुछ घटा था

मिन्नी भी तो उतनी ही बडी हो गयी थी—जितना अजित। पर मिन्नी के साथ जया मौसी ने अपनेको उस तरह घोला ही नही, जिस तरह अजित के साथ।

चमेली के फूल, नरेश, जया मौसी का अजित का सिर बाहो मे भरकर सीने मे भीच लेना यह सब भी बहुत बाद मे समझ आया। सब कुछ मीजान लगाया हुआ था—गणित का हिसाब। हिसाब मे उस समय भी कमजोर था अजित वही पढने तो मास्टर साहब के यहा जाया करता था

और जब यह गणित समझ मे आने लगा था तब बहुत कुछ अजित की अपनी ही आखो के सामने से कभी गुजरती रही घटनाए अथवान होने लगी थी हर आकडा, हर अक हर चरित्र उन चरित्रा के अपने अपने गणित

अगर एक ओर सुनहरी, सुरगो, सीतलाबाई वैष्णवी, पुराणिक बाबू तो दूसरी ओर कुन्दन, जया मौसी, मिन्नी, मायादेवी सब।

उस अथवत्ता से पहले आखो के सामने से गुजरी हुई बातें अजित को याद करनी पडती है—फिर से कहानी वही जुड जाती है उस दिन जया मौसी का गभीर, उदासी के बादलो से घिरा चेहरा देखते ही अजित बहुत चिन्तित और परेशान हो उठा था

तभी की बात है—

"क्या सोचन लगी मौसी ?" वह पूछ रहा था।

"हैं, कुछ नही। कुछ भी तो नही।" जया मौसी ने पुस्तक अजित के हाथ से ले ली, "काहे की पुस्तक है ?"

अजित हैरान। यह क्या जागते-जागते सा जाती हैं। आश्चय से जया की आखो मे देखता रहता है

'हू डिक्टेशन ले ! कापी खोल अपनी ।" जया मास्टराना स्वर मे कहती है । अजित कापी खोल लेता है

'हेलन आफ ट्रॉय " जया पढाने लगी है

अजित नोट लता जाता है । पेज दर पेज बहुत जल्दी-जल्दी बोलती हैं जया मौसी। अगुनिया मे धीमा धीमा दद हो आया है क्या वह दे उनसे—'जरा धीमे बोलो ना ! मैं इतनी जल्दी लिख नहीं पाता हू ' पर नही कहेगा। कितना बुरा लगता है। मिडिल का लडका और लिखने मे ऐसा फिस्स

करीब बीस मिनट नोटस लेता रहा था अजित । अगुलिया इस तेजी से दौडायी कि स्वय पर ही विस्मित हो गया एक, दो तीन, चार, पाच, छह पूरे तेरह पृष्ठ ! गसे हुए शब्द । क्या इतनी तेजी से लिख सकता हैं अजित !

और यही कुछ सोच रही है जया। तेरह पृष्ठ ! कितनी तेजी है उसके लेखन म ! बिलकुल वही तेजी, जैसी नरश एक उफान आता है मन मे। फिर वही नाद मे पानी के ऊपर तिरता भुलानवाला चेहरा— अजित, नरेश, अजित अनायास जया उसके करीब हो गयी। उसे स्वय ही पता नही—स्व । किस अज्ञात से सचालित । अजित का सिर दोनो हाथो मे समटकर सीने मे लगा लिया बालो म घूमती बेसब्र अगुलियां पलकें बन्द

अजित परेशान है। शुरू मे जया मौसी के हाथो से सिर आजाद कर लेना चाहता था पर अचानक किसी अनाम आनन्द म डूब गया है। जया मौसी के उभार अजित की कनपटियो पर रुक रहे हैं क्रमश दबते जा रहे हैं। समझ नही पा रहा है कि क्या आनद है इसमे। क्या है ? बस, उसे अच्छा—बहुत अच्छा लग रहा है।

सीढ़ियो पर पदचाप होती है विद्युत् गति से अजित सिर हटा लेता है। कोई आ रहा है शायद मिन्नो, माया जी और मास्साब क्या सोचेंगे ?

और उतनी ही चौंकी हुई हैं जया मौसी। अजित की ओर देखती हैं। पहली दृष्टि म भय दूसरी में याचना। निरीह याचना। जैसे कह रही

हो कि किसीसे कहना मत। तू तो बहुत अच्छा लडका है ना !

अजित क्यो कहेगा ? कहेगा तो उसकी खुद की 'पोजीशन' खराब नही हो जायेगी ? सुननेवाला क्या सोचेगा कि मिडिल मे पढता है और बिलकुल दुधमुहे बच्चे जैसी हरकत कर रहा था गदा !

पर यह बुरी बात हो या बचकाना बात। है आनन्ददायक कनपटिया अब भी एक गरमाव और सिहरन से भरी हुई है जया मौसी के दूध कैसे गुन्गुदे—रबर की तरह चुभ रहे थे उसे। कितना मजेदार स्पर्श !

"बताना मत किसीको ! " जया फुसफुसाती है

"क्या ?"

"यही "

अजित चुप। इसीके बारे मे कह रही हैं शायद। पर

"जया ! " बरामदे से मायादेवी की आवाज आती है।

"जी।" जया दौड जाती है बाहर।

अजित चुप बैठा है। कोई बात ऐसी होती जिसे कुन्दन दरजी नहीं बताना चाहता और कोई बात ऐसी, जिसे जया मौसी नही बताना चाहतीं। ऐसा क्या है उन बातो मे ? क्यो ?

"अजित ! " इस बार अजित के नाम की पुकार। मास्साब हैं।

"जी।" अजित बाहर जा पहुचता है। मिन्नी मुस्कराती है। अजित भी उत्तर मे मुस्कराना चाहता है, पर दृष्टि सहसा जया मौसी पर जा टिकती है। पढ़ लेता है जया मौसी की आखो के भाव। इतना बच्चा थोडे है। कह रही हैं बताना मत किसीको। कोरों पर बोल लिखे हुए हैं। नही कहेगा अजित। और कहने लायक है भी क्या ?

"आज पढा था इसने ?" मास्साब पूछते हैं—सवाल जया से।

"जी। जी हा। " जया का कापता स्वर। भय है इस स्वर मे। कही यह पगला कह तो नही देगा कुछ ? बिलकुल बच्चा ही है पछ्तावा भी। जया ने भी तो लडकपन किया।

"क्या ?"

"हेलन आफ ट्राय के नोटस दे दिये हैं इसे। पूरा कैरक्टराइजेशन, समरी और हिस्ट्री " जया का उत्तर।

'गुड ! देखू कहा है नोटस ?"

अजित फुर्ती से भीतरवाले कमरे म जाता है। किताबें उठाकर बाहर, "लीजिए।'

मास्साब कापी के वक पलटते हैं। आखा से सराहना। कापी वापस दे देते हैं, ' ठीक ! कल पूरा रटकर आना, हैं।"

"जी।' सिर हिलाकर अजीत कापी ले लेता है।

"अब जाओ—छुट्टी।"

' जी।' अजित जाने लगता है। किताबें सहेजत हुए। मायादेवी, मास्साब और जया भीतरवाले कमरे म चले गय हैं।

ऐय ! "

अजित रुक जाता है। मिन्नी न रोका है।

"खेलगा ? '

अजित का भी जी होता है कि खेले मिन्नी का सामीप्य तो बिलकुल ही नही मिल सका आज। पर बिना 'मास्साब की स्वीकृति के कैसे

'मास्साब ने छुट्टी कर दी है ना।"

' उससे क्या होता है ? छुट्टी के बाद ही तो खेला जाता है। " मिन्नी का तक।

अजित चुप।

'क्यो ?

'पर '

' मैं पिताजी से पूछ लेती हू। ठीक ? ' और इससे पहले कि अजित कुछ कहे वह भीतर चली जाती है—अजित के रुकने की स्वीकृति लेने। थोडी देर बाद लौटती है, लो मैं पूछ आयी। अब तुम रुक सकत हो।'

अजित खुश, पर एक सशय और है मन म। केशर मा प्रतीक्षा करेंगी। उनसे कहकर तो आया नही है। आज नही रुक सकता। मिन्नी 'सीढी और साप का बोड धरती पर बिछा चुकी है बिलकुल तयार। अजित निराश स्वर म कहता है "आज नही, मिन्नी ! कल।"

"क्या ? '

"मैं मा स कहकर जो नही आया हू। कल कह आऊगा।'

मिन्नी चुप हो जाती है।

अजित कभी उसे और कभी बोड को देखता है फिर सीढिया की ओर बढ जाता है। बिलकुल निचली सीढी पर पहुचकर मिन्नी की आवाज सुनता है, "कल जरूर कह आना।"

"हा।" गली मे आ जाता है वह। अचानक याद आता है, कुन्दन के पैसे वापिस करने हैं। सीधा कुन्दन के पास।

"यह लो अपने पैसे।" उसने तीन इकन्निया कुन्दन की सिलाई मशीन के बाड पर रख दी।

"क्या ?

"इसलिए कि मैं तुम्हारा काम नही कर सकता।"

"पर " कुन्दन कहता ही रह गया। अजित तेजी से दुकान के बाहर आया। देखा कि जया मौसी झरोखे म खडी मुस्करा रही हैं। उसे अच्छा लगा। फिर से कनपटियो म झुनझुनी हो आयी कैसा प्यारा स्पश ! जो भी हो, दोबारा उसी तरह उनके सीने मे सिर डालकर वही आनद लेगा अजित। बहुत अच्छा लगता है—बहुत।

गली !

बिलकुल सामनवाला मकान है अजित का। केशर मा चारपाई पर बैठी ह। पास ही एक चमकती साडी पहने औरत शायद सुनहरी है अक्सर सुनहरी होती है उनके पास। मा भी अकेली हैं—वह भी। सुकुन जमनाप्रसाद महाराज बाडे पर पान की दुकान करता है। उससे पहले उसका बाप करता था पान के धधे मे भी कम आमद नही होती। उस छोटी-सी दुकान से ही जमनाप्रसाद के बाप न इतना धन कमा लिया कि यह मकान खरीद डाला खासा अच्छा मकान है।

पर कहते है, जमनाप्रसाद ठीक से धधा नही कर पा रहा है। सब कहत हैं कि उसके लच्छन[1] खराब हैं। लच्छन कसे खराब हो जाते ह ? गली मे प्रवेश कर गया है अजित। इस गली म बिना खेले ही अजित का दिन कट

१ लच्छन—आदतें

जाता है। कोई न कोई घटना दुघटना होती ही रहती है। या फिर बातें। किसी न किसीके बारे मे। कभी केशर मा की बातो पर ध्यान दे देता ह, कभी दूसरो की बातें सुनता रहता है दूसरा की बातें, दूसरा के बारे में।

सुनहरी की बातें सुनेगा अजित। फिर केशर मा के जवाब। जल्दी जल्दी कदम बढाता है अजित। इसके बावजूद बहुत सावधानी बरतनी होती है चलने मे। पत्थरो का ऊचा-नीचा फश और हर घर के सामने कचरे के ढेर मह ले के सारे लोग मिलकर एक जगह कचरा नही डाल सकते। श्रीपाल ड्रायवर डयूटी मे लौटकर सारे दिन परेशान होता रहता है। यही कचरे का मसला। कोई नही सुनता। सुने भी ता अमल कौन करे? गली से चार कदम दूर एक बडा घूरा है। अगर सब घरो के लोग मिलकर वहा तक कचरा डाल आया करें तो गली झक्क पडी रहा करे। पर बहुत ग दे लोग हैं।

बूदें पडी अजित के सिर पर शायद बारिश हागी। आज दोपहर से मौसम कुछ नम भी है। बूदें तेज होने लगी हैं

अजित तेजी से सीढिया चढकर ऊपर जा पहुचा। कमरे मे। बस्त मे किताबें डाली। चप्पलें एक ओर रखी। हाथ मुह धोया और केशर मा के सामन जा खडा हुआ। सुनहरी दृष्टि मे चमक और चेहरे पर मुस्कान भरे हुए उसे देख रही है। जवाब म वह भी उतने धीमे मुस्करा दिया है

'चारपाई के नीचे रोटियो का डिब्बा रखा है। सब्जी भी। खा ले।" केशर मा कहती हैं।

अजित डिब्बा निकालने के लिए झुकता है

"जरा ठहर।' सुनहरी उठ आती है, "मैं परोसे देती हू।"

"तू रहने दे, सुनहरी। वह परोस लेगा। अब मुझपर बनता नही है। सुबह ही एक साथ बनाकर रख देती हू।" केशर मा कह रही हैं।

सुनहरी उत्तर नही देती। लपककर चौके से एक कटोरी और थाली ल आती है। खाना परोस देती है, 'ले खा।'

अजित खान लगता है। सुनहरी पुन केशर मा के पास जा बैठी है।

' आज पानी आयगा। केशर मा कह रही हैं।

"जायेगा क्या, आने ही लगा है।" सुनहरी का उत्तर।

"हा जू अब क्या है। गरमिया गमी ही समझो।"

"देखो ना बुआ। आज कुछ ठडक भी लग रही है।"

अजित चुपचाप देखता रहता है। मुह मे कौर। कौर दातो मे मसलता हुआ मौसम कुछ ढीला हो जाने से रोटियो मे भी ढीलापन समा गया है। रबर की तरह तन रही है

"आज पुराणिक बाबू आया था।" सुनहरी बता रही है, "पोस्ट मास्टर तो शिवपुरी मे है। तुम्हें तो मालूम है ना, बुआ?"

"हू।"

अजित कान लगा देता है। जानता है कि देवीदयाल पोस्ट मास्टर का घर भी दसियो कहानियों का केन्द्र है। अब जिस पुराणिक बाबू का जिक्र चला है, वह पोस्ट मास्टर का दोस्त है। बडा पुराना दोस्त। देवीदयाल नही होता, तब वह अक्सर आता-जाता है। सारे महल्ले मे चर्चा होती है कि पुराणिक बाबू के आने पर मैनपुरी वाली यानी देवीदयाल की पत्नी चमक से भर उठती है। पुराणिक बाबू भी पोस्ट आफिस मे ही काम करता है मैनपुरीवाली और वह एकात मे घण्टो बैठे महा-वहा की बातें करते रहते हैं। गोदावरी अम्मा को यह पसन्द नहीं है। सारे महल्ले मे कानाफूसी करती फिरती है। पोस्ट मास्टर देवीदयाल की मा है वह एक दिन केशर मा से कह रही थी, "उस भडवे का इस तरह आना मुझे पसन्द नही है। पर क्या करू, अपना दाम खोटा हो तो परखनेवाले का क्या दोष।"

केशर मा ने कहा था, "तो तुम मैनपुरीवाली को क्यो नही टोकती?"

"हरे राम! अजित की मा। उसे कोई रोक सकता है भला! मैं दस जनम ले लू, फिर भी नही रोक सकती। देखा नही, जरा कह तो घर मे कैसी धाय धाय मचा देती है वह।"

अजित समझ नही पाता है कि क्या बात है? बस, इतना जानता है कि गोदावरी अम्मा को पुराणिक पसन्द नही है। क्यो पसन्द नही है? कोई कारण समझ म नही आता। यह भी जानता है कि गोदावरी अम्मा अपनी किसी भी नापसन्द स्थिति को मनपुरीवाली पर थोप नही सकतीं। मैनपुरीवाली असाधारण सामर्थ्य की स्त्री है। घर या बाहर जब किसीसे

झगडती है तो अच्छे अच्छो के छक्के छूट जाते है। बच्चो को रुई की तरह धुन डालती है। बडी क्रोधी स्त्री।

और आज पुराणिक बाबू आया है। कुछ न कुछ होगा। अजित खुश है। जब जब वह आता है, गोदावरी अम्मा और मैनपुरीवाली मे किसी न किसी मामले को लेकर ठन जाती है और जब ठन जाती है तब देखते ही बनता है

"दोपहर भर से घर मे ही है। जब मैनपुरवाली रसोई म थी, तब वह भी पटा डालकर वही बैठा हुआ था। अब बैठक म हैं दोनो।"

'और देवीदयाल की बुढिया कहा है?'

'वह भी है। नीचे वाले कमरे मे बैठी भुनभुना रही है।" सुनहरी बताती है।

केशर मा चुप हो गयी है।

'बिलकुल रडीखाना मचा हुआ है बुआ। खी खी खी ठिल्ल ठिल्ल! दिन भर से यही हो रहा है। लुच्ची कही की! खसम ऐसा मिला है कि फूक मारो तो हवा मे उड जाय उस पर बोलते बनता नही है और यह धीगरिया न दिन देखती है न रात "

"अरे बाई, खसम चाहे जसा हो—मद होता है। चीरकर दो कर दे!' केशर मा के चेहरे पर तनाव पदा हो गया है।

अजित परेशान है। शब्द से शब्द, घटना से घटना जोडने पर भी कोई ताल मेल नही बैठा पा रहा है

"देवीदयाल भी क्या मद मे मद है! वह तो बस, यो ही है—कुछ भी।" सुनहरी बडबडाती है।

बाहर बारिश तेज हो गयी है सब तरफ सन्नाटा सा फल गया है।

सुनहरी कहती है 'आज ठड बढ जाएगी।"

"हा।'

अजित खाना खा चुका है। हाथ धोता है और बिस्तरे में समा जाता है। चादर को मुह के ऊपर तक उलटकर। मगर अजित को एक बुरी आदत भी है। एकदम मुह ढककर सो पाना अजित के लिए असभव। लगता है कि किसी ने भीतर ही भीतर सीने को दबाना शुरू कर दिया है और दम उखडने

लगता है। उसने एक रास्ता भी खोज लिया है। चादर को ऊपर तक इस तरह उलटता है और सिर से लपेट लेता है उसका छोर कि दोनो आखें दबी रहें—सिर्फ नाक बाहर रहे नाक बाहर रहती है तो दम नही उखडता।

"देवीदयाल भी मद मे मद है क्या!" अभी अभी सुनहरी बोली थी। यह 'मद मे मद होना' क्या होता है? पुतलियो पर पलकें थपके हुए जाग रहा है अजित। इस तरह की बातें हो तो अजित सो नही सकता। रामप्रसाद है—सुनहरी का ममिया ससुर। इसी सुनहरी का, जो इस पल केशर मा के पास बैठी है। अभी कोई साल दो साल पहले ही अजित रिश्ता की यह पतगबाजी पहचान पाया है। यह जो ममिया ससुर का रिश्ता है—कैसे है? अजित ने समझा है। रिश्ता का गणित यह कि सुकुल जमनाप्रसाद की घरवाली सुनहरी। सुकुल जमनाप्रसाद का मामा रामप्रसाद। अब जो घरवाले का मामा हुआ, वह घरवाली का ममिया ससुर हुआ। इसी हिसाब के सीधे-सीधे सहोद्रा सुनहरी की ममिया सास हुई। पर सहोद्रा के कहने से सुकुल जमनाप्रसाद अपनी पहली घरवाली को पीटता था। पीटते पीटते मार ही डाला। सुनहरी को भी पीटनेवाला है—एक दिन सुना था। क्या पीटता था? और सहोद्रा क्यो पिटवाती थी? यह समझ से बाहर। अजित इसी तरह सुनता है, माथा दौडाता रहता है। कितनी ही बातें तो है—सीतला बाई वैष्णवी का शभू नाई को होजडा कहना, कुदन दरजी का मायादेवी को चूमना, कलदारो से रेशमा सरीखी घरवाली ले आना, और आज यह देवी दयाल को लेकर 'मद मे मद' होने की खोज कुल मिलाकर सारा कुछ हौचपौच।

पर हारेगा नही अजित। रिश्ता की लफ्जो से उडती यह पतगबाजी भी तो उसने ऐसे ही माथापच्ची करते करते सीखी है—यह भी सीख लेगा। आखिर घपला कहा है? बस, करना इतना ही होगा कि कान लगाय रहो—कौन क्या कहता है।

इस पल भी कान लगा रखे हैं अकसर लगाय रखता है।

बाहर झर झर पानी गिरे जा रहा है इस झर् झर पानी ने मौसम को अजब सी मादकता मे भर दिया है। यह मादकता सुनहरी के चेहरे पर चमेली की चमक जसी खिली हुई ह सुनहरी के सीने बडे भर हुए हैं—

अजित चोर निगाहा से अक्सर देखता है। पता नही क्यो उसे इस तरह देख कर मजा आता है। कुछ कुछ वैसा ही जैसा जया मौसी के सीने से चिपके हुए महसूस किया था अजब बात है। अजित सोचता है—देखने, चिपकने और चोरी करने मे लगभग एक मजा यह मजा क्यों आता है? और, यह सचमुच बडे चक्करवाली बात है कि ऐसा होता क्यो है?

"ठड बढ रही है बुआ ' अनायास ही सुनहरी गुनगुना उठती है।

"हा री।' केशर मा उठती है—बिस्तरे मे समा जाती हैं। सुनहरी चारपाई के नीचे ही बैठी है। जब तक मुकुल जमनाप्रसाद नही आयेगा—तब तक सुनहरी इसी तरह केशर मा के पास बैठी रहेगी और कोई न कोई बात करती रहेगी। कई कई बार जमनाप्रसाद पूरी-पूरी रात गायब हो जाता है। सुनहरी बैठे-बठे ऊबकर लेटती है—किसी किसी बार अजित को चारपाई की बगल से धकेलती हुई जगह निकालकर लेट जाती है—अजित को मजा आता है—पर कहता उलटी बात है, 'मेरे लिए तो जगह रहने दो ।"

"तू क्या इत्ती बडी खटिया पर भी नही समायेगा? अरे, इसमे तो एक और आदमी समा जाये।" सुनहरी बडे अपनापे से उत्तर देकर दन् से उसी चादर म धड पिरो देती है—जिसमे अजित पहले से है।

अजित को मजा आने लगता है

आज तो ज्यादा ही मजा आये अगर सुनहरी उसकी चादर म घुस पडे अजित सोच रहा है हे भगवान, घुस ही पडे सुनहरी अहा! पर कहना वही होगा—वह विरोध जरूर करेगा अजित। जानता नही कि क्यो करना चाहिए, पर करना चाहिए।

जया मौसी के स्पश का दबाव अब भी कनपटियो पर मौजूद है। अजित चादर के भीतर शरीर फनाता है—सिकोडता है। थोडी ठड बढी तो सुनहरी जरूर अजित के बिस्तर मे आयेगी और फिर मजा ही मजा

अब तो बारिश और तेज हो गयी बुआ।' सुनहरी कुछ अजीब सी भारी आवाज म कह रही है।

'हा। तू तू लेट रह ना! जमना आयेगा तो मैं तुझे जगा दूगी।' केशर मा न मुह चादर म बन्द कर लिया है—सोने के करीब है। यह जवाब

देकर जैसे जवाब देना है—यह कर्तव्य पूरा करती हैं।

"वह मरा पुराणिक " सुनहरी की बुदबुदाहट, "जब देखो तो बुआ—तीन तीन जन दिये है, फिर भी इस औरत का पेट नही भरा "

अजित हतप्रभ। नया चक्कर। तीन तीन का जनना—यह तो सीधे-सीधे समझ मे आनेवाली बात है। जब बच्चा पदा होता है तो माना जाता है कि औरत बच्चा जनती है। मतलब पैदा करती है। तो—'तीन तीन जन दिये है'—यानी साफ साफ कहा है सुनहरी ने कि देवीदयाल पोस्ट मास्टर की घरवाली के तीन बच्चे हैं। दो लडकी—एक लडका। लडका तो अजित के बराबर ही है। दोस्त भी है। पर यह पेट भरना—यानी रोटी खाना ऊ हु! कुछ भी पल्ले नही पडा। बच्चा पदा होने से रोटी खानेका क्या सरोकार! अजित का मन होता है—कह डाले—'सुनहरी जीजी—(जीजी नहीं है, पर जब बुआ कहती है केशर मा को—तो अजित को जीजी ही कहना होगा)—पागल तो नही हो तुम? बेसिर पैर की बात!' पर नही कहेगा। कहेगा और केशर मा के थप्पड ना ना, कभी नही।

"अब जमना नही आयेगा री !" केशर मा ऊघती आवाज मे बडबडायी थी—"तू लेट रह '

और सुनहरी उठी थी अगडाई लेती हुई।

अजित का दिल जोर जोर से चलन लगा था अब आयी। पर एक सन्देह ने उदासी भी पदा की थी। अगर केशर मा के साथ समा गयी तो सब गडबड हो जायेगी। अजित का मजा मुरझा जायेगा पर अगले ही पल अजित ने अपने वदन मे भीतर तक वारिश की फुहारें महसूस की थी। सुनहरी उसके चादरे मे समा रही थी

अजित सास साधे पडा रहा—वदन कई कई जगह से सुनहरी के साथ छून लगा था।

"सरक जरा सरक ना!" वह बडबडा रही थी—अजित का हाथ से पीछे ठेलती हुई

और कुनमुनाता हुआ अजित थोडा-थोडा सरका था—एकदम दूसरे किनार जा लगने से सारा बेकार हो जायेगा—जब सुनहरी चादर म हान

हुए भी उससे परे होगी तब क्या मजा

वह आराम से लेट चुकी थी तकिये पर एकदम कनपटिया से टकराती—सुनहरी की सासें सुनहरी के भारी भारी कूल्हो के हिस्से अजित की जाघो को छूते हुए फिर पिण्डलिया

अजित का मजा अचानक ही तनाव म बदलने लगा था अजब तनाव। गुस्से से भरा हुआ, पर आनददायक। उसन जबडे कस लिये थे। जी हुआ था कि होले से ही सही सुनहरी के जिस्म से सट जाये। वह सरकने लगा था इस तरह सरकना होगा कि सुनहरी को लगे कि ढाल पर लुढकता हुआ अजित चारपाई के बीचोबीच उससे आ सटा है—बेचारे का क्या वश ? छोटा भी तो है। सुनहरी से वजन मे भी बहुत कम। और सोने मे तो ऐसा हो ही जाता है

सहसा तनाव और बढने लगा अजित के पैर, जाघें, एक तरह से पूरा धड ही सुनहरी से जुड गया और फिर उसका जी हुआ—करवट बदले पर क्या सोचेगी सुनहरी ? करवट बदलत ही एकदम सुनहरी के मुह पर अजित अपना मुह पहुचा देगा—ठीक वैसे ही जैस कुन्दन दरजी न मायादेवी के मुह पर मुह पहुचाया था

मगर केशर मा ! थप्पड ! बहुत क्रोधी हैं—जो चीज सामने पड जाती है पल भर मे सामनेवाल के माथे पर खीच मारती हैं

हुह ! खीच मारें—पर यह तनाव। अजित ने करवट बदली थी। कुनमुनाते हुए और एकदम सुनहरी के गालो पर मुह जा टिकाया—आग म झुलस रहा था वह। बारिश की आवाज, घर का अहसास, केशर मा सभी कुछ तो गायब हो चुके थे दिमाग से। सब तरफ सिफ सुनहरी सुनहरी और सुनहरी !

आनद स्पश ! और और मजा

उफ ! अजित की सास लगभग हाफो तक पहुच रही थी। अचानक सुनहरी ने उसे एकदम धकेलना शुरू कर दिया था 'क्या करता ह र ? सरक ! सरका जा ! "

और अगले ही पल सुनहरी के हौले हौले धक्के खाता हुआ अजित चारपाई के एकदम दूसरे हिस्से पर छिपकली की तरह चिपका रह गया।

फिर जागता रहा था जागता रहा था समझ मे नही आ रहा था कि क्या हो रहा है। बारिश और और तेज और-और यह सब क्या है। क्यो ? कितनी ही बार अजित का जी हुआ था कि रो पडे— क्यो ? और पता नही कब नीद आ गयी थी उसे

सुबह माथा भारी भारी था। रात कब सोया था—मालूम नही। बस, इतना जानता है कि बहुत रात गये सोया था—सोने का अभिनय करता रहा था। मजे के बजाय परेशान हो गया था। यह परेशानी क्यो होती है ? यह भी समझ से बाहर !

अजित सोचता है और झुझलाहट से भर उठता है—सब कुछ समझ से बाहर। कितनी कितनी बातें। या तो सब कुछ पागलपन से भरा हुआ है— या अजित ही कही कुछ पागल है।

पागल कैसे होते है ? उस दिन सुकुल जमनाप्रसाद का मामा गली से निकला था—रोज निकलता था—खामोश, सिर झुकाये हुए। सब कहा करते थे, "यह तो गौ है बेचारा—मरदगी वाले सींग भले ही हो—पर आज तक मारे नही किसी को। एकदम गौ !"

और वैष्णवी बोल पडी थी, "हुह ! गौ ! अरे गौ नही है—पागल है। क्या इसे दीखता नही कि मरी सहोद्रा ने कैसा नगा नाच मचा रखा है ?" सुबह का वक्त अजित रोज की तरह जागा ही था। स्कूल की तैयारी करते हुए, दात माजते माजते अक्सर छज्जे पर आ जाया करता था और छज्जे से सब कुछ सिनेमा की तरह दीखता है। महल्ले के लोग, महल्ले के घर। वही सुनता रहता था बातें। इसी वक्त रोज तैयार होकर रामप्रसाद दुकान के लिए निकलता उस दिन भी निकला था—और वैष्णवी सीतलाबाई म्युनिसिपालिटी के नल पर बाल्टी लिये खडी एकदम उसे पागल कहने लगी थी।

पर पागल नही हैं रामप्रसाद। बस, भला आदमी है। कभी किसी से उलझा नही, बेमतलब बात नही की। जब की है तो राम-राम दुआ-सलाम जबकि घरवाली सहोद्रा है कि चबड चबड वैष्णवी ने उसे लेकर ही कहा था—"कुतिया !"

यानी सहोद्रा बुतिया और रामप्रसाद पागन !

झूठ ! सहोद्रा है औरत। अच्छी खासी सुदर औरत। रग गोरा, इकहरा बदन, हिलती लचकती कमर केशर मा एक बार बोली थी—"ऐसी नागिन जैसी चाल ही तो औरत को औरत बनाती है फिर राम का दिया रग-रूप भी तो खूब है !"

अजित का मन हुआ था हसे, कहे—'मा ! तुम भी कैसी-कैसी बातें करती हो—नागिन भला सुदर होती है ? मुहल्ले म एक निकल आय तो सबके पसीने छूट जायें। फुफकारे और आदमी पर जहर चढ जाय।' मगर कहा नही। ठीक नही होगा। आखिर बूढी है केशर मा। अजित की मा। सारा महल्ला कहता है—"जमाना देखा है उन्होने और जिसने जमाना देखा हो—भला वह कैसी कैसी बाते करेगा ? वह तो हमेशा अकलमन्दी की बात करेगा। फिर केशर मा तो अपनी 'अकलवरी' के लिए सारे महल्ले मे मशहूर है। सुनहरी गोदावरी, वैष्णवी सीतलाबाई, सभी तो सलाह लेती है उनसे। फिर काम भी वही करती है।" उस दिन अजित ने देखा था कि सुनहरी उदास होकर आ बैठी और पूछने लगी थी— 'अब बताओ बुआ—क्या करू ? मुझे तो लगता है यह माई राड मुझे डस कर ही छोडेगी !'

माई यानी सहोद्रा।

सुनकर केशर मा गभीर हुई थी। लगभग दस मिनिट कहानी सुनते रहने के बाद कहा था, 'तू किसन से बात कर ले—वह वकील है ना।'

और अजित जानता है—किसन यानी सुनहरी का भाई। इसी शहर मे है सुनहरी के मा बाप, भाई। खाते पीते लोग हैं।

"क्या बात करू ?" सुनहरी ने पूछा था।

"सब कुछ बता दे '

"वह तो सारी लीला जानते हैं सहोद्रा माई की '

'तो बस। कह दे कि सहोद्रा ने जमना को हाथ मे कर लिया है '

"इसने क्या हाथ म किया है माई—असल मे तो यह मरा सुकुल ही छिकल है—न रस न रग—बस ऐसे ही घाट पर नहा लेता होगा—समझता है नदी पार हो गया। और तुम जाना—वह सहोद्रा माई तो बडी गहरी है इसे पी जायेगी बिलकुल "

"अरे सुन तो बोले ही जाती है—नही सुनना तो मेरे पास रोना लेकर आती ही क्यो है तू ?" केशर मा झुझला पडी थी।

"अच्छा-अच्छा बोलो बुआ ?"

और केशर मा ने कहा, "किसन को सब बता दे—कानूनी पेच निकाल लेगा। वकील आदमी ठहरा यह मकान हाथ मे करके—जूता लेकर आगे बात करना। सहोद्रा तो क्या, उसकी तीन पीढी ठीक हो जायेंगी "

"पर माई यह 'इनका' क्या करू यह तो हर बखत माई माई ही करते रहते हैं।"

"वह तो करेगा " केशर मा ने उत्तर दिया था, "जिस पर दस साल से मोहिनी घूमी हो—वह तो करेगा! पर तुझे तो अपना घर सोचना, देखना है "

"तो मैं आज ही जाकर किसन से बात कर लूगी।" सुनहरी उठ खडी हुई थी। पर यह बहुत पहले की बात है—करीब छह सात महीने की। केशर मा की दी सलाह के अनुसार किसन गली मे आया था। बदन पर काला कोट, गले मे काली टाई, सफेद कमीज और सफेद पेंट—काले जूते। एकदम वकील। सारे दिन सहोद्रा, सुनहरी, रामप्रसाद और सुकुल जमना प्रसाद की बडबडाहटें बैठक से सुनायी देती रही थी यह दौर आगे भी चलता रहा था। इस दौर को लेकर सारे महल्ले मे फुसफुसाहटें होती थी। अक्सर सुनहरी और सहोद्रा मे गालियो से झगडे भी होते एक बार तो दानो आमन सामने आकर सरे गली एक दूसरे के बाल पकडकर उलझ गयी थी। सुनहरी का ब्लाउज फट गया था। अजित ने पहली बार उसके भारी भारी सीने नगे देखे थे। वे, जिन्हें लेकर वह हमेशा अपने भीतर गुदगुदी अनुभव किया करता था कुछ लोग बीच-बचाव करने आ गये थे—वे गालिया बक रही थी और एक-दूसरे के मुह, हाथ नोच रही थी। सारे महल्ले के बच्चे सहमे खडे थे

केशर मा छज्जे पर बठी चिल्ला रही थी—"अरे मरियो! तुम्हें लाज सरम नही है। गली मे ऐसा नगापन मचा रही हो। सब कुल की मरजाद घूरे पर डाल दी भीतर जा के लडो।

"छोडो! छोडो! "

कोई चिल्लाया था। रामप्रसाद और मुकुल जमना दोना ही घर पर नही थ।

लहूलुहान होनी धरती पर लोट गयी थी वे

बच्चे सहमे-सहमे

"राड ! "

"अरे तू राड ! तेरी नाठ होगी—खसमखानी ! तू माई है? अरे, तू तो कुतिया है ! द्वारे द्वारे फिरेगी तू तुझे ता चीर डालूगी ! यह कोई मीरा नही है बसरी बजाती रहे—मैं तो तेरे परखचे ले ले !"

अचानक वष्णवी चिल्ला उठी थी, 'अरी कम्बख्तो, हटो ! कुछ तो लिहाज करो ! काका आ रह ह '

काका ! और पल भर म दोना थम गयी थी। कपडे सम्हालती हुई अपने अपन घरो मे समा गयी थी। सब महल्ले की औरतो के चेहरो पर घूघट लग गये थे। *यहा तक कि केशर मा ने भी छज्जे पर बठे हुए घूघट* खीच लिया था। काका आ रहे हैं—काका यानी सरदार मराठे। गली के सबस बुजुग आदमी। मोठें बुआ छाटे बुआ के पिता।

और तभी सबने देखा था कि छतरी सिर पर लगाय 'कुछ ठुमकते हुए' काका गली से निकलने लगे थे। मरदा न राम राम, नमस्त, नमस्कार उछाली थी। काका राम राम करते आगे बढ गये थे। बहुत धीमे चलते है। ऐसी चाल किसी की नही देखी अजित ने। सब कहते हैं—यह ठुमकिया चाल, असल म राजसी चाल है। जब महाराज दशहरे पर निकलत है—चादी-साने के हौदे पर, हाथी सवार होकर—तब पीछे पीछें राजा के जागीरदार, सरदार चलत ह। उनमे मराठे सरदार भी चलते रहे हैं। चलते चलते यह खास तरह चलन की आदत पड गयी है उन्ह। काका गली का सौ हाथ टुकडा सौ कदमा मे पार करते हैं—वह भी छनछनाते हुए से। अजित को ही नही सबको अच्छी लगती है उनकी चाल।

यह हमेशा होता रहा था अवसर होता था। इसी तरह शोर उठता, इसी तरह काका निकल पडते इसी तरह गालिया गायब होनी—फिर सब बीत जाता और बाद म जब काका गली के माड स गुम हो चुके होन—मतलब गली पार हो जात—ना खिलाडी फिर स खेलने लगत

गरज यह कि केशर मा की सलाह के छह सात महीना तक यही सब होता रहा था और फिर एक दिन सुरगो अपनी सातवी वेटी को मोटी तोद पर लगभग रखे हुए जैसे-तैसे सीढिया चढकर केशर मा के पास आयी थी।

"कैसी है री ?"

"ठीक हू—काकी।" सुरगो हाफती हुई धरती पर फैल गयी थी। साढे तीन-पौने चार फुट की सुरगो मोटाई मे लगभग बराबर होकर एक ड्रम जैसी लगती थी। बस, कुछ कुछ पेट ज्यादा निकल आया था केशर मा की उसके बारे मे राय थी—'छवि तो अच्छी है, पर जचकी मे शायद हवा खा गयी बेचारी—देखो तो पेट कितना झूल आया ! वरना यह उमर और पट झूले—बस, यह हवा का ही चक्कर है !' एसी सुरगो बैठी थी। बच्ची उसने दोनो पैरो के बीच डाल ली थी। खबर दी थी, "काकी, आज बेचारी सहोद्रा की रामलीला निबट गयी।"

"सो कैसे ?"

"कचहरी मे मकान अपने नाम चढवा लिया पटठी सुनहरी ने !" सुरगो ने इठलाकर कहा था, "भीरा की जान तो ले ली थी सहोद्रा ने, पर सुनहरी उसका टेंटुआ पकड गयी !"

रामलीला ! चौंककर अजित ने बातचीत पर कान लगा दिये थे—क्या सहोद्रा रामलीला करती थी ? कमाल है ! अजित को कभी नही मालूम हुआ कि रामलीला करती है। मालूम हो गया होता तो किसी दिन सहोद्रा से कहता नही—"सहोद्रा जीजी, हमे दिखाओ ना रामलीला। वही—सूपनखा की नाक कटने का सीन बतला दो। बहुत बढिया है ! "

पर अफसोस। सुरगो से आज पता चला है और जब तक चला है—तब तक सहोद्रा की रामलीला 'निबट' चुकी है।

"तुझसे किसने कहा सुरगो ?" केशर मा सवाल कर रही थी।

"चुनमुन के दादा और पाडे जी ही तो गये थे गवाही करने।" सुरगो ने बतलाया था। चुनमुन के दादा यानी कम्पाउण्डर शामलाल। सुरगो का घरवाला। और पाडे जी मतलब हुआ सीतलाबाई वैष्णवी के पति।

और मकान नाम करवाने का मतलब है—मकान ले लेना। यानी अपना हो गया। सुनहरी का मकान तो था ही अपना फिर अपने का

क्या अपना ? अजित चक्कर म।

और जब सुनहरी का नाम मकान पर 'चढ' गया था तो एक दिन अजित ने ही क्या सभी ने बहुत कुछ देखा था

पहले घर मे एक चल्हा था। सुकुल जमनाप्रसाद, सुनहरी, सहोद्रा, और रामप्रसाद का। मतलब एकसाथ रहते थे—पर फिर उसी मकान की एक पाटौर मे रामप्रसाद को लेकर सहोद्रा समा गयी थी

उस दिन सारे महल्ले म यही चर्चा थी। सुनहरी खुश थी। सहोद्रा का गोरा चेहरा स्याह हो गया था

रामप्रसाद रोज की तरह अगौछा कधे पर डाले हुए सुबह-सुबह घर से निकलता था। मकान नाम पर चढने के बाद सुकुल जमनाप्रसाद अपनी पान की दुकान चलाने लगा था। जब एक चूल्हा था तो सुकुल आराम से अपने मामा के जाने के बाद ग्यारह बजे दुकान पर जाता था। चाहे जब लौट आता था पर अब उसे भी सुबह जाना पडता। अजित और गली के सारे बच्चे जान गये थे—सुनहरी न सब कुछ छीन लिया है बेचारे गौ रामप्रसाद से। रामप्रसाद के सीधेपन पर अजित को भी बहुत श्रद्धा थी—नापसन्द थी तो सिर्फ एक ही बात। सुबह सुबह रामप्रसाद का दिखना। एक आख म फुली थी उसके। काला रग। चेहरे पर चेचक के मोटे-मोटे दाग बदसूरत! कभी कभार सहोद्रा के साथ निकलता तो केशर मा मुह बिचका दिया करती, "रामप्रसाद है तो गौ पर बेचारी सहोद्रा का क्या कसूर था? भाग तो देखो एसी चमेली सी बल बबूल से जा लिपटी!'

और केशर मा ही क्या, सभी यही कुछ कहते थे।

खुद सहोद्रा भी क्या कम दुखी थी! अजित न सुना था उस दिन, 'अब इसे भी भाग ही कहो जीजी, (वह केशर मा को जीजी ही कहती थी—रिश्ते की किस पतग से पेंच लडा था—मालूम नही) इनने दिया ही क्या है मुझे खुद को तो भगवान न यह रूप दिया, फिर कौडी जेब मे नही! जिन्दगी भर कमा कमाकर इस मरे भानजे का कोठा भरते रहे और मुझे नरक मे गलाया!"

"अपना अपना भाग है सहोद्रा। केशर मा न भी उतनी ही भारी आवाज म उत्तर दे दिया था, यह तो ससार है!'

"इसीलिए तो, राम कर, एसा ससार आगे न चले ! मैं तो प्रभू से यही मागती हू आठो पहर। सहोद्रा रुआसी हो गयी थी।

"छि छि ! एसे नहीं कहत।" केशर मा ने टोका था।

"तुम्ही बताओ जीजी " आसू पोछने लगी थी सहोद्रा, "ऐसे ससार को आगे बढाके भी क्या होगा—न रूप का, न रग का ! तिसपर कोदो भाग म। हुह !" उसका गोरा रग और और काला होता जाता था।

और एक ओर बैठा अजित कागज पर कलम रखे हुए, कान उनकी बाता मे दिये सोचता रहता ससार कैसे बढना है आगे ? और क्या उसे सहोद्रा बढा सकती है ? अब तक किसने बढाया है ससार ? सब घपला सब दिमाग से ऊपर !

"राम राम ! कैसी बातें करती है तू ? निपूतियो की आत्मा भटकती रहती है, मालूम है ना तुझे ! अब कही सो कहीं—मेरे आगे फिर कभी ऐसी बात मत कहना !'

और सहाद्रा कुछ इसी तरह ससार बढाने घटाने की बातें करती हुई चली जाती। अचानक केशर मा अजित की ओर मुडती, "तू तू तैयार नही हुआ अब तक ?"

"बस, जाता ही हू मा ! " बस्ता उठाकर उसमे से चुनी पुस्तकें निकालता और सीढियो से उतर जाता गली पार करता तो छोटे बुआ, मोठे बुआ दीख जाते। झूमत चले जा रहे हैं। अजित से केशर मा उनकी *सगति न करने को कह चुकी हैं—पर सगति तो अपन आप हो जाती है।* एक स्कूल मे हैं एक क्लास, एक पढाई, एक साथ आना जाना एक ही महल्ला। अजित के सगति करने न करने से क्या होता है—हो जाती है।

अजित उनके साथ हो लेता।

मोठे बुआ लम्बा चौडा, दीघकाय। अपनी उमर से दो गुना। कभी कभी अजित को खीझ आती—क्या वह मोटा नही हो सकता ? कितना बढ़िया तो खाता है ? खूब माल-ताल पर ये मोठे बुआ कितना मोटा हुआ है—मस्त ! केशर मा ही नही, सब महल्ला कहता है, ' य राज जागीरदारिया चली जायेंगी—इन सबके फाके पड जायेगे। सब खा पोछकर

चूतड से हाथ फेर लेंगे। अब भी क्या कम खाने के लाले पडे हुए हैं। चार घोडे रहते थे महाराजा के। एक रह गया। सुनते हैं, वह भी जाने वाला है। और आदतें वही रईसी वही नखरे! मोठे बुआ के घर का भी तो यही हाल है पर इस हाल मे भी मोठे बुआ मोटा हो रहा है—घूम घडाका! और अजित—छिपकली! अपने पर ही चिढ होने लगती उसे।

"पण्डित! " मोठे बुआ बोलता। अजित को अनचाहे ही बोलना पडता।

"हू!"

"चल—हुजरात पर अण्टे खेलने चलता है?"

"नही।, मैं पढने ही जाऊगा।' अजित कुछ भुनभुनाकर जवाब देता।

"चल ना! ' मोठे बुआ मोड के पास स्कूल का रास्ता बदलने लगता।

अजित कतरा जाता। नही! अक्सर छोटे बुआ उसका साथ देता। अजित का बाया हाथ पकडकर वह स्कूल की ओर खीचता, "नही-नही, अजित। अपन स्कूल चलेंगे " फिर वह मोठे बुआ से कहता, "तुम्हीच खेला।"[1]

'तुला काय करायचा है—मी पण्डिताला म्हणते।"[2] मोठे बुआ भाई पर बिगडने लगता।

"नाही।" छोटे बुआ जवाब देता, "हा माझा दोस्त!"[3]

"अरे चल!" मोठे बुआ गुर्राता—अजित को छोडकर चल पडता।

दोनो स्कूल जाते—इसी तरह धीमे धीमे छोटे बुआ उसके सबसे ज्यादा करीब आन लगा था काफी आ गया था यह फर्क केशर मा को भी पता चलन लगा था और अजित की छोटे बुआ से दोस्ती अखरना बन्द हो गया था उन्हे।

पर इधर कुछ दिनो से अजित ने दोपहर छोटे बुआ के साथ बिताना

१ तुम ही खलो।
२ तुझ क्या करना—मैं पण्डित से कह रहा हू।
३ यह मेरा मित्र है।

बन्द कर दी। दोपहर होती और सीधा मास्टर जी के घर की ओर दौड जाता। वहा मिन्नी थी, जया मौसी थी कभी कभी बीरन भी आता। मिन्नी का बडा भाई—पर एक बार छोटे बुआ ने बतलाया था, "बीरन स्साला बदमाश है इसलिए मास्टर जी ने उसे चाचा के यहा रख छोडा है। वह हैं पुलिस मे दरोगा। बेंत लगा-लगाकर बीरन का काफी कुछ ठीक किया है उन्हान, आगे बिलकुल कर देंगे—तब घर लाया जायेगा!"

बदमाश क्या होता है? यह एक कल्पना अजित के दिमाग मे थी। मोठे बुआ की तरह ही होता है बदमाश अभी पूरा नही हुआ—पर धीरे-धीरे हो ही जायेगा।

पर बीरन शायद पूरा बदमाश हो चुका है इसलिए बेंतो से ठीक किया जा रहा है

कभी कभी घर आ पहुचता है।

क्या मालूम आज भी आ पहुचा हो? वह आता है तो घर म कुछ खेलने का मजा कम हा जाता है। कभी जया मौसी से झगडेगा, कभी मिन्नी को पीटेगा। अजित तो उसके सामने सहमकर रह जाता है—चुप। बदमाश के आगे चुप ही रहता है—वह शरीफ होता है।

और सच तो यह है कि अभी कुछ ही दिन हुए हैं मिन्नी के घर पहुचे। अजित ने तो मकान के पूरे कमरे, छत और गैलरी भी नही देखी। सब समझ लेगा तब सोचेगा कि क्या होना चाहिए—क्या नही।

अजित सीढिया चढ रहा था। मन ही मन प्रार्थना—हे भगवान! बीरन न मिले। सिर्फ मिन्नी, जया मौसी हो। मायादेवी भी न हो तो अच्छा। पर वह सोती रहती हैं। कभी-कभी नही भी होती।

आज अजित कुछ खुश भी है—कुछ उखडा हुआ भी है। सुनहरी को लेकर हुई रात की बात मिन्नी को बतलायेगा। मिन्नी भी तो खूब-खूब बातें बतलाती है। उस दिन हायजिन मे नर और मादा की बात आ गयी थी। मिन्नी अजित के कान मे फुसफुसायी थी, "जानता है—नर और मादा क्या होती है?"

"क्या?" अजित ने पूछा था।

"पहले तू बता।"

'इसमे बताने का क्या है।" अजित ने लापरवाही से जवाब दिया था, "जो मद होता है—वह नर, और जो औरत होती है—वह मादा।"

"अरे, ये तो सभी जानते हैं" मिन्नी ने झिड़का था। मुह बिचका कर कहा था, "और क्या होता है—वह बतला।"

"और क्या होता है?"

'मैं बतलाऊ?"

हू। बतलाओ।'

"तो सुन—मादा वह होती है, जो बच्चा देती है। अब जैसे तू है। तू बच्चा नही दे सकता तो हुआ नर और मैं—मैं बच्चा दूगी। बहुत साल बाद दूगी—पर दूगी, तो मैं हुई मादा। यह है असल बात!"

"क्या बकती रहती है तू!' अचानक दोनो चौक गये थे। जया मौसी आ खडी हुई थी, पीछे। वह नाराज थी। मिन्नी ने सरलता से हसते हुए कहा था, "मौसी, यह, यह अजित है ना—इसको मालूम ही नही कि मादा क्या होती है।"

"चुप रह तू!" जया मौसी झिडक गयी थी उसे, "तुम लोग और कुछ बातें नही कर सकते?'

"कर तो रहे हैं—हायजिन की बातें ही तो कर रहे हैं।' अजित भी बोला था, "यू ही चीख रही हैं आप।"

"ठीक है, ठीक है।" कतराती हुई सी जया मौसी ने रौब के साथ कहा था, "करो—पर नर मादा के अलावा कुछ करो।" फिर वह चली गयी थी। मिन्नी और अजित—एक दूसरे का थोडी देर भल्लाये हुए देखते रहे थे। फिर मिन्नी ने उस ओर मुह बिचकाते हुए कहा था, जिधर मौसी गयी थी "हुह! आप तो गन्दे गन्दे सिनेमा के गीत गाती हैं हम हायजिन की बात भी नही करें। फालतू चिल्लाती हैं।' फिर वह दबी आवाज मे अजित से बोली थी, अब कभी नर और मादा की बात हो ना—अपन चुपके से कर लेंगे। फिर क्या कर लेंगी!"

पर अजित डर गया था। कुछ नही कहेगा।

और आज यह जो मुनहरी वाली बात है—नर और मादा की ही है।

इसलिए चुपके से करनी होगी। ऊपर आ पहुचा है अजित

बरामदे मे आकर अजित की नजरें घूमती हैं चारो ओर—मिनी ? जया मौसी ?

अजब सा सन्नाटा बिखरा हुआ है। एकदम खामोशी। अजित का मन उखडने लगता है—अगर दोनो ही नही हुइ तो अजित का आना बेकार हुआ। दबे कदमो जया मौसी के कमरे की ओर बढना है—अहा हैं ! जया मौसी है ! उढके हुए दरवाजा के बीच की लकीर स पलग पर औधी लेटी साफ साफ दीख रही हैं—सो रही हैं शायद ? अजित हौले से दरवाजे का एक पल्ला धकेलता है।

बिलकुल। सो ही रही है। अजित दरवाजा हौले से उसी तरह भिडा देता है—लगता है कि मिनी वही गयी है। शायद मा के साथ गयी होगी अब किससे करेगा बात ? नर-मादा वाली बात। सुनहरी मादा। बच्चा देन वाली चीज। और अजित नर—बच्चा नही दे सकता। आखिर अजित को रात हु ॥ क्या था ? ऐसा क्या होता है ? मिनी होती तो चुपके-चुपके पूछता। वह चुपके चुपके बतलाती। फिर दोनो खेलते।

अजित को प्रतीक्षा करनी होगी। वह किताबें एक ओर रखकर चुपचाप बरामदे मे ही बैठ गया था—ऊबन म इधर-उधर देखता हुआ। किसी बार जया मौसी के कमरे का अध-उढका दरवाजा किसी बार मायादेवी की बठक को देखता हुआ

अभी अजित ऊब ही रहा था कि अचानक बैठक से बीरन निकल आया। बरामदे मे अजित को देखकर चौंका, "तू ? "

"हा—पढने आया हू।" अजित न सकपकाकर जवाब दिया।

"अच्छा अच्छा, पढन आया है। बैठ " बीरन बोला। वह कुछ परेशान सा लगा। अजित अचरज मे—अजब बात है। उसे देखकर अजित परेशान था पर बीरन भटनागर का चेहरा पिटा हुआ है। शायद बुखार-उखार आ गया है उसे। पूछा, "क्या बात है, तुम्हारी तबीयत खराब है ?"

"हैं ? तबीयत ? हा हा, तबीयत ही खराब है मेरी। बहुत खराब है। दवा लेने तो आया ही था" फिर वह सीधा सीढियो की तरफ जान

लगा था—चोर चाल। जाते जाते बोला था, "तू खब पढ ! मन लगाकर पढना ! "

अजित फिर से बैठ रहा। बीरन सीढियो से उतर रहा था—धम धम कितनी जल्दी जल्दी उतरता है ! अभी सोचा ही था कि जोर की आवाज हुई—ऐसे, जैसे कोई बतन गिरा हो। अजित चौंक गया। शायद कोई बतन गिरा है घर मे। बिल्ली दूध पी गयी होगी। जब जब इस तरह कोई बतन घर म गिरे तो समझ लेना चाहिए कि बिल्ली दूध पी गयी है या फिर रोटिया के डिब्बे को उसने पटक दिया है !

"क्या हुआ रे ? '

अजित चौका—जया मौसी कमरे से चिल्लायी थी।

'कुछ नही मौसी शायद बिल्ली तुम्हारा दूध पी गयी !"

जया मौसी तेजी से बाहर निकली और किचिन की ओर लपकी चली *गयी। दो पल बाद लौटी—निश्चित थी। कहा, "नही दूध दूध नही* पिया। ऐसे ही कोई बतन गिराया होगा।' फिर अपने कमरे मे समाती हुई पूछ गयी, 'तू कब से आया बठा है ?"

अजित उठकर उनके पीछे हो लिया, "दस पन्द्रह मिनट हो गये।"

जया मौसी को शायद अजित के भीतर आ पहुचने की कल्पना नही थी। वह चारपाई पर बैठी तो अजित एकदम सामने जा खडा हुआ, "मौसी !"

उन्होने चौंककर अजित को देखा। और अजित ने भी लगभग चौंकते हुए ही सवाल किया, "तुम तुम रो रही हो मौसी ?"

जया मौसी की आखो म हल्की ललामी थी। पुतलियो पर नमी और गालो पर आसुओ की कुछ लडिया अजित के सवाल के साथ ही वह एकदम अपनी आखे रगडने लगी थी, "मैं मैं कहा रो रही हू ? मैं तो—नही नही। कहा रो रही हू ?"

"तो तुम्हारी आखें लाल क्यो है ?" अजित सहज भाव से पूछने लगा, 'आसू भी भरे हुए है ?"

'यह—यह तो ऐसे ही। कल से मरी आखो मे दद है ना—इसीलिए। जया मौसी ने कहा था, फिर पूछा, ' तू तू पढेगा ?

"पढता तो सही—पर खेल त के बाद। अभी तो मैं चलने आया था।"

"तो मिनी तो दीदी के साथ कही गयी है।" जया मौसी ने कुछ परेशान होते हुए कहा था। शायद वह अपने-आपको कुछ घबराहट मे पा रही थी। पूछा, "अच्छा तू तू फोटो देखेगा?"

"कैसे फोटो?" अजित ने उत्सुकता से सवाल किया, "सिनेमा के हैं?"

"नही, घर के। मेरी, मेरी मा का, पापा का।"

'हा हा, जरूर देखूगा।" अजित उनकी चारपाई पर ही बैठ गया। बिलकुल पास। चुप, चोर नजरो से उनके सीने को देखता रहा। कितना मजा आये अगर आज भी जया मौसी उस दिन की तरह अजीत को अपने सीने मे छिपा ले?

वह उठी और एक ट्रक का ताला खोलन लगी। फिर एक पुराना, मोटा लिफाफा निकालकर अजित की ओर बढा दिया। बोली, "इसमे है।"

अजित ने हाथ डाला और एक एक कर फोटो निकालने लगा। कुछ पीले पडन लगे पुरान फोटाग्रापस जया मौसी बतलाती रही थी, "यह हैं मरी मा और यह पिता यह दादा जी " फिर कुछ लडकियो के फोटो निकले थे, कुछ ग्रुप फोटो। दो फोटो थे—जया मौसी के। अभी-अभी वाले। काला, लम्बा चोगा सा पहने खडी हैं। एक गोल कागज रूलकी तरह बनाया हुआ हाथ मे

"यह क्या पहना हुआ है तुमने—बुरका?" अजित ने पूछा।

हस पडी वह "हिश्श। पागल है तू। हिन्दू औरतें भी कही बुरका पहनती हैं?"

"तब यह क्या है?"

" यह है सर्टिफिकेट। जो जो लडके लडकिया बी० ए० पास कर लेते है ना, उन्हे यह पहनकर और खास तरह का कप लगाने के बाद उनको सर्टीफिकेट मिलते है। जो गोला मेरे हाथ मे है—वह बी० ए० की डिग्री है। यानी सर्टीफिकेट।'

"अच्छा बडा अजीब-सा है।" अजित ने बुदबुदाते हुए कहा था। तसवीर अलग रखनवाला ही था कि तभी उसकी नजरें तसवीर मे अचानक ही जया के सीन पर जा ठहरी थी—यही जगह तो है, जहा अजित का सिर

हाथो म लेकर जया मौसी न भीच लिया था। एक रोमाचक सनसनी उसने तलवा से सिर तक महसूस की।

"चल रख इसे।' जया मौसी ने तसवीर एक ओर रख दी थी। दूसरी तसवीर में खडे लोगो के बारे मे बतलाने लगी। ऐसे ही जाने कितनी तसवीरें दिखलायी थी उन्हाने अजित बोर होन लगा था। तभी एक छोटे लिफाफे पर अजित की नजर आ पडी थी। जया मौसी "अभी आती हू।" कहकर दूसरे कमरे तक गयी थी उस समय। अजित एक एक कर तसवीरें देखन लगा था। सब साल दो साल पुरानी तसवीरें थी। जवान और खूबसूरत युवको की—पाच तसवीरें

"अरे रे उन्हें रख दे। ये तेरे काम की नही है।' जया मौसी ने लौटते ही एकदम उसके हाथ से तसवीरें लेकर वापस लिफाफे मे डाल दी थीं। उनके चेहरे पर कुछ परेशानी झलक आयी थी। अगुलिया काप रही थी।

'पर पर य कौन हैं?'

"तू नही जानता।

'तसवीरे तो तुम्हारी है। तुम नही बतलाती तो मैं किसी को न जान पाता। बतलाओगी ता जान जाऊगा कि कौन-कौन हैं?'

"इन्हे इन्हे तो मैं भी नही जानती।"

"तब तुमने अपने ट्रक मे क्यो रख रखी हैं ये तसवीरे?"

जया मौसी ने जल्दी-जल्दी सारी तसवीरें और वह छोटा लिफाफा बडे लिफाफे में समा दिया था, फिर उन्हे ट्रक म रखते हुए जवाब दिया था, 'तुझे जरूरत से ज्यादा बहस करने की आदत है। क्या?"

'मैंन क्या बहस की?' अजित बोला। उसे इस तरह जया मौसी का उससे तसवीरें लेना, जल्दी जल्दी लिफाफा बन्द करना और ट्रक मे समा देना अच्छा नही लगा था। उसने कहा ही कहा था कि उसे फोटो देखने है? खुद ही तो बोली थी फिर खुद ही इस तरह छीना झपटी करन लगी और ऊपर से कह रही हैं कि अजित को बहस करने की आदत है। हुह। अजित का मुह चढ गया था।

पर जया मौसी अचानक उदास हो गयी—बिलकुल वही उदासी—जो अजित न पहले भी एक बार देखी। उनकी आखें फिर से छलछला आयी।

अजित फिर से उलझ गया कि जब आखो मे इतनी तकलीफ है तो मोती क्या नहीं ? अजित जानता है। जब आखो मे तकलीफ होती है तो उसे सुला दिया जाता है। कई बार अजित को भी सुलाया गया है। कनपटिया पर केशर मा खाने वाले चूने के गोल बना देती हैं। उससे आखें ठीक हो जाती हैं। फिर भी ठीक न हो तो हलवाई के यहा से मलाई मगाकर फाहे के साथ आखा पर बाध दी जाती है और आखें ठीक पर दो चार दिन लगते हैं। जया मौसी आचल से आखें पोछ रही थी। नाक खीच रही थी। कहा था, "अब तू जा—बाहर कमरे बैठ। मैं लटूगी।"

अजीत उठ पडा। अपना मान अपमान भूल चुका था। सहानुभूति से पूछा, "मौसी, तुम्हे बहुत दद हो रहा है—है ना ?"

"हा। अब तू जा।" वह भर्राये से स्वर मे बोली थी।

अजित बाहर चला आया। अब तक कोई नही आया। फिर से ऊबने लगा था वह। उढके दरवाजो स दखा—जया मौसी तकिये मे सिर खपाये उसी तरह लेट रही हैं। बहुत तकलीफ ह आखो म। वह सीढियो की ओर बढा। बाजार के चौराहे पर पानवाले की दुकान है। चूना माग लायगा। फिर जिस तरह केशर मा आखा मे अजित की तकलीफ म कनपटियो पर चूना मलकर गोले बना देती है—वैसे ही जया मौसी की कनपटियो पर बना देगा। आराम मिलेगा। मास्साब के घर मे कोई नही है ता इतना कत्तव्य निबाहना अजित का काम ही है।

वह बाजार की ओर लपक पडा था।

पानवाले से एक पत्ते म चूना लेकर लौटा तो बाजार के एक ओर पेशाबघर वाली गली मे मोठे बुआ को दखा। वह बीरन का गिरहबान पकडे हुए उसे थप्पडें जड रहा था। हक्काकाया-सा अजित देखता रह गया

"स्साले!" मोठे बुआ गरज रहा था। बीरन को उसन गिरहबान से इस तरह थाम रखा था जैसे पतग हवा मे उठी हुई हो जरा इधर उधर हुई कि ठुमकी। बस, कुछ इसी तरह बीरन के घिघियाते, हिलते शरीर मे मोठे बुआ ठुमकी देता, 'हमस दाव! बोल, बब्बू कसरे को तू न क्या किया है ?"

"तुम्हारी कसम दादा! कुछ नही—मैं तो उसके पास एक चिलम

लगाने बैठा था—बस !"

"फिर हरामजदगी।" मोठे बुआ चिल्लाया था, "निकाल ! जेब दिखा—क्या है ?"

और फिर बीरन भटनागर कुछ हिले डुले इसके पहले ही मोठे बुआ एक हाथ से उसके नेकर की जेब टटोलने लगा था। फिर कुछ पैसे निकाल लिये थे उसने। "य ये सात रुपय किधर से आये ? चल, बब्बू के यहा ! उस स्साले से भी पूछूगा—किसलिए दिये हैं ?" मोठे बुआ ने पैसे अपनी जेब मे डाल लिये थे—फिर बीरन को कसेरे की दुकान की तरफ खीचने लगा था। बीरन घिसटता हुआ चिल्लाया था, "अच्छा-अच्छा, दादा। छोड दो। बतलाता हू—सब बतलाता हू।"

"हू—ता बोल !" मोठ बुआ ने गग्दन छोड दी थी उसकी।

"भगोनी। पीतल की।" बीरन अटकती आवाज मे बडबडाया था, "पर बुआ घधा कर लो। आधा-आधा।"

"नही चार मेरे, तीन तेरे। बात होती है ?"

'मगर बुआ ?" बीरन रुआसा हो गया।

'नही तो रहने दे। चल, मास्टर जी के पास !" मोठे बुआ ने एक बार फिर गिरहबान थाम लिया था बीरन का।

और बीरन एकदम घिघिया पडा, "अच्छा-अच्छा, मजूर। लाओ तीन दो।"

और अजित कुछ भी नही समझा। ऐसे, जैसे सारा मामला एक पतग की तरह उसकी दिमागी छत से गुजरता हुआ कही दूर चला गया हो—ओर छोर भी आखा से ओझल। पर इतना समझ गया था—दोनो कोई शैतानी का धधा ही कर रहे थे वरना सात रुपय और उसमे हिस्सेदारी ? पाच रुपये माहवार देकर तो अजित पूरे महीने भर मास्साब से ट्यूशन ले रहा है ? और सात रुपये जैसी वडी रकम का बच्चे से क्या मतलब ?

पर बीरन या मोठे बुआ को लेकर माथापच्ची बकार। जानता तो है कि गुण्डे हैं। यही धधा—चोरी, ठगी वईमानी और मारपीट। अजित चल पडा था। बकार ही दखता रहा। उधर बचारी जया मौसी की आखा का दद और बढ चुका होगा।

सीढियो पर आकर अजित को कुछ बेचैनी होने लगी। बरामदे से मायादेवी की आवाज आ रही थी—बहुत तेज-तेज। बहुत कडवी। अजित सिटपिटा गया था। वह चीख रही थीं, "तू ने क्या नही किया है अब तक ? नागपुर मे तुझे सारी गली महल्ले के लोग जानते थे वहा उस मरे के साथ गुलछर्रे उडाती थी। और यहा आयी तो दस दिन मे ही एक नया यार पैदा कर लिया! उससे जैसे-तैसे जान छुडायी तो फिर यह मरा जोशी "

"धीमे बोलो मिन्नी की मा। आखिर " यह आवाज मास्टरजी की। अजित थमा रह गया था। लडाई हो रही है ? अचानक हल्की-हल्की सिसकिया सुनाई दी थी उसे— ये सिसकिया थी जया मौसी की। राम-राम! अजित ने दुख से भरकर सोचा था—शायद जया मौसी से लड रही हैं बचारी जया मौसी!

"तुम चुप रहो जी! बुढापे मे तुम पर खुद का बदन तो सम्हलता नही है। बच्चो को क्या सम्हालोगे!" चिल्ला पडी थी मास्टरनी बाई।

"पर माया यह सब यह सब ठीक नही लगता।" मास्टर जी कह रहे हैं।

"और यह तुम्हें ठीक लगता है कि दुनिया भर के अडुए भडुए घर मे आयें ?" वह उसी तरह गरजती गयी थी, "वह गुण्डा अगर दोबारा दिखा तो मैं उसकी वह उतारूगी कि सरेआम गली भर से जूते खाता जायेगा अब आये तो सही।"

"तो यही बात तुम शान्ति से भी कह सकती हो।" मास्टर जी ने उसी तरह दबते घुटते स्वर म उत्तर दिया था, "आखिर घर से बाहर तक आवाज जाती है। लोग क्या सोचते होगे ?"

"और लोगो की आखें फूट गयी हैं क्या ? उन्हे दिखता नहीं होगा कि यह कलकिनी किन किनको बुला रही है। कैसे कैसे तेल फुनेल डाले ऐक्टर चले आ रहे हैं घर मे "

"दीदी! तुम बेकार हो " जया मौसी का अकुलाया स्वर आया था, और एक जोर की आवाज हुई।

जीन मे खडा अजित काप उठा था—चाटा! और उस आवाज के

बाद जया मौसी जिस तरह चीखती हुई हिलकिया भर भरकर रो पडी थी उससे जाहिर हो गया था कि चाटा ही मारा गया था उन्हे।

मास्टरनी उसी तरह गरजे गयी, "आ अपने कमरे मे ! अगर एक लब्ज भी तेरी जबान से बाहर आया तो गरदन घोट दूगी ! लुच्ची कही की !"

और फिर सिसकिया गुम गयी। जया मौसी अपने कमरे म घुस गयी शायद। अजित का मन हुआ था लौट पडे। अब नही ठहरा जायेगा। ऊपर जाने की तो हिम्मत ही नही।

"माया, यह तुमने अच्छा नही किया। जवान बहिन पर इस तरह हाथ उठाना ठीक नही है।"

"तुम चुप बैठो। जया मेरी बहिन है मैं उसकी गरदन घोट दू। तुम कौन होते हो पचायत करने वाले।"

'तुम्हारी मरजी पर जरा अक्ल से काम लेना चाहिए।" मास्टर जी भुनभुनाये थे।

"अक्ल ? मुझे अक्ल सिखा रहे हो तुम ? अच्छा ! "मास्टरनी बाई दहाडने लगी थी, "तुम कितने 'अक्लबर हो कभी सोचा है ? अकल होती तो मुझे इस घर मे लाये होते ? इस नरक मे ! "

अच्छा बाबा ! जो तुम्हारी समझ मे आये सो करो।' सहसा मास्टर जी बोले थे, फिर पदचाप उभरी और अजित कुछ सोच पाये इसके पूव ही मास्साब सीढिया म आ गये थे। अजित इतना हडबडा गया था कि मुडने और उतरने की कोशिश म तीन सीढियो से पैर फिसला। लुढकता हुआ अरे रे र धडाम ! गली मे जा पहुचा।

"अर रे रे ! ' मास्टर जी लपके। जल्दी जल्दी अजित को सम्हाला। वह रुआसा हो गया था। कोहनी छिल गयी और माथे म गूमड पड गया। मास्टर जी सहारा देकर उठाने लगे थे उसे। गली से भी एक दो लोग दौड आये। अजित बुरी तरह झेंप गया था। आखें छलछला आयी। मास्टर जी चिल्ला रह थे 'अरे मिन्नी ! जया ! नीचे आओ। य पण्डित जी का लडका लुढक गया सीढियो से फिर अजित को भी झिडक उठे थे 'सम्हाल के नहीं चल सकता ? इत्ती उतावली क्यो करता है—मूख कही का ! '

अजित कमर सम्हालता उठ पडा । सीढिया तक जया मौसी आ गयी

थी। उनके पीछे मिन्नी। सब घबराये हुए। "ज्यादा तो नही लगी ?" जया मौसी ने अपने साथ बीता हुआ सब कुछ भूलकर सवाल किया था।

"नही नही तो।" अजित बुदबुदाया, फिर याद आया—जया मौसी के लिए चूना लाया था वह। झुककर एक ओर जा गिरी पत्ते की पुडिया उठा ली। चूना उसी तरह रखा था उसमे।

"आ !" जया मौसी ने हाथ सम्हाल लिया था उसका। मास्टर जी बडबडाते हुए बाहर जाते समय कह गये थे, "अच्छी तरह देख लो। कही कम्बखत ने हाथ-पैरो की कोई नस न चढा ली हो।" इसके बाद वह गली मे गुम हो गये। अजित की कलाई थामे जया मौसी उसे ऊपर ले आयी थी।

मिन्नी गुस्से मे कह रह थी, "तुझ पर देखकर चलते नही बनता ? हाथ-पैर टूट जाता तो अभी अस्पताल जाना पडता !"

अजित ने कुछ नही कहा था—ऊपर आ पहुचा। जया उसे अपने कमरे मे बिस्तरे पर लिटा गयी। मिन्नी से कहा, "तू यहा बैठ। मैं इसके लिए दूध लाती हू।"

अजित लेटा रहा। छिली कोहनी को सहलाता रहा। मिन्नी उसके माथे का गूमड देखने लगी फिर होले से दबाया, "हुह ! एकदम बच्चा ही है तू !"

अजित सुलग गया। छटाक भर लडकी और दस सेर की बात ! उसे कह रही है, जैसे खुद बहुत बडी बूढी हो। चिढकर बोला, "तो तू नही गिरी होगी क्या कभी ? सब गिरते रहते है।"

"मैं ऐसे नही चलती !"

अजित ने उसका हाथ झटक दिया, "अरे रहने दे ! बडी आयी मुझे बच्चा कहनेवाली !"

"अच्छा !" वह उठी—चेहरा तमतमाया हुआ। बोली, "तो पडा रह।"

"हा हा !" अजित उससे बुरी तरह बौखला गया था। यह लडकी अपने आपको कुछ ज्यदा ही समझती है। मिन्नी बाहर चली गयी। जया मौसी गिलास मे गरम दूध लिये चली आयी, "अरे, मिन्नी कहा गयी ?"

"वह चली गयी।"

"मिन्नी !" उन्होने पुकारा।

"मैं नही आती ! उससे मेरी कुट्टी !" वरामदे से मिन्नी ने फुफकार की तरह जवाब फेंका।

"खैर, उठ, दूध पी ले।" जया मौसी ने कहा था।

"पर मौसी " अजित ने सकोच किया।

"पी भी ले ! इससे चोट मे आराम मिलेगा।"

"मगर मुझे चोट नही लगी। थोडी कोहनी छिल गयी है और बस।"

"अच्छा अच्छा, रहने दे ! अजित के होठो पर गिलास लगा दिया। अजित पी गया दूध। जया मौसी ने एक ओर रखा टावेल उसकी ओर उछाला, गिलास टेवल पर सरका दिया। पूछा, "तू अच्छा भला वरामदे म था—चला कहा गया ?'

"अरे ? ' और अजित को याद आ गया था। तुरत सिरहाने पडी पत्ते की पुडिया उठायी। कहा, "आखो मे बहुत दर्द था ना मौसी, इसलिए मैं पानवाले के यहा से चना लेने गया था "

"चूना ? '

'हा !" अजित ने तपाक से उत्तर दिया था, "मुझे भी कई बार आखो मे बहुत दर्द होता है और मा मेरी कनपटियो पर चूने के गोले बना देती हैं—लो, लगा लो इसे। दर्द बन्द हो जायगा।" अजित ने चूने से एक अगुली भरी और जया की कनपटियो की ओर बढा दी—पर थम गया। उसने देखा कि जया मौसी की आखो से आसू बह आये थे। अजित को ऐसे देख रही थीं, जैसे कभी कभी बहुत प्यार से केशर मा देखती हैं। अचानक उन्होंने अजित को अपनी बाहो मे भरकर उसी दिन की तरह सीने से लगा लिया था वह रो पडी थी। अपनेको बहुत घोटती और दबाती हुई और अजित बुरी तरह सकपकाया हुआ रह गया था।

स्पर्श वही था, वही थीं जया मौसी पर आज—आज अजित को क्योंकर वह मजा नही आ रहा है ? उसने सोचा था—सोचता रहा, सोचता ही रहा—समझ कुछ भी नहीं सका।

बस इतना समझ सका था कि जया मौसी रो रही थीं। अपनी आवाज घोट रही थी फिर भी वह जलतरग की दबी तरगो जैसी बार-बार अजित के कानो से लेकर आत्मा तक बिखरी हुई थी।

"तू तू मेरा कौन है रे ? किस जनम का मेरा है तू ? "जया मौसी उसकी कनपटियो पर कापती हथेलिया फिराये जा रही थी—सिसकियो मे बडबडाती भी जाती।

और वह भौंचक्का सा, हतप्रभ अजित का अपना जी भी तो हो रहा था कि रो पडे। शायद जया मौसी को मास्टरनी बाई ने मारा है। बेचारी की आखा मे दद है, फिर भी मारा है। उफ् कितना कष्ट दे रही हैं उसे ! और अजित भी रो पड़ा था।

अजीब ही थीं जया मौसी। पल मे बदली, पल मे बरसात। उस समय तो अजित ने उन्हे लेकर यही दो रग सोचे देखे थे

पर यह तीसरा रग। दिल्ली के जी०बी० रोड की चन्दावाई का रग—बेशम मुस्कान, कामुक आमन्त्रण देती हुई निगाहें और कई गुना नगे शब्द—' पियेगा? एक दो पैग। अग्रेजी है। ग्राहको के लिए रखनी पडती है ''

छि ! अजित ही क्या, कोई भी नही सोच सकता था कि जया ऐसे मुस्करा सकती हैं, कपडो की नग्नता से कही ज्यादा शब्दो मे नग्न हो सकती हैं ? वही जया जो अजित से उन फोटोग्रापस की बात छिपा गयी थी ? वही जया, जिसने उस दिन रोते हुए अजित को देखकर सहसा अपनी रुलाई थामकर पूछा था "तू तू किसलिए रोता है पगले ? क्या गिरने से चोट ज्यादा लग गयी है ?"

"ऊहु ! " अजित ने कुनमुनाकर कहा था।

"तब ?"

"तुम्हारी आखो मे इतना दद है, उस पर भी मास्टरनी बाई ने तुम्हे मारा !" अजित न अपने आसू पोछते उत्तर दिया था, "तभी तभी तो रो रही हो तुम !"

और कुछ पल के लिए जया मौसी हक्की-बक्की सी होकर अजित को देखती रह गयी थी। उनके आसू पुतलियो पर ही ठहरे रह गये थे। अजित उन्हे देख रहा था। सहसा वह बोली थी, "नही रे। मैं तो किसी और ही कारण से रो पडी हू—बिलकुल अलग बात है।"

"क्या ?"

"यही कि तू मेरा कितना खयाल रखता है।"

"और तुम भी तो मुझे बहुत प्यार करती हो मौसी।" अजित ने उत्तर दिया था, 'मुझे तुम्हारा रोना अच्छा नही लगता।"

"सच ?"

सिर हिलाते हुए अजित ने कहा था, "हा।"

थोडी देर गंभीर, ठहरी निगाहों से देखते रहने के बाद उन्होंने पूछा था, "अच्छा, तू—तू मेरा एक काम करेगा ?"

"क्या ?"

"पहले वादा कर कि करेगा और यह भी कि कभी किसीसे नही कहेगा। मिन्नी से भी नही।"

'हा, नही कहूगा। तुम बोलो।" अजित उत्साहित हो गया था।

'तुझे एक चीज दूगी—एक जगह पहुचानी है। पहुचा आयेगा ?"

"क्या चीज है ?"

"एक कागज।"

"ठीक है—पहुचा आऊगा, पर पहले जगह तो बतलाओ।"

"छाया टाकीज देखी है ना तूने ?' जया मौसी ने पूछा था, "गश्त का चौराहा ?'

' देखा तो है, पर ठीक तरह याद नही।" अजित ने उत्तर दिया था, "फिर भी तुम चिंता मत करो। मैं चला जाऊगा वहा। वहा जाना है, छाया टाकीज मे ?"

"नही। उसके पीछे। पता लिख देती हू तुझे "जया मौसी उठी थी। अपनी टेबल पर जा बैठी "तू बाहर मिन्नी के साथ खेल, तब तक मैं वह चीज और पता देती हू तुझे।"

' मिन्नी से मेरी कुट्टी है।' अजित वही बैठा रहा था।

"अरे नही, ऐसे कुट्टी नही करते। वह अच्छी लडकी है। तुझे प्यार भी बहुत करती है।

"उसने बच्चा कहा था मुझे। कहती है मैं चलना ही नही जानता।" अजित भुन भुनाये गया।

मुस्कराते हुए जया मौसी ने समझाया था, ' इसलिए तो तुझसे गुस्सा

हाती है। देख अजित, जिससे बहुत प्यार होता है ना—गुस्सा भी उसीपर सबसे ज्यादा आता है। जा, मना ले मिन्नी को "

"पर मौसी "

"अरे जा भी ' अजित को बाह से पकडकर जया मौसी ने बरामदे की ओर भेज दिया था। बोली थी, "थोडी देर मे बुलाती हू तुझे !"

आने को बाहर आ गया था अजित—पर मिन्नी से नही बोलेगा। मिन्नी भी नही बोली थी। बरामदे मे वह दस पन्द्रह मिनट तक ऊबता हुआ बैठा रहा। इस ऊबन मे भी बहुत कुछ सोचता रहा था वह । एक बात कुन्दन दरजी की थी—उसने अजित को तीन आने देकर किसीको उस दिन की घटना न बतलाने के लिए कहा था कुछ इसी तरह जया मौसी की भी कोई बात है। कोई चीज अजित को कही पहुचानी है—उसम भी शत कि किसी को बतलाये नही। मिन्नी को भी नही। खैर, मिन्नी से तो बातचीत ही नही होनी। बतलाने का प्रश्न नही। पर एक उलझन आ खडी हुई है। छाया टाकीज जाना होगा। अकेला कभी नही गया उतनी दूर। पर जया मौसी को वायदा दे बैठा है । काम तो करना होगा। कुछ परेशानी होगी, पर कर लेगा। उसने खुद को ढाढम बधाया था।

"अजित !"

अजित उठा। जया मौसी के पास जा पहुचा। उन्होने एक लिफाफा दिया था अजित को। नजरें दरवाजे पर। बोली थी, ' ले। इस पर पूरा पता ठिकाना इस तरह लिख दिया है कि तुझे कोई दिक्कत नही होगी। पर यह याद रखना कि यह लिफाफा उन्ही को मिले—जिनका इस पर नाम है। और और उनकी पहचान यह है कि दायी तरफ के गाल पर एक मस्सा है।"

दायी तरफ का गाल और उस पर मस्सा !

"मस्सा काला होता है ना ?" अजित ने सवाल किया था।

"हा।" वह बोली थी, "लिफाफा जेब मे तो रख।"

जेब मे लिफाफा रखकर अजित मुड गया था । किसी जोशी को देना है। उसका पूरा नाम लिखा है लिफाफे पर गली से आगे निकलकर पढेगा। वह जल्दी-जल्दी सीढिया उतरकर गली पार करने लगा था।

कार्पोरेशन रे एक पेशाबघर मे पहुचकर अजित ने कापते हाथा लिफाफा जेब स निकालकर पता पढा था

सुरेश जोशी वह है नाम। आगे पता।

लिफाफा फिर से जेब मे डाल लिया। कौन है यह सुरेश जोशी ? और इस लिफाफे मे रखे पत्र मे क्या कुछ लिखा हुआ है ? वह आगे बढ चला था।

एक दो जगह तो छाया टाकीज की जानकारी ही करनी पडी, पर वहा पहुचकर लिफाफे वाला पता खोजने में बहुत परशानी नही हुई। अजित जिस दरवाजे पर खडा था, उसपर अगरेजी मे नेम प्लेट भी लगी थी—सुरेश जोशी, एल०टी०सी०, म्युनिसिपल कमेटी।

यह एल०डी०सी० क्या होता है ? शायद यह भी कोई डिग्री होगी, जसे बी०ए० या एम०ए० !

दस्तक दी थी अजित ने।

दरवाजा खुला। अजित का दिल धडका। मालूम नही इस घर मे सुरेश जोशी की मा, पत्नी या बहिन निकल पडे और फिर अजित स ढेर ढेर सवाल कर डाले, "कौन है तू ? क्या चाहता है ? क्या काम है ?" वगैरा वगैरा। और लिफाफे वाली वात किसी को बतलानी नही है। जया मौसी की हिदायत है।

और कही उस सुरेश जोशी का बाप बाहर निकल आया तो ? बडे चक्कर मे उलझा दिया जया मौसी न।

तभी दरवाजा खुला। कुरता पाजामा पहने हुए एक खूबसूरत गोरा भूरा युवक सामने था।

अजित ने एकदम उसके चेहरे पर निगाहें ठहरा दीं—तज निगाहें। सवाल होठो से फूट पडा, "सुरेश जोशी कहा हैं ?'

"मैं ही हू।'

"तुम ही ? ' अजित की निगाह उस पर गडी हुई थी। दाया गाल—गाल पर मस्सा वही होगा सुरेश जोशी। यह पहचान है। कोई कहेगा भी कि वह है तो अजित नही मानेगा। यह पहचान बतला देगी कि हा है और सही आदमी है। सहसा वह मुसकरा पडा था, "हा, बिलकुल तुम ही हो।"

फिर उसन जेब से लिफाफा निकालकर सुरश जोशी की ओर बढा दिया, "लो—जया मौसी ने दिया है।"

सुरेश ने एकदम से लिफाफा लपक लिया, "अच्छा, जया की चिट्ठी है?" फिर वह वही खडे रहकर बिना अजित की परवाह किये, चिट्ठी पढने लगा था। अजित ने पूछा था, "मैं जाऊ?"

"हैं? " वह चौंका—चिट्ठी पढते पढते बहुत गभीर हो गया था वह। बोला, "नही नही। इसका जवाब तो ले जा।"

"पर मौसी ने तो कहा नही था।"

"भूल गयी होगी।" वह बोला, फिर दरवाजे से हटता हुआ कहने लगा, "आ बैठ कमरे म।"

"मुझे जल्दी जाना होगा।"

"अभी—बस, पाच मिनट लगेंगे।"

सुरेश जोशी भी उसके ठीक सामने कुर्सी म धस गया। वह फिर से चिट्ठी पढन लगा था और अजित उस देख रहा था—यह आदमी एक दो बार गली म देखा तो है, पर जया मौसी के पास कभी नही देखा। पर यह है जोशी। अभी बोला था तो अजित को लगा था जैसे यह मराठीवाला आदमी है पण्डित या मराठा। जोशी पण्डित होत हैं या मराठा—यह मालूम नही, पर है मराठीवाला। घर मे जो सामान है, उससे भी पहचान आ रहा है कि मराठीवाला है। दीवार पर लगी फोटो मे एक बूढे के साथ लागवाली औरत खडी दीखती है। ये लागवाली साडी तो मराठी भाषा वाली औरतें ही पहनती है। और तभी अजित की दृष्टि पडी थी एक ओर रखी किसी पत्रिका पर। मराठी की पत्रिका। एकदम मराठी का आदमी। पर इससे जया मौसी का क्या लेना देना? वह हैं कायस्थ। हिन्दी-वाली। फिर ये चिट्ठी पत्री क्या कर रही है जोशी से? सब हौचपौच।

कितनी कितनी बातें तो अजित को परेशान करती रहती हैं? वह सोचने लगा था—मोठे बुआ और बीरन पता नही रुपये-पैसे का क्या चक्कर चला रहे थे? और कुछ इसी तरह सुनहरी सुकुल और सहोद्रा का मामला अब तक अजित के लिए अनसुलझा है। अजित अपने भीतर गहरी तकलीफ और छटपटाहट महसूस करता है। आखिर उसकी समझ म सब

कुछ क्यो नही आता ? क्या उसे बच्चा बना रखा है भगवान ने ? और अगर यही समझ और उम्र दी है—तब अजित के सामने वह सब क्या घट रहा है ?

"सुन ! " सुरेश जोशी ने एक हाथ मे लिफाफा लिये हुए अजित की ओर देखा था, "क्या नाम है तेरा ? '

"अजित—अजित शर्मा। मिडिल म पढता हू।" अजित ने अपनी ओर से काफी आगे तक जानकारी दे दी थी। क्या फायदा कि आगे कुरेद कुरेदकर पूछेगा। अजित को मालूम है कि जो कोई उससे नाम पूछता है, उसका अगला सवाल कक्षा होता है ?

'यह ले।" उसन लिफाफा अजित की अगुलियो म पकडाते हुए कहा था, "अपनी जया मौसी को दे देना।

अजित तुरत उठ खडा हुआ। मुडा और बाहर निकल गया। ऐसा नही है कि वह शिष्टाचार नही जानता। उसे मालूम है कि बडो को नमस्कार करना चाहिए, पर जाने क्यो अजित का मन सुरेश जोशी को नमस्कार करने का नही हुआ। क्यो होना चाहिए भला ? इससे अजित का लेना देना क्या है ? सिफ यही तो कि जया मौसी की इससे दोस्ती लगती है। और जया मौसी की किसीसे दोस्ती हो, इसका मतलब यह तो है नही कि अजित उस दोस्त को भी मानने लगे। दिल से आदमी बडा माना जाना चाहिए।

वह जल्दी जल्दी फुटपाथ पर कदम बढाये जा रहा था। रास्ते म छाया टाकीज पर अनजाने ही ठिठक गया था। फिल्म चल रही है—'महल। कहते हैं कि 'महल' की कहानी कुछ इस तरह की है कि इसे कई कई बार देख बिना फिल्म समझ में नही आती। यह बात सच है—समथन अजित के चचेरे भाई रघुनाथ ने किया था। बहुत बडे ह उमर म। सब समझने लायक बडे है। पर कहानी नही समझे। अजित खुश भी हुआ। यह सोचकर कि यह भगवान भी खूब चक्करवाला है। एसे एसे मामले, उम्र, इसान और घटनाए बनाता है कि कभी कभी बडे भी कई बातो को बच्चा की तरह देखते ही रह जाते हैं—समझ म नही आती। अजित को साचकर खुशी हुई थी। यह 'महल' जिसने भी बनायी होगी—खूब बनायी होगी। बडा को खूब सबक मिला होगा।

उसने गली तक जाते आते वहुत कुछ सोचा था। बीच-बीच में अपने-आपको डाटता भी था—भला क्योकर उन बातो से सिर लडाता रहता है, जो समझ न आयें ? इस सुरेश जोशी को एक दो बार देखा है। एक दो बार नही तो कम से कम एक बार जरूर देखा है, पर कहा ? वह याद करता जा रहा था।

तरगें सी उठ रही हैं माथे मे—कहा ?

सहसा अजित को वडी शान्ति मिली। याद आ गया था। गली वली मे नही—*अभी, आज ही इससे मिलने के पहले उसे देखा था अजित ने।* जया मौसी ने जिन जवानो के फोटो उससे छीनकर बक्से मे बन्द कर लिये थे—उनमे एक फोटो इसका भी तो था।

क्यो होना चाहिए, क्या मेल इसका उनका ? न जात, न बिरादरी, न रिश्ता, न नाता—पर जया मौसी ने इस सुरेश जोशी की फोटो सम्हालकर अपने बक्से में रख रखी है यही क्यो—तीन फोटो और भी तो ह। वे भी कुछ इसी तरह के गरमागरम लडके दीखते हैं।

जेब मे रखा सुरेश जोशी वाला लिफाफा अनायास ही अजित की जाघ पर गडने लगा है

बिना रिश्ते-नातेवाले की फोटो कभी किसीके घर में होती है ? अजित ने सोचा—बिलकुल नही। उसकी अपनी बहिन है—कमला। उनके बक्स मे ढेर-ढेर फोटो रहते ह। उसके अपने, जीजा जी के, फिर कमला जीजी के सास-ससुर, जेठ जेठानी, ननद-ननदोई—कितने ही रिश्ते नातेवालो के। एक भी फालतू फोटो नही है उनके पास

पर जया मौसी के पास फालतू फोटो हैं। यही सुरश जोशी जैसे लडके। जात कुजात, नाता रिश्ता—कुछ नही और फोटो लिफाफे मे। लिफाफा और बडे लिफाफे मे और फिर वडा लिफाफा बक्से मे। बक्स में ताला। कितने सम्हालकर रख छोडे हैं। क्यो ?

गली म आ गया है अजित पूछना होगा उनसे—क्या रखती हैं ये फोटो ?

य जात कुजात, बिना रिश्ते-नाते की दोस्ती क्या करती हैं जया मौसी। यह समझने म बहुत माथा-पच्ची नही करनी पडी थी अजित को। याद

आया था। सीढियो म खडा हुआ, जब जया मौसी से मायादेवी की लडाई सुन रहा था तब की बात याद है उसे, " तेल फुलेल डाल कसे-कसे एक्टर चले आ रहे है घर मे? वह गुडा अगर दोबारा दिखा तो मैं उसकी वह इज्जत उतारूगी कि सरे आम जूते खाता सा जायेगा। आये तो सही। '

इसका मतलब कि सुरेश जोशी गुडा है। यही है तेल फुलेलवाला एक्टर। अजित के जबडे भिच गये थे। जया मौसी पर क्रोध आने लगा। ऐसा क्या करती हैं? जिस काम के लिए बडे बूढे नाही कर—वह नही करना चाहिए। अजित जानता है। पर जया मौसी वही करती हैं। इसीलिए चाटा पडा था उनमे।

ठीक हुआ। अजित ने सोचा, वह सीढिया चढ रहा था। जया मौसी को सुरेश जोशी का पत्र दे देगा और कह भी देगा कि आज के बाद फिर कभी अजित को चिट्ठी पत्री पहुचान के लिए न कहे। अजित भला मास्साब के घर मे और उनकी मरजी के खिलाफ काम करेगा? बिलकुल नही!

वह जया मौसी के कमर मे था। उसे देखत ही वह उसके पास चली आयी थी, ' दे आया रे?"

"हा।' अजित ने गुस्से से कहा था, फिर झटके के साथ जोशी का पत्र जेब से निकालकर थमा दिया था, "लो। ' और उसने देखा—लगभग सुरेश जोशी की ही तरह उन्हान भी अजित के हाथ से पत्र लेन के बजाय छीन लिया था। बडबडाते हुए— 'पत्र दिया है? ' उनकी आखे खुशी से चमक रही थी।

अजित के नथुन चढ गये थे—यह मौसी तो बडी खराब है। वह मुडा था, "मैं जाता हू और कहे देता हू कि आगे कभी मुझसे यह सब करन के लिए मत कहना!"

"अरे, सुन तो!" चींक्कर बोली थी जया मौसी।

पर अजित ने सुनकर भी नही सुना। जल्दी-जल्दी सीढिया उतरकर घर की ओर चल पडा। फौरन लौटना होगा। गली म उसने बच्चा को पुस्तकें लिए हुए मास्साब के घर की ओर जात देखा था।

उस शाम पढने गया तो न जया मौसी से बात की, न मिन्नी से। एक 'कुट्टी' कर चुकी है—दूसरी से बात न करना अजित ने ही तय किया है। अजीत जानता है—बात करने की कोशिश दोनो न ही की थी। मिन्नी बार-बार उसे देखती है, फिर जैसे जानबूझकर पूछती है—चीखती हुई, "फ्रास के किस नम्बर के लुई का सिर काटा गया था ?"

भीतर से मास्साब का जवाब फिकता है, "अजित से पूछना, उसके पास सारे नोट्स हैं।'

मिन्नी अजित को देखती। अजीत हिस्ट्री के नोट्स की कापी उठाकर मिन्नी की ओर बढा देता। यह अजित का नि शब्द उत्तर। इसने तो सिर्फ 'कुट्टी शब्द ही कहा था, पर अजित तो इससे सचमुच कुट्टी करके समझा देगा कि वह अपने आपको ज्यादा न समझा करे। अजित भी कोई ऐरा गैरा नही है।

और इसी तरह कुछ समझाया था जया मौसी को। दिल ही दिल मे खुश भी हुआ था—अब खुशामद कर रही हैं ? पहले अजित के भोलेपन से फायदा उठाकर उससे गलत काम करवा लिया। उस कुजात आदमी को प्राइवेट चिट्ठी भिजवा दी।

एक बार जया मौसी ने आकर चाय का प्याला उसके सामने रखा तो अजित ने भुनभुनाकर सिर हिला दिया था, "नही, मैं नही पियूगा ?"

"गुस्सा है मुझसे ?" वह स्नेहिल स्वर मे बोली थी। पर अजित जानता है। आवाज मीठी है इसलिए तो किसी भी भोले भाले लडके को धोखा दे लेती हैं। गलत काम करवा लेती हैं उससे। अब अजित किसी चरके मे आने वाला नही। बोला, "तुमसे क्यो गुस्सा होऊगा भला ? तुम मेरी लगती ही कौन हो ?"

"मैं कुछ नही लगती ? एक बार दोबारा तो कहना ?" एकदम आहत होकर कहा था उन्होने। अजित ने देखा था कि चेहरा बुझ गया था जया मौसी का, फिर बोली थी, " पी ले।"

"नही।"

"तुझे मेरी कसम।"

अजित को हल्का सा धक्का लगा—कसम! कसम तो मानना

होगी। न मानने पर कसम खिलाने वाला मर जाता है। अजित गुस्सा जरूर है जया मौसी से पर उनका मर जाना नहीं चाहता। राम राम ! एक गहरी सास लेकर पीने लगा था चाय।

कुढकर मिन्नी बोल पडी थी, "उह ! नखरे करता है फालतू म। मन मे तो खुद ही चाय पीने की लगी होगी !"

"क्या कहा ? लगभग बिगड पडा था अजित, "मैं कोई भिखारी हू !" उसने प्याला धरती पर रख दिया था।

'तो मैं हू भिखारिन ?'

"नही-नही तुम तो बडे आदमी की बेटी हो ! तुम्हारे पिता जी हर किसीको पाच रुपया महीने के भाव से जो पढाते हैं पर याद रखो। मैं भी कोई फोकट नही पढता। पूरे पाच रुपये देता हू। हा !"

तेज आवाज सुनकर जया मौसी बाहर आ गयी थी। उनके तने चेहरो पर एकदम बरस पडी, 'खामोश रहो ! जब देखती हू, तब तुम लडते रहते हो !'

मैं लड रहा हू ?" अजित रुआसा होकर बोला था, "इसने ही मुझे पहले भिखारी कहा था !"

'अच्छा अच्छा चुप ! अभी जीजाजी आ जायेंगे और दोनो के कान तोडेंगे। चुपचाप पढो।' जया मौसी भीतर चली गयी थी।

उसके बाद चुपचाप पढकर ही बोझिल मन से अजित लौट पडा था घर। ये लोग तो उसे दबाते हैं। उनके घर पढने जाना पडता है अजित को। इसलिए उसे दबा लेते हैं अजित को गहरा मलाल था। मन ढीला-ढीला हो गया

सास गहरी होने लगी है । गली मुहल्ले के गिने चुने घरो म बिजली की बत्ती है—बाकी के यहा अब भी लालटेन ही जलती है। कुछ कुछ तो मीठे तेल का दिया जलाते हैं । सारी दीवार काली हो जाती है। सरकारी बिजली के खम्भो पर बल्ब लगे रहते हैं कुछ खम्भो पर अधेरा। या तो बिजली खराब, या फिर शरारती लडके—खास तौर से—"
पत्थर मारकर बल्ब फोड देते हैं। के" अजित भागा
एक बिजली के खम्भे का इराक् रहा है

शभू नाई के मकान के पास मुडता है, वैसे ही आवाज आती है, "लाला ! ऐय अजित लाला !"

अजित देखता है—शभू की घरवाली रेशमा ! क्लदारो जैसी चमक वाला चेहरा। वाह वाह ! जब जब रेशमा इस घर के दरवाजे पर दीखती है, अजीत का मन खुश हो जाता है। वह सारी कडवाहट पलक मारते घुल जाती है, जो शभू को देख-देखकर मन मे आते आते भरती जाती है। अजित पूछता है, "क्या भाभी ?"

रेशमा के मोतिया जैसे दात लालटेन की हल्की रोशनी मे भी चमक उठते हैं। गोरा, सुनहरा रग सफेद, उजली साडी। दो अगुलियो मे निगाहो से अठखेनिया करता पल्लू। फुसफुसाकर कहती है, "कल हमारे यहा खाना खा लोगे ना ? नहा धोकर बनाऊगी। "

'क्यो ?"

'मैंने अम्माजी से कह दिया है।" रेशमा जवाब देती है, "कल हमारे यहा श्राद है।"

"पर पर भाभी लोग कहते हैं—श्रादो मे गप गप् खा वाले पण्डित हल्की किसम के पण्डित होते हैं। और तुम्हे तो मालूम ही है कि मै वैसा पण्डित नही हू।' अजित जरा रोबीले स्वर मे उत्तर देता है।

"हा हा, होते होगे—पर तुम्हारी बात उनस अलग है।'

"वह क्यो ?"

"इसलिए कि तुम न तो भारी पण्डित हो, न हल्के। तुम तो अभी बच्चे हो!"

अजित बुरी तरह आहत हो उठता है—बच्चा ! बच्चा ! बच्चा ! क्योकर लोग बार बार उसका अपमान करते हैं ? जवाब न देकर वह चल पडता है।

"लाला ! ऐय् लाला ! "

अजित का मन और खराब हो गया है। पता नही किसका मुह देखा था सुबह सवेरे ? सारा दिन अपमान ही अपमान, झगडा ही झगडा हुह ! वह झुझलाता हुआ चला जा रहा है।

किसका मुह ? याद करने लगता है और याद आता है—चदन

सहाय ! पर केशर मा कहती हैं—अच्छा आदमी है। जबकि सारा महल्ला उसे कोसता है। मरा चार ! मुशी ! कचहरी मे मालखाने का इचाज है वह। जब कोट म कोई चोर डकत पेश होता है तो च दनसहाय उस माल को जज के सामने बतलाता है, जो चोर ने चुराया था। बतलान वाले बत लाते हैं कि इस तरह के मुलजिम चोरी का माल पुलिस से मिलकर डकार लेते है—वही आधा साझा। कुछ-कुछ वैसा ही जैसा बीरन भटनागर और मोठे बुआ मे हो रहा था—चार तेर तीन मेरे। या तीन तरे, चार मेरे !

इसका मतलब तो यह हुआ कि च दनसहाय चोरो से भी बडा चोर है। अजित साचता है। तब केशर मा उस धमात्मा क्यो कहती ह ? क्या जोर जोर से रामायण पढन और आरती करने भर से आदमी की चोरी खतम हो सकती है ? नही हो सकती ! उस दिन इसी च दनसहाय को लेकर छोटे बुआ से बहस हो गयी थी। बोला था, यह बदमाश है स्साला ! '

च दनसहाय जार जोर से चीख रहा था सुबह का वक्त। अजित और छाटे बुआ इम्तिहान देने जान वाले थे । वक्त से पहले आ पहुचा था छाटे बुआ।

'कौन ?' अजित ने पूछा था।

"यही स्साला कायस्थ मुशी ! ' छाटे बुआ ने नफरत से कहा था।

वह क्यो ?

"देखते नही कितनी जोर जोर से चिल्ला रहा है '

"अरे यह तो अच्छी बात है—रामयण पढ रहा है। सुबह सुबह भगवान का नाम ले रहा है। मा कहती ह—राम नाम से सब पाप नष्ट हो जाते है।"

"इसीलिए तो इतनी जोर से चिल्लाता है ना। ' छोटे बुआ ने ठुन ठुना कर कहा था, ' न ल तो यह जो मालखाने से चोरा का माल चोरी करता है वह कसे पचेगा ? अरे यह पाजी ता सग बाप का जूता चुरा ले !

"नही-नही छोटे बुआ ! क्या बकता है यार !"

"अच्छा छोड ! इस पापी का जिकर। इम्तिहान देना है। ' छाटे बुआ ने बात खतम कर दी थी।

इसका मतलब है कि च दनसहाय, चोरा का चोर ! और मा कहती

हैं—महाधर्मात्मा ! क्या है सही ? परखना समझना होगा। खुद फैसला किये बिना कोई नतीजा निकालना गलत और तब मे अब तक चदन सहाय की हर हरकत बडी बारीकी से देखता है अजित इसी देखने के चक्कर मे सुबह उसका मुह देख बैठा। और नतीजा है यह दिन-भर की उखाड पछाड ! यह पापी ही लगता है।

अजित घर की बैठक मे आ गया। रोज की तरह सुनहरी केशर मा के पास। अजित को देखते ही सुनहरी कुछ अजब सी निगाहो से उसे देखने लगी। अजित ने भी देखा—होठो पर हल्की सी मुस्कान, निगाहो म पनीला-सा रग अजित कुछ समझ नही सका। पर इतना समझ म आया कि इस तरह देखना, दबी मुस्कान मे मुस्कराना अजित को अच्छा लगा—हल्की सी गुदगुदी देता हुआ। बेहद आनदमय ! ऐसा क्यो होना चाहिए ?

मालूम नही। वह खाना खान बैठ गया था। केशर मा अक्सर शाम का खाना देन के लिए नही उठती। सुनहरी ही परोसती है। केशर मा छज्जे पर बैठी रहती है और सुनहरी अजित को देखते ही उठ पडती है। कहती है, "आ। तुझे खाना परोस द।" फिर रसोई की ओर बढ जाती है। किसी दिन अजित रसोई मे खाता है, किसी दिन इसी बैठक मे थाली ले आता है।

सुनहरी ने थाली परोसी तब भी वह उसी तरह कनखियो से मुस्करा रही थी। अजित रसोई मे ही बैठ गया।

थाली अजित के सामने बढाते हुए सुनहरी ने दबे स्वर में कहा था, "क्या रे, तू बडा बदमाश है !"

"क्यो—मैंने क्या बदमाशी की ?" कुछ भुनभुनाकर अजित ने पूछ लिया था। फिर अपने ही भीतर सहम भी गया—कही कुछ गडबड तो नही हुई ? रात की बात

"रात को त क्या कर रहा था ?" सुनहरी और भी धीमे बोली। निगाह और मुस्कान वैसी ही गुदगुदाती हुई।

अजित ने घबडाकर कहा, "क्या ? मैं क्या कर रहा था ?"

"तुझे पता नही ?" सुनहरी की निगाह और पनीली हो आयी।

"म्मु मुझे ? मुझे क्या पता ?"

"देख—अभी छोटा है तू।" सुनहरी ने नजरें झुकाकर कहा, फिर एक गहरी सास ली।

"छोटा हू तो क्या हुआ ?"

"अच्छा!" सुनहरी बोली, "तुझे मालूम है कि इससे क्या होता है ?" वह अजित की ओर देखकर भी ठीक तरह देख नहीं पा रही थी।

"क्या होता है—किससे ?" अजित को रस आया था। सुनहरी बातें भी खूब करती है। उसके साथ एक चादर में होना तो दूर बातों में ही मजा आ रहा है!

"अच्छा-अच्छा। तू रोटी खा!" कहकर सुनहरी उठ पड़ी थी। फिर भागती हुई सी कहे गयी थी, "मैं बुआ के पास हू। सब कुछ रखा ही है। जो जरूरत हो उठा लेना।"

और अजित कुछ नहीं बोल सका। वह जा चुकी थी तो, इसका मतलब है कि सुनहरी समझ गयी कि अजित कुछ कर रहा है पर यह 'कुछ' अजित को अच्छा लगता है। कहती है कि तू अभी छोटा है। तो बड़ा हो जाने पर यह सब कुछ ठीक हो जायगा? अजीब बात है! अजित मन ही मन कुछ भुनभुना उठा था—कितनी गड़बड़झाला है यह सब। कुछ है जो छोटा होने पर अच्छा नहीं होता और कुछ ऐसा है जो बड़ा होने पर फौरन अच्छा हो जाता है। यानी ठीक। ठीक यानी सही। कभी झूठ, कभी सही!

हूह! माथा झटक दिया अजित ने। बेकार की बात सोचने से लाभ? उसे तो सिर्फ यही सोचना है कि सुनहरी आज भी शायद उसके साथ आ जाये! अगर आ गयी तो अजित उठ खड़ा हुआ। जल्दी जल्दी हाथ मुह धोकर बैठक में आ गया।

छज्जे पर दोनों आमने सामने बैठी थी। बेशर मा के सामने तम्बाकू का डिब्बा। तम्बाकू मलती हुई बोली थी, "बिछा ले अपना बिस्तर और लेट रह!"

अजित ने उत्तर नहीं दिया। चुपचाप बिस्तर बिछाये लेट गया। फिर कान श्रीपाल ड्राइवर के घर में आते सिनेमा के गीत की ओर लगा दिये। अजित को बहुत पसन्द है। श्रीपाल के यहा रेडियो है। खूब बजाता

है। शौकीन आदमी है। रोज शराब पीता है, रेडियो सुनता है। कभी-कभी जोर जोर से बजाने लगता है तो अजित सुन पाता है। अजित को अच्छे लगते हैं। पर सौ रुपये मे आता है रेडियो। अगर अजित के पिता होते तो शायद अजित के यहा भी होता। होने को तो अब भी हो जाये, पर केशर मा कहती है, "गुजर बसर से चलना होगा। अजित पढ लिख जायेगा तो सब सम्हल जायेगा। वह सब, जो अजित के पिता के जीवित न होने से बिगड गया है।"

अजित ने चादर माथे तक खीचकर रेडियो के गीत पर कान जड दिये है

" आयेगा, आयेगा आयेगा आनेवाला आयेगा! आयेगा!"

दीपक बगैर कैसे परवाने जल रहे हैं

कोई नहीं चलाता और तीर चल रहे हैं

आयेगा आयेगा अ

"सिरीपाल ने दुनिया देखी है बुआ। ऐसी जाने कित्ती राडो को खखोल कर खा चुका है यह सहोद्रा तो है काहे मे!" सुनहरी बडबडाती है

गीत अब भी चल रहा है, पर अजित नही सुन पाता है। वह सुन रहा है—श्रीपाल ड्राइवर और सहोद्रा को लेकर कही गयी सुनहरी की बात। सहोद्रा ने श्रीपाल ड्राइवर के मकान मे ही तो दो कमरे किराये पर ले लिये है—आठ रुपया महीना। पति रामप्रसाद स्टेशन के पास सडक पर पान की दुकान खोलकर बैठ गया है। कहते है, बिलकुल जगत है पर दाल-रोटी के लायक कमा ही लता है। आगे कभी जगह आबाद हुई तो दुकान खूब चलेगी। जब खूब चलेगी तो सहोद्रा भी खूब ठाठ करेगी। वैसे ही जैसे सुकुल के घर रहकर करती थी

मगर 'सिरीपाल' के दुनिया को देखने और राडा को खखोलने से सहोद्रा का क्या मतलब? अजित चक्कर में पड गया है।

"अब कहते है इस मरे सिरीपाल पर चक्कर चला दिया है!" सुनहरी बुदबुदाती है।

"तुझसे किसने कहा?" केशर मा तम्बाकू की फकी लेती हैं—कडवा-

हट समूचे मुह पर उतर आती है।

"सारा महल्ला कह रहा है और तुम्ह मालूम है—बदना की घर वाली तो माथा पीट रही है "

"वदना की घरवाली ? अगर सिरीपाल और सहोद्रा कुछ खिचडी पका भी रहे है—तो वदना की लुगाई को क्या करना ?" केशर मा का तक।

"क्यो, करना क्या नही है ? जिसका घर उजडेगा, वह हाय हाय नही मचायेगी ? ' सुनहरी एकदम से जवाब देनी है, "वदना अकेला वेटा है सिरीपाल का। जब इस बुढौती मे आके सिरीपाल दोना हाथो से लुच्ची लफगियो पर पैसा उलीचेगा तो वचारी वह नही उबलेगी ? "

"पर अभी ऐसा क्या हो गया ?"

हुआ कैसे नही ? गोदावरी अम्मा की खिडकी के ठीक सामने वाली खिडकी है सिरीपाल की। वही तो बैठा रहता है और यह मरी सहोद्रा रोज रात, खाते वखत उसके सामने जा बठती है। वह दारू पी जायेगा, यह परोसेगी। रोटी ले लो, दाल ले लो, अचार ले लो, पापड—अरे मरी कुतिया ! मैं तो बच गयी बुआ, नही तो इसी महल्ले मे कटोरी ले के भीख मागनी पडती ! '

' पर सिरीपाल तो मास मच्छी खाता है। उसके सामने भला सहोद्रा कैसे बठ सकती है। यह बाम्हन की बेटी "

' और गोदावरी अम्मा ने जो आख से देखा यह, सो क्या झूठ है !"

"क्या देखा ? '

"यही कि सिरीपाल दारू पीता जाता है और सहोद्रा उसे रोटी परोसती है।"

"राम राम ! बहुत भ्रष्ट हुई यह औरत !'

"अब दारू वारू और मास मच्छी तो छोटी चीज है बुआ। जिस आदमी के वदन से ही झूल गयी फिर उसके खान पान से काहे का परहेज ?"

"अरे ना-ना ! '

"सच कहती हू और देखना किसी दिन बदना की घरवाली ने इसे चुटिया पकडकर इसी गली मे न ला पटका तो कहना ! यह सहोद्रा औरत

नही है, पटार है—पटार ! जिस मरद से चिपकेगी उसके घरधार, बाल बच्चो को चूसकर पी जायेगी !"

"ऐसा नहीं कहना चाहिए सुनहरी—आखो देखी बात सच, कान सुनी झूठ ! "

"तब किसी दिन आखो से ही देख लेना फिर कहना कि सुनहरी सच कहती थी । मैं तो राम जी से यही दुआ मनाती हू कि भगवान, तेरी बडी किरपा । मुझे इस मगरमच्छी से छुटकारा दिया !"

"और यह गोदावरी डुकरिया दूसरो के खिडकी दरवाजे झाकती घूमती है, अपने भीतर क्या नही देखती । वह धीगरिया सी बहू खुल्लमखुल्ला पुराणिक को लेकर घर मे घुस जाती है—भर दोपहरी सो ?" केशर मा चिढ गयी हैं । जब जब किसी बात पर चिढ जाती हैं, इसी तरह बोलने लगती हैं और अजित को मालूम है कि फिर सुनहरी यहा वहा की बातें प्रारभ करती है । महल्ले से दूर, नाते रिश्तेदारी, ब्याह शादी की ।

यही होने लगा था । उस सबम अजित को मजा नही आता । ध्यान देना बन्द करके सोचने लगा—ये सहोद्रा ऐसा क्या करती है कि दूसरे के घर मे गडबड हो जाये ? और जैसा कि सुनहरी द्वारा दी गयी खबर है—श्रीपालसिंह डायवर को मास मच्छी खिलाना, उसके दारू पीते वक्त उसके सामने बैठना—यह सब तो बुरी बातें है । इसमे जरा सन्देह नही । मगर विश्वास नही होता किसी दिन खुद ही अजित को माले की तरह टटोलनी होगी ।

अचानक फिर याद हो आया है अजित को—क्या सुनहरी लेटेगी नही ? और लेट गयी तो तो क्या अजित उस तरह मजा ले सकेगा ? सुनहरी समझ गयी है । अगर आज अजित ने कुछ शरारत की तो कही केशर मा से न कह बैठे ? पर नही । लगता नही है कि ऐसा करेगी । और अजित के सामने सुनहरी की व पनीली निगाहें, नशा उलीचती हुई मुस्कान, ठेढ़ा होठ सब उभरने लगे हैं । निश्चित ही सुनहरी ऐसा कुछ नही करेगी । बेकार ही डरता है अजित । शायद उसीकी तरह सुनहरी भी इस सबमें कम मजा नही लेती है

कह रही थी, अभी अजित छोटा है

हुह। होने दो ! मजा तो सभी का है। छोटा क्या, बड़ा क्या ? अजित करवट बदलता है।

केशर मा उठ पड़ी हैं, "हे राम ! " उठकर अपने बिस्तरे में समा जाती हैं। बुदबुदाती हुई, "यह कमर तो बस "

"लाओ, मैं दबा देती हू बुआ।" और सुनहरी उठकर उनके पलग पर जा बैठी है। होले होले केशर मा की कमर दबाने लगती है।

केशर मा सुनहरी के पजो के दबाव के साथ-साथ होले होले कराहती हुई कहती हैं, "अब तू जमना को समझा। कुछ काबू म कर उसे।"

'मैं क्या करू, ऐसी आदतें बिगडी हैं कि बस " सुनहरी चिडचिडाने लगी है, "रोज सनीमा, रोज भाग दुकान की इतती उधारी फैलाली है कि अब वसूली कठिन फिर कित्ता कमाओ उत्ता खरचा। और कमाई मे स आधा इनके नसे पत्ते और सनीमावाजी म घुल जाता है ! '

'बाप के जमाने से आदत पडी है उसे। अकेला बेटा था। बाप ने ध्यान नही किया। फिर मामा का राज आया। बेचारा रामप्रसाद दिन दिन भर दुकान पर लटका रहता था और जमना उसी अलमस्ती मे मस्त रही सही कसर पूरी कर दी सहोद्रा ने अब सुधरते-सुधरते ही सुधरेंगी आदतें।"

"बुआ, इसलिए तो यह मकान काबू किया है। अगर ये नहीं मानें तो अच्छी तरिया मनवाऊगी अगर यह मकान इनके हाथ रहा होता तो इसे भी सिनेमा और भाग गाजे मे स्वाहा कर देते। '

"हा सो तो ठीक ही हुआ। ' केशर मा का जवाब, "बस, अब रहने दे।' सुनहरी पर दबाना बन्द कर देती है।

'लेट ले, पता नही कब आये जमना। जब आयेगा तब जगा दूगी।"

अब आयी अजित सोचता है—भीतर हसी का एक पूरा बागीचा ही महक आया है।

पर सुनहरी नही लेटती। उसी तरह बैठी रहती है। अजित चादर से मुह खोलकर उसका चेहरा देखता है। वह भी अजित की ओर ही देख रही है—निगाहा मे वही पनीलापन होठ मुस्कान मे तिरछे अजित फौरन पलकें झपक लेता है। इसी तरह रहना होगा।

सुनहरी केशर मा के पास से हटकर उसके पलग पर बैठ जाती है। अजित खुश। बदन एक चहक से भर उठता है। उसके अनस्पश के बावजूद नसो मे तनाव। जी होता है, एक बाह से सुनहरी की कमर पर धक्का दे—ताकि लेट जाये वह। चादरा ऊपर। अगर उसीके ऊपर आ गिरी तब? पिचक जायेगा। सुनहरी थोडी भारी है। मोठे बुआ एक दिन उसे लेकर बोला था—गद्दर है। यह गद्दर क्या होता है?

पर नही, ऐसा नही कर सकता। अजित। बडी लाचारी। वह छोटा जो है। सुनहरी साफ साफ तो कह चुकी है।

केशर मा बुदबुदाती हैं, "अब सब तेरे बस मे है सुनहरी। बखत रहते जमना को सम्भाल, नही ता दोनो लोक बिगड जायेंगे तेरे फिर किसी दिन गोद भी भरनी है—और जब औरत बाल-बच्चे वाली हो तो बधकर रह जाती है। लाचार। ये चिन्नी मिन्नी सास ही नही लेने देते। घरवाले पर नजर क्या रख पायेगी?"

और अजित अचानक देखता है कि सुनहरी का चेहरा बुझ गया है क्यो?

क्या डर गयी है सुनहरी?

सुनहरी एक गहरी सास खीचकर लेट रहती है—अजित सब कुछ भूल जाता है।

"क्यो बे पण्डित, कल सिनमा गया था तू?" मोठे बुआ स्कूल के बाहर चाट खा रहा था। रेसिस की बात।

"नही।"

"तब छाया टाकीज के पास क्या कर रहा था तू?"

"कुछ नही।"

"वहा गया क्यो था?"

"एक काम था।"

"क्या काम?"

"हर कोई अपना काम करता है—किसीको बतलाना जरूरी है क्या?"

"पर पण्डित, अपुन को तो बतला दे यार। हम तो तेरे दोस्त हैं।"

मोठे बुआ कुछ सहम गया था अजित के अक्डे हुए जवाब सुनकर। अजित पर दादागिरी नही वतला सकता। वह भी जानता है, और अजित भी। अजित सीधा घर जाकर सरदार मराठे और मराठिन बाई से कह सकता है। फिर मोठे बुआ की वह पिटाई होगी कि सूजन के मारे मोटापा दोहरा हो जायेगा।

"बतला सकता हू, पर एक शत है।"

"क्या ?

"तुम्हें पहले बतलाना होगा कि बीरन से तीन और चार का क्या हिसाब कर रहे थे ?"

मोठे बुआ की रौनक उड गयी।

"और यह भी बतलाना होगा कि किस भगौनी को लेकर बातें चल रही थीं।" अजित के स्वर मे अक्ड बढ गयी थी।

मोठे बुआ परेशान हो गया, बोला, "अबे जा, शतबाजी करता है मेरे से !" वह जाने लगा। ठेलेवाले ने रोक दिया, "ऐय् छोकरे, पसे दे जा !'

माठे बुआ मुडा—एक वही क्यो सब मुडे। सब चौंके हुए। मोठे बुआ से पैसे माग रहा है ? ध्यान से देखा—नया ठेलेवाला है। शायद पहली वार स्कूल के फाटक पर आया है। अजित भी समझ चुका था कि मोठे बुआ के इस तरह मुडने का क्या मतलब होता है। मोठे बुआ ठेले के पास पहुच गया था 'पैसे चाहिए तुझे—क्यो ?'

"हा, दो आने।

'ले, वटा। ' कहते हुए मोठे बुआ ने ठेले मे इस जोर का दोहत्थड मारा कि मूढे से पूरा चाट का थाल उडकर दूर जा गिरा—सडक पर। दुकानदार चीखा और माठे बुआ उसपर टूट पडा। गालिया, गालिया और गालिया बच्चे भाग खडे हुए। मोठे बुआ न अधाधुध घूसे, लातें उस चाटवाले को जडे। पीट पीटकर लहूलुहान कर डाला और फिर खुद जो भागा तो यह जा, वह जा। लोग देखते ही रह गये थे।

बच्चे सहमे हुए थे। इधर उधर के मूगफली और पानवाले चाट के उस दुकानदार को सडक से उठा रह थे। बडबडाते हुए "वह इस स्कूल का दादा है यार। तुझे उससे पैसे नही मागने थे। यहा फाटक पर जो भी

ठेला लगायेगा, उसका माल वह इसी तरह खायेगा। "

"हरामी, स्साला। उसकी तो "दुकानदार बडबडाता जा रहा था।

पीरियड फ्री थे। एक तरह से छुट्टी। अजित मन ही मन मोठे बुआ के प्रति घृणा से भरा हुआ घर की ओर चल पडा था। याद आया—उसे शभू के यहा खाना खाना है। घर पहुचकर बहुत इनकार किया था केशर मा से, पर बोली, "नही, जा कह रही हू, वही कर। बेचारी रेशमा हमे इत्ता मानती है और तू है कि नखरे बतला रहा है।"

अब जाना होगा। और जा पहुचा था। कुछ सहम और सकोच के साथ अजित कमरे मे समाया था फिर उतनी ही सहम और सकोच के साथ वह क्रमश मकान का निचला हिस्सा, दरोदीवारें, फश देखने लगा था। शभू नाई की खासी नही सुनाई पड रही है? शायद कही गया होगा पर शभू तो कही आता जाता नही है? जाता था सिफ अजित के पिता की हजामत करने

मगर भूल गया अजित। काका तो जिन्दा ह। शभू उस घर मे भी हजामत करने जाता है। शेष सभीको उसीके पास हजामत करवाने आना पडता है। बडे-बडो को। और जरूर वही गया होगा शभू

इस पूरे मकान मे भीतर-बाहर दीवारें खाली खाली दीखती है। लगता है कि पत्थर दर-पत्थर उठाकर उन्हे खडा कर दिया गया है। गली का सबसे पुराना मकान जो ठहरा कभी कभी अजित को हैरत होती है—बिना दीवार के ऊपरी सतह या पलस्तर के मकान बन कैसे गया? बन भी गया तो खडा कैसे है और और बिना चूने, सीमेट या मिट्टी के चिपकाव के पत्थर दर-पत्थर टिक कैसे गये है? एक बार केशर मा से पूछ बैठा था और जवाब था, "पुरानी कारीगरी है। तब इसी तरह बनते थे मकान और यह मकान तो तब का है, जब सीमेट चली ही नही थी।"

"फिर भी मा "अजित ने बहस करनी चाही थी। निगाह शभू नाई के मकान पर टिकी थी—मीन मेख खोजती हुई। पर केशर मा की एक बुरी आदत है। उन्हीकी क्यो, सबकी। कहा था, "मुझसे दिमागपच्ची मत कर। "

मुह बिसूरकर रह जाना पडा था अजित को। पर इससे सवाल खतम

नही हुए हैं। बराबर मन मे आते है। जब जब इधर से आता जाता है, यही कुछ सोचने लगता है। और आज तो इस घर मे ही आ खडा हुआ है।

अजित नहा धोकर आया है। माथे पर चन्दन। रामानुजी चन्दन। ब्राह्मणो मे भी तरह-तरह के ब्राह्मण होते हैं। कुछ माथे पर सीधी, दायें से बायें का च दन की लकीर खीचते है। वे शिव को मानने वाले, कुछ सिर्फ रोली की लाइन खीचते है—खडी हुई कुछ सफेद चन्दन के बीच लाल रोली की खडी लकीर और कुछ और तरह पर मा कहती हैं—"ये सफेद लाल खडे तिलक वाले रामानुजी लोग है—सबसे ऊचे ब्राह्मण।" वही गरिमा बसाये हुए है अजित। कुछ लोग उसके ऊचेपन से चिढत हैं। एक बार किसीने कह दिया था—'ठाडा तिलक बीच मे रोरी, जे आमे मथुरा के कोरी'। बहुत अखर गया था अजित को। कहनेवाला भी ब्राह्मण था। पर अजित को सह जाना पडा। असल म ब्राह्मणो और ब्राह्मणो म दरारें कम हैं? फिर उनमे भी ऊचे नीचे! अजित ऊचा।

ऐसे ऊचे ब्राह्मण से केशर मा को नही कहना था कि वह रेशमा नाइन के घर खाना खाये! गलत बात!

अजित का मन कुछ कडवाहट और विरक्ति से भर उठा है।

फर्श कच्चा है। माटी का। उसपर गोबर-लाल माटी का लेप। साफ-सफाई तो है, पर अजित भूले कैसे—नाई के घर आया है खाने! उफ! कैसे खा सकेगा?

"अरे लाला, तुम? आओ-आओ।" सहसा ही अजित ने आवाज सुनी। मुडा। भीतरवाले दरवाजे पर रेशमा आ खडी हुई थी। अजित टक टकी बाधे देखता ही रह गया—कितनी सुन्दर, सुकुमार, गोरी भूरी और लुभावनी नही जानता कि ये सारी विशेषताए जब मौजूद हो तो औरत क्या से क्या हो जाती है—बस, इतना जानता है कि रेशमा उसे अच्छी लगती है। सीतनाबाई वैष्णवी, सुनहरी, चन्दनसहाय की घरवाली 'बडदन्ता' (नाम कुछ और है पर अगले दात बडे हैं—सो सभी यही नाम लेते हैं।) सभीसे हजार गुना अच्छी। लोग कहते हैं कि अच्छे सुन्दर और बढ़िया किस्म के मद औरतें तो ऊची जात म ही होते हैं तब यह रेशमा ऐसी क्या है? नाइन है फिर भी

अजित उसके पीछे पीछे चल रहा है—सहमा सहमा । पर सोच मन से कही दूर चले गये हैं । वह देख रहा है सिफ रेशमा को। ये आगे पीछे दोनो ही तरफ से 'जमती' है। 'जमती' है माने सुदर। भरा-भरा बदन, नीली आखें, सुनहरी बाल लगता ही नही है कि यहा कही पैदा हुई है। इस जरा फ्रॉक जैसी वह चीजें, जो अजित न अग्रेजी अखबारो मे देखी है, पहना दी जाये तो एकदम इगलड वाली लगेगी—विलायती !

और विलायती चीजें तो सभी बढिया होती ह लोग तरसते हैं। सज विलायती, बल्जियमवाला काच विलायती, घडी विलायती, पेन विलायती और विलायती मान सबसे बढिया ! ऐसी ही औरत होती है । अजित ने फोटो देखे ह। पर रेशमा अगर वह कपडे पहन ले तो बस, एकदम विलायती !

अनायास ही शभू नाई आ गया है दिमाग मे क्या आदमी है वह । साक्षात ऊधम ! खुल्ल-खुल्ल खा खो

"यहा बैठो लाला। मै पानी लाती हू," रेशमा एक ओर इशारा करती है। अजित देखता है—एक नयी निवार बढिया दरी की ओर सकेत है रेशमा का। मानना पडेगा। रेशमा है साफ सुथरी साडी भी तो उसने कैसी पहनी है ? चमचमाती हुई—इधर मुडे तो कौध, उधर मुडे तो कौध और खुद तो है ही बिजली। बठ गया है अजित।

रेशमा लोटे मे पानी लायी है—एक हाथ मे अगौछा। वह भी साफ। अजित का मन हल्का होता है—साफ पाक काम है। हर चीज उजली और धुली हुई। खाना भी इसन साफ ही बनाया होगा। अब देखेगा कि रसोई कैसी है ?

रेशमा लोटे से पानी की धार गिराती है अजित के हाथो पर झुकी हुई। ब्लाउज थोडा ढीला है उसका। अजित की निगाह अनायास ही रेशमा की गरदन से उतरती हुई सीने की ओर बढ आयी है वाह वाह ! एकदम दूध की तरह उजला रग ! कुछ भगवान ने ही धुली धुलाई पैदा की, तिस-पर रगड-रगडकर नहाने, पूजा पाठ करने के लिए रेशमा सबमे प्रसिद्ध। सबकी चिढ और आलोचना का शिकार।

अजित हाथ पाछ रहा है। रेशमा रसोई म चली गयी है। शायद खाने

का इतजाम करेगी।

रशमा को कोई भी तो अच्छा नही कहता ? सब कहते हैं कि नरक म जायेगी। कीडे पडेंगे, सडेगी वगरा वगैरा।

क्यो कहते है ?

इसलिए शायद कि चिढते हैं। जरूर चिढते ही होंगे। असल में रेशमा जैसे नही है ना ? यह सबकी आदत है जिसके पास जो नही होता, उसे लेकर दूसरे के पास होनेवाली चीज से चिढ आती है। खुद अजित ही अपने दुबलपन और मोठे बुआ के मोटेपन पर कम परेशान होता है ? कभी उसे मोटा कहेगा, कभी फुग्गस, कभी ढोल जबकि अजित को अपने भीतर स मालूम है कि यह सब चिढकर कह रहा है। अजित के पास मोटापन नही है ना ?

और वैष्णवी, सुनहरी, सुरगो सब रेशमा को लेकर जो कुछ बकती है चिढ के कारण। वैसी हैं नही तो मन ही मन जल भुनकर वगन हुई जाती हैं। और ऐसी सु दरता पर तो फोटू छपवाना चाहिए अखबार म— कि देखो रे तुमने चाकू, छुरी, काच, घडी, कपडा ढेर ढेर चीजें विलायती देखी होगी—यह औरत विलायती है ! देखो !

मगर नही। चिढेंगे, कुढेंगे, जल जलकर बैगन हो जायेंगे ! घटिया लोग ! अजित आगे भी कुछ साचता, कि तु एकदम उखड गया खासी की आवाज ! आ गया कम्बख्त ! सब मजा खराव। ऐसे ही जसे खीर खात खाते मक्खी आ गयी हो मुह मे—सारा बढियापन कैसे बाहर निकल गया।

शभू नाई हाफता हुआ भीतर ही चला आ रहा है

अब इसके रहते रोटी खा सकेगा अजित ? अगर उसने खाने के बीच म ढेर बलगम उगल मारा तो अजित को निश्चित ही कै हो जायगी ! बुरा फसा ! जी होता है कि भाग खडा हो—पर केशर मा पीटेंगी अजित चुपचाप खडा रहता है। चेहरा उतरा हुआ।

और शभू नाई सामने। घुटनो तक मली धोती। उसपर भी जगह जगह कटे बाल चिपके हुए। कुरता और कधे पर एक ग दा लगभग काला हो चुका अगोछा !

च् च् ! कितना गन्दा। वह खास रहा था। उसी तरह खासता हुआ अजित के करीब आ खडा हुआ। मुस्कराया।

अजित अब घृणा से कही अधिक भय महसूस करने लगा है। अगर यह आदमी उसके मुह पर ही जोर से खास पडा तो क्या होगा ? इसकी मुस्कान भी कितनी डरावनी है ? अजित को अपना गाव याद हो आया है। एक बार उसने एक मरा हुआ लगूर देखा था। लाग कहते थे, दो-तीन दिन से पडा हुआ था। मुह उसका खुला—आखें विफरी विफरी

बिलकुल उसी लगूर की तरह यह शभू नाई ! मरा हुआ नही है, फिर भी लगता वैसा ही है। बहुत डर लगने लगा है अजित को। रेशमा को लेकर मन पिघल आया है। उसे तो हर हमेशा शभू को अपन आसपास ही दखना सहना होता है। कैसा कैसा मन खराब होता रहता होगा ?

अजित कुछ आगे सोचे कि शभू नाई न पेटी उसके पास ही रख दी। गन्दी, कीचट जमी हुई पेटी। अजब-सी बू आ रही थी उसमे से। अजित कुढकर रह गया। जैसी पेटी, वैसा शभू।

"अर रे क्या करते हो ? "

चौक पडा अजित।

रेशमा रसोई से बाहर निकल आयी थी। उसकी निगाहो म नफरत थी, चेहरे पर क्रोध। तिलमिलाकर कहा था उसने, "वहा से हटाओ अपनी पेटी। और और खुद भी नहा-धो लो। देखते नहीं लाला जी खायेंगे यहा हटो हटो ! "

और अजित ने देखा—शभू नाई का चेहरा क्रोध और अपमान से ज्यादा डरावना हा उठा, 'हरामजादी ! निपोछिन ! खसम से बदबुई छूट रही है तुझे ? "

घबरा गया अजित। पर रेशमा बअसर। बोली, "अच्छा-अच्छा, खूब बकना वहा बठके बाहर। चलो, हटाओ पटी ! मेरा सब धरम कारज खराब किय दे रह हो ! दूर जाओ ! '

शभू उठा। खासने लगा। चेहरे स उछलकर आखें गिरने को हो आयी। "कुतिया ! मुझसे बदबुई छूटती है इसे ? लुच्ची ! राजा की ठोकर, नाइन की जाई। ऐसे बालती है जैसे विक्टोरिया रानी ! ' वह हाफता,

खामता और बडबडाता हुआ पेटी उठाकर लौट गया। अजित डरा हुआ रेशमा को देख रहा था। वह मुस्कराकर बोली, "य तो ऐसे ही गाली बक्ते हैं लाला देखते नही रोग ने कैसे हाड-पजर निकाल दिये हैं आओ, तुम तो खाना खाओ।'

रेशमा रसोई म घुस गयी। अजित उसके पीछे। अकारण गालिया बक रहा था था शभू। बेचारी कितने तौर तरीके से बात करती है? और शभू से कहा ही क्या था उसने—जिस पर इस तरह बिगड पडा? अच्छी भली बात थी, नहा धो ले, फिर आये इसमे कौन-सी ऐसी बात थी, जिसका गरम मसाला बन गया? नही नही, सचमुच यह शभू नाई—नाई ही है!

रेशमा ने थाली परोस रखी है। चमकती, साफ सुथरी थाली, वसी ही कटोरिया। पास मे अगरबत्ती। थाली के नीचे रागोली। लोटा गिलास बगल मे। बैठने के लिए बढिया चटाई।

अजित विस्मय से देखता ही रह गया—इसी घर मे शभू है, गलीज, घिनौना गाली गुत्ते करन वाला और रेशमा है—चादी के कलदारो की लाई हुई। ऐसी औरत तो कलदारा से ही मिल सक्ती थी शभू को। सिफ तन ही तो सुदर नही है उसका—मन भी। कम भी।

अजित ने वैष्णवी, सुनहरी, सुरगो और जाने कितना की रसोइया देखी है, बरतन भी। खाना भी खाया है, पर इतना सलीके और सफाई के साथ नही।

"खाओ लाला! " रेशमा बोली थी—आवाज मे मिठास, चेहरे पर मुस्कान और निगाहो मे अजित के प्रति श्रद्धा।

और अजित एक पल की देर किये बिना खाने लगा था सब स्वादिष्ट। इसका मतलब है खाना भी खूब शानदार बनाती है। सहसा अजित दुखी हो गया था उसके प्रति। सच ही तो रेशमा जैसी औरत और इस घर म! याद हा आयी थी केशर मा की बात, 'यह भाग भी खूब होता है सुनहरी। राजा हरिचन्द चाण्डाल के हाथ बिके थे और भरी पूरी ससुराल, बड-बूढो के सामने द्रौपदी की लाज लुटी।'

यह भी तो भाग की ही करामात है—शभू के घर रेशमा!

अजित को बडे स्नहादर स भोजन करवाकर उसी श्रद्धा से हाथ पर

अपने हाथों से धोये थे रेशमा ने। अजित को सकोच हुआ था। रेशमा ने जबरदस्ती पाव धुलाते हुए कहा था, "अरे लाला जी, रहन भी दो अब यही तो एक पुन रह गया है भाग मे—इसको मत छीनो ! बाम्हन के बेटे के पाव छूना और गगा जी नहाना एक ही बात होती है। इस जनम मे तो गगा शायद न ही जा पाऊ, पर इसी तरह सन्तोष कर लूगी।'

सिटपिटाया हुआ अजित खडा रह गया था तभी शभू पुन आ पहुचा। वही खासी, वही बलगम की घडड-घडड सीने से धौकनी की तरह उठती हुई। अजित को श्रीपालसिंह ड्राइवर की याद हो आयी। जब अपने रेडियो का बटन घुमाने लगता है तो उससे भी कुछ वैसी ही घुरघुराहटें निकलती है, जैसी शभू की छाती से निकल रही हैं शभू एक ओर बैठता हुआ बडबडाने लगा था, "हाय हाय री धरमातमिन ! बाम्हन के चरन धोके तर जायेगी तू ? खसम से दुर दुर् करते सब जवानी निकली जा रही है और यह निपोछ ? वाह रे तेरे तिरियाचरित्तर ! सच कह गये बडे बूढे—तिरियाचरित जाने नही कोई, खसम मारके सत्ती होई !"

अजित दुखी, हैरान भी—कमाल है ! शभू बडबडाय जा रहा है, गालिया बक रहा है और रेशमा उसी तरह शान्त भाव से अजित के पैर अगोछे से पोछे जा रही है। कमाल की बात है ! उसने गालियो का बुरा नही माना ? कितना तो गन्दा गन्दा बक रहा है शभू

"अब दे मुझे खाना "

"वह रखी है परोसी थाली—उठा लो !"

"नही !" शभू एकदम चिल्ला पडता है, "यहा दे। इसी जगह, जहा बैठा हू ! '

रेशमा उसे देखती है। धीमे, शान्त स्वर से कहती है, "लाला जी, तुम बैठना जरा, पान दूगी।" फिर उस ओर जाती है, जिधर शभू के लिए परोसी थाली रखी है। उसे देखती है, फिर शभू को। चूल्हे के पास बहुत-सी लकडिया रखी है। उन्हीं मे से एक लकडी उठाकर थाली से टिकाती है, फिर लकडी से ही थाली को धकेलकर शभू के सामने पहुचा देती है, "लो, खाओ !"

अरे अजब हरकत की है रेशमा ने। अजित आश्चर्य की उछालें

खाता हुआ देख रहा है।

और शभू खाना शुरू कर चुका है। बडबडाता भी जाता है, "देख लिया अजित भइया, ऐसी राडो को सुरग मिलेगा। "

अजित सिटपिटाया हुआ बैठा रहता है। रेशमा पान लाती है और दो आन। अजित की ओर बढाकर कहती है 'लो, लाला।"

अजित को मालूम है—ब्राह्मण इसी तरह दक्षिणा लेते हैं। केशर मा भी जब जब ब्राह्मणो का बुलाती है—इसी तरह दक्षिणा देती हैं। अजित चुपचाप इक्नी लेकर जेब म डाल लेता है। और अजित को मालूम है कि दक्षिणा लेन के बाद ब्राह्मण को आशीर्वाद देना चाहिए वही, जो सब देत है। रेशमा आचल का एक छोर दोनो हाथो मे लेकर अजित के पर छूती है। अजित बडबडाता है 'अखड सौभाग्यवती रहो। "

चौंककर रशमा सिर उठती है। सहसा उसकी आखें छलछला आयी है। धीमे, दबे स्वर म कहती है, "नही लाला। यह आशीर्वाद मन दो। अपने वचन लौटा लो। मुझे कुछ नही चाहिए—सिरफ इतना चाहिए कि मरजाद निबाहती रहू—यही काफी। "

अजित भौचक्का रह गया है—यह क्या हुआ हसती खिलती रेशमा को? आशीर्वाद नही चाहिए उसे? बढिया आशीर्वाद तो है। सब पण्डित यही कहते हैं। केशर मा न बतलाया था एक बार—'अखड सौभाग्यवती रहो' का मतलब होता है—तुम्हारा सुहाग बना रहे। सुहाग बना रहे यानी पति जिन्दा रहे। मन ही मन शब्द याद करता है अजित—वे तो ठीक ही थे। कही कोई हर फेर नही, फिर रेशमा ने यह क्यू कहा कि " यह आशीर्वाद मत दो। अपने वचन लौटा लो?"

क्या रेशमा अपने सुहाग यानी पति यानी शभू नाई को जिन्दा नही रखना चाहती? एक सवाल लिए हुए अजित चल पडा था ऐसा भी कही होता है कि इतना बढियावाला आशीर्वाद कोई औरत न चाहे? पर रेशमा न नही चाहा था।

क्या? अजित नही समझ सका। किसीसे पूछना होगा। केशर मा से ही पूछगा। पर वह दुत्कार देंगी। कभी भी ठीक तरह कोई बात नहीं बतलाती हैं वह।

तब किससे पूछेगा ?

जया मौसी से ! उन्ही से पूछना होगा। मगर जया मौसी से बात-चीत जो बन्द कर आया है वह ? कसे पूछेगा ?

किसी बहाने बात शुरू करनी होगी। किस बहाने ? बहाना खोजते क्या देर लगती है ? मिल ही जायेगा। अजित घर लौट आया था।

थोडी देर इधर उधर गपशप करता रहा, फिर रोज की तरह मिन्नी के घर चल पडा।

कम्पाउण्डर ने एकदम घबराये-से स्वर मे बीच राह रोक लिया, "क्यो अजित, केशर मा किधर हैं ?"

"क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं—तू बता, वह किधर हैं ?" कम्पाउण्डर, यानी सुरगो का पति, बहुत घबराया हुआ था।

"ऊपर—घर म।" अजित ने उत्तर दिया था—चल पडा। पर शभू के मकान पर थमकर एक ओर हट जाना पडा। मुख्य गली से मुडकर तागा आ रहा है। किसके यहा ? कोई है नही ताग मे—बस, छोटे बुआ बैठा हुआ है। कौन कहा जा रहा है ? अजित ने पूछ भी लिया था, "क्या बात है यार, कौन जा रहा है ?"

"सुरगो भाभी अस्पताल जायेगी।" छोटे बुआ ने तागे मे जमे, हिलते डुलते हुए जवाब उछाल दिया था। तभी अजित ने देखा कि महल्ले के हर घर से कई-कई औरतें निकल आयी है। सुनहरी अपनी गैलरी से झाक रही है। वैष्णवी सीतलाबाई सुरगो के घर मे घुस गयी है। श्रीपाल ड्राइवर की बहू गली मे आ पहुची है और मैनपुरी वाली खिडकी से देख रही है। तागे से कूदकर छोटे बुआ परे खडा हो गया।

तागा सुरगो के घर के सामने जाकर मुडा—रुक गया।

कराहती चीखती सुरगो को सहारा दिये हुए सीतलाबाई वैष्णवी और सहोद्रा बाहर आयी। सुरगा की बेटिया घबरायी हुई यहा वहा खडी थी। सब गली महल्ले के बच्चे बाहर आ चुके थे। अजित भी मुडा—तागे के पास आ गया।

"क्या हुआ उसे ?" घबराये स्वर मे अजित ने छोटे बुआ से पूछा था।

'अब, अभी क्या हुआ है—होगा तो अब।''

'क्या मतलब ?'

'सुरगो बच्चा देने जा रही है।'' छोटे बुआ ने कहा ''देखो, लड़की देती है कि लडका इस बार लडका दे दे तो ठीक रहे।

अजित कुछ और सोचे सुने, इसके पहले ही सबने देखा कि केशर मा जल्दी जल्दी आ पहुची है। ताग की ओर बढती हुई बोली थी, ''सुनहरी, घर खुला है और फिर वह अजित की ओर मुडी, ''तू यहा वहा मत खेलना, सुनहरी जीजी के पास ही रहना। समझा ?'

अजित हक्वकाया हुआ-सा सब कुछ देखे जा रहा है। इसका मतलब है सुरगो के साथ केशर मा भी अस्पताल जा रही हैं

सुरगो बेहोश सी ताग की पिछली सीट पर फैली है। केशर मा उसके पास बैठी, बाह से सहारा दिया उसे। अगली सीट पर फुर्ती स कम्पाउण्डर शामलाल सवार हुआ फिर तागा चल पडा। जब गली के मोड को तागा पार कर गया तो खामोश होठ खुले, महल्लेवालो की निगाह परस्पर मिली। वैष्णवी ने एक गहरी सास लेकर कहा था, ' हे भगवान। इस बार बचारी का सपना पूरा हो ले '

निश्चिन्त रहो सीतला। '' मैनपुरी वाली ने कहा था, ''केशर काकी गयी हैं जापे मे इनका सग बडा अच्छा। जिसके साथ गयी बटा ही हुआ है।'

'हा, यह बात तो है '' सुनहरी बुदबुदायी थी। वह अजित के करीब आ पहुची थी। हौले स अजित के कधे पर हाथ रख दिया था। बोली, ''जा! घर के ताला-कुण्डी बन्द करके मेरे पास आ जा, अब जब तक बुआ नही आती, यही रहना।'

'पर जीजी '

''नही—इधर-उधर नही घूमने दूगी। नही मानेगा तो बुआ को आन पर सब बतलाऊगी कि मेरी बात नही सुनी। जा जल्दी, ताला बन्द करके आ जा। सुनहरी ने रौब के साथ कहा था, फिर अपने घर मे समा गयी।

एक तरह स अच्छा ही है। अजित के भीतर खुशी उग आयी है। इसी बहान सही पर सुनहरी के साथ रहेगा। बहुत मजा आता है। अजित ने

मिनो के यहा जाने का प्रोग्राम कसिल कर दिया था। जल्दी जल्दी से ताला कुण्डी बन्द किये, और सुनहरी के घर जा पहुचा।

सब जायका बिगड गया !

सुनहरी अकेली होगी—दुकान का वक्त है, यही सोचा था, पर भूल गया कि वहा मगलवार है। दुकानें बन्द रहती हैं। सुकुल जमनाप्रसाद घर पर था। अजित को देखते ही बोल पडा था, "आओ-आओ, अजित भइया !"

आधी की तरह आया था अजित, पर जमुना को देखते ही गीले कपडे की तरह घिसटने लगा। उसी तरह निवाड के पलग तक पहुचा।

सुकुल धरती पर उकडू बैठा हुआ था। सामने—सिल लोढा। पास मे दो चार पुडिया, काजू, किशमिश, बादाम, छुहारे एक शीशी मे पिश्ते भरे हुए थे। *समझ गया था अजित। जरूर भाग बना रहा होगा। तभी* रसोई से सुनहरी आयी। दूध का लोटा उसके पास लगभग पटककर रखते हुए बोली थी, "ले मर ! कर नसा पत्ता ! वैसे ही तो सारी जवानी लुगदी बनी पडी है, यह आग और लगा ले। भगवान की सौं, तू बुरी मौत मरेगा ! यह भाग तेरे रोम रोम से फूट निकलेगी !"

सुकुल ने एक बार मुह बिगाडकर अजित को देखा, फिर सुनहरी को। बोला, "तुझे जरा सरम लिहाज नही है। अजित भइया कहेंगे कि देखो तो—है जात से बाम्हनी पर कैसे चमरियाव करती है।" उसने लोटा उठाया और पानी के चार छह छीटे सिल पर छिडके बडबडाया, 'हर-हर महादेव ! "

"हे मरा ! " सुनहरी ने घृणा से मुह बिचकाया। आकर अजित के पास बैठ गयी।

पर अजित का उसकी ओर ध्यान नही। वह सुकुल की हर हरकत बारीकी से देख रहा है सब कहते हैं, भगेलची है। रोज भाग पीता है। जब भाग पी लेता तो है दुनिया के सुख-दुख से परे हो जाता है। अभी सुकुल पियेगा दुनिया के सुख दुख से परे हो जायेगा।

मगर इसे दुख क्या है ? सुनहरी जैसी औरत है उसकी ? घर मकान। अजित कमरे मे यहा-वहा नजरें घुमाने लगा है—ऊपर छत से एकदम सटी

हुई तसवीरों की एक लाइन चारों तरफ दीवार पर लगी है। किसीमें शिव पार्वती का सीन किसीमें शिव की जटा से गंगा माई निकल रही हैं, कहीं गोवर्धन पर्वत उठाये श्रीकृष्ण खड़े हैं, कहीं राधा और श्रीकृष्ण गलबहियां डाले हुए हैं ऐसी ही तसवीरें। कहते हैं, सुकुल जमनाप्रसाद के बाप के जमाने की हैं। वह बड़ा भगत भी था, शौकीन भी और रसिक भी। रामलीला मंडली में भी बहुत दिन काम किया उसने। अजित के माथे में बूढ़े सुकुल की एक धुंधली सी याद है। जब आता जाता था तो कमर ठुमका खाती चलती थी। इकहरी देह थी। सब कहते थे, "नचया है मरा! गोपी का रोल करता था रासलीला में! अंगूठे से लेकर कपाल तक गोपी बस गयी स्साले में!"

कोई बोल पड़ता, 'जब गोपी इसमें बस गयी तो यह जमना किधर से टपका?'

'लुगाई के साथ रासमंडली में जाता था। और तुम तो जानो ही हो भइया, असल कन्हैया तो अब जनमे हैं वह गोकुलवाला तो यों ही था'

फिर एक हंसी।

अजित को सब कुछ याद है, पर तब भी कुछ नहीं समझा था। आज भी कुछ नहीं समझा। इंच दो इंच ज्यादा समझ लिया होगा, बस! पर समझना सब है। इसी तरह समझेगा। पूछा, 'जमुना भाई साब?'

"क्या?"

"तुम भांग पीते हो तो कैसा लगता है?'

मुस्करा उठा था जमुना, "कभी तुम भी दो चुल्लू ले के देख लेना।

'अरे मर तू!' सुनहरी एकदम चीख पड़ी थी, "बच्चों को और बिगाड़ेगा। जहरी!"

सुकुल गुनगुनाने लगा

सौंडा बदनाम हुआ

बसोरन तेरे लिए ऐं ऐं

अजित हैरत से देख रहा है। पाजामे को घुटनों तक खोंचकर दोनों हथेलियां में लोढ़ा कस लिया है सुकुल ने फिर सिल पर रखी मेवा और भांग घोंटे जा रहा है किर र्र्र् किर्र्र

गीत भी गुनगुना रहा है बीच बीच म पानी के छीटे देता है सिल पर। फिर रुककर एक बीडी सुलगा लेता है। धुए के गहरे गहरे कश।

सुनहरी कहती है, "लेट जा अजित। सो ले बुआ तो शाम तलक आयेंगी और शाम तक सुरगो के वाल बच्चा न हुआ तो रात भी वही रहेगी।'

"नही नही, ठीक है जीजी ठीक हू।" अजित का उत्तर। निगाहें सुकुल पर ठहरी हुई हैं। कहते हैं बडा ऊचे दरजे का भगेलची है। कभी कभी गाजा भी पीता है। भाग गाजा नशे ! पर मोठे बुआ बोला था, "भाग अलग चीज है, गाजा अलग। दोनो का अलग-अलग मजा।"

"कैसा ?"

"वह कोई बतलाया जा सकता है ? वह तो पीने से पता चलेगा।" मोठे बुआ ने कहा था।

और अजित ने उस पल सोचा था—कोई जरूरी है ? जिसने भाग-गाजा पिया हो बतला सकता है कि क्या होता है पीने के बाद ? आज सुकुल सामने। अनुभवी आदमी हैं। फिर से पूछ लिया, "बतलाओ ना सुकुल भाई साहब, कैसा लगता है यह पीकर ?"

"अरे अजित भइया, कोई है जो सुरग जात्रा का वणन कर सके ? ये पीते है देवता लोग। सबके बस की बात नही। और सुरग का वणन कौन कर सकता है ! देखना-समझना है तो एक बार सुरग जात्रा करके देखो। पीयो फिर कहोगे कि क्या चीज है ! और नही तो भइया, यह जो मानुप जोनि है ना—ठीक तरिया देख न पाये तो कहते ही रह जाओगे " और सुकुल भगेलचियो की एक कविता सुना देता है

छान छान
निकल जायेगी जान
फिर किससे कहेगा छान ?

"देखो तो मरे की बातें ? कहता है, देवता लोग पीते हैं भाग।" सुनहरी मुह सजाये हुए बडबडाये कोसे जाती है, "यह देवता है पान की दुकान करते है ना देवता ? मरा भगेडी !"

अब कपडे की छनती बनाकर लोटे मे भाग छान रहा है सुकुल बडे

करीन, प्यार और आनंदातिरेक से। फिर वह सारी सफाई करता है। लोटा ढककर एक ओर रख दिया है। कोने में रखी भगोनी से बरफ निकालता है। मुरादे को साफ करता है और बरफ का चूरा करके भाग में डालता है। एक साफ गिलास भरकर बैठ जाता है—खुश

अब पियेगा अजित देखता है "कैसी लगती होगी? कड़वी?"

"अरे देवताओं का पेय और कड़वा? यह भी कोई शराब है?' मुकुल कहता है 'नहीं जी। इसकी तो बात ही अलग। राजसी चीज है भइया राजसी!'

" और दो टके के लोग पी रहे हैं—हुह!" सुनहरी भुनभुनाती है, "राजसी! ये म्हा और यही मरदगी तो होती है राजसियों की। बेसरम!"

मुकुल को परवाह ही नहीं है। बिगड पडता है अजित, "तुम कैसे बोलती हो जीजी? जमुना भइया बिचारे तो कुछ भी नहीं कह रहे हैं और तुम हो कि "

'अरे तू रहने दे! "

"क्या रहने दे—जमना भइया, सीधे आदमी हैं।"

"हां हां मालूम है मुझे कित्ता सीधा है। बाहर से भी सीधा, भीतर से भी। इसमें टेढ़ापन है ही कहा? होता तो मानती कि मरद है हुह!"

और मुकुल ने गिलास उठा लिया है—चारों ओर अंगुलियों से छींटे मारता है—कोई श्लोक बडबडाता है, फिर जोर जोर से कहता है

बम भोले शिवशंकर!
कांटा लगे न कंकर
बोल काली कलकत्तेवाली
तेरा वचन न जाये खाली!
इन्दर की बेटी,
बरम्हा' की साली!

और फिर एक ही बार में गट-गट गट करता मुकुल जमनाप्रसाद पूरा गिलास गले के नीचे उतार देता है एक डकार लेता है, पेट पर हाथ फिराता है, फिर मुस्कराता हुआ दूसरा गिलास भर लेता है। एक बीडी सुलगाकर कश भी लेता जाता है

अजित हाठ दबाये हुए गौर से सुकुल की आखे देख रहा है अब चढेगी भग कहते है आखें बदल जाती हैं। आखें तो हर नशे मे बदल जाती हैं, पर सब नशो का अलग अलग मजा। मजा—अजित को नही मालूम बस इतना जानता है कि आदमी वह-वह कौतुक करता है कि किसी बार सिरफ दूसरे हसत हैं, किसी बार वह आदमी दूसरो के साथ हसता जाता है

आज भाग का नशा देखेगा अजित न सोचा है—फिर किसी दिन मौका पाकर ड्राइवर श्रीपालसिंह को देखेगा। वह शराबी है। उसकी हरकतें बतलायेंगी कि शराब पीकर लोग क्या करत हैं फिर सुकुल और श्रीपाल की तुलना करके अजित भाग और शराब—दो नशो को समझ लेगा। यह आइडिया

पर अजित की आदत के विरुद्ध हो रहा है सब। ऐसा कुछ कर ही नही रहा है सुकुल, जिससे लगे कि नशा हुआ।

पर आगे अवसर ही नही दिया था सुकुल ने। उठा और जल्दी जल्दी कपडे बदलने लगा। सुनहरी ने कहा था, "रोटी तो खा जा! ठूस ले दो चार!"

सुकुल ने नाक चढाकर उसे देखा। बोला, "अजित भइया! इसकी बात तो सुनो। अब इससे पूछो कि देवताओ का पेय पीकर कोई इस राच्छसी के हाथ का प्रसाद पायेगा? "

"अरे, मरे! राच्छस तू! तेरा वह मरा हुआ बाप सुकुल राच्छस! तेरी कुतिया माई सहोद्रा " सुनहरी चीख पडी थी—जोर-जोर स। अजित भौचक्का सा बैठा ही रह गया था, पर सुकुल जमनाप्रसाद बडे आराम से गुनगुनाता हुआ बाहर निकल गया

लौंडा बदनाम हुआ,
नसीरन तेरे लिए
अरे, नसीरन तेरे लिए?
न सी र-न ते रे लिए !

दो मजिला मकान की इस बैठक से सटे अपने मकान के कमरे मे बैठे हुए

अजित न सुनहरी का यह चीखना, गालिया बकना हमेशा सुना है पर आज सुन रहा था सुनहरी को अपने बैठक मे। केशर मा से भी सुनहरी अक्सर मुकुल जमनाप्रसाद की नशेबाजी को लेकर माथा फोडती रहती थी—पर आज आख स देखा। इस आख के देखे के साथ बहुत कुछ सोचता भी रहा

सुनहरी छज्जे पर जाकर बक रही थी—तब तक बकती रहगी, जब तक कि मुकुल गली पार न कर जाये

मुकुल चला जा रहा होगा—उसी मस्ती मे—जिसमे घर से निकला था और सुनहरी की गालिया सुन रहा है अजित, 'ठठरी बधे ! धुआ लगे तेरी अर्थी का ! सब झाड फूककर घोट गया भाग में। पर दखूगी तुझे ! ' फिर वह रोती बिलबिलाती वापस बैठक म आ गयी थी। अजित ने देखा था कि उसने पल भर म ही चेहरा पोछ लिया था। जाकर शीशे के सामने खडी हुई और बाल सवारने लगी। बिलकुल ही अजीब औरत है सुनहरी। अभी अभी कितनी जोर से रो रही थी ? चीखी भी कितनी ?

मगर इस पल लगता ही नही है कि यह रोयी चीखी थी—सजने सवरने लगी है। अजित चुपचाप देखे गया

सुनहरी बोली थी, "तू कही जाना मत। मैं अभी आयी।" फिर सदूक से कुछ कपडे निकालने लगी। बढिया, कीमती और शानदार साडिया, ब्लाउज। अजित ने कुछ डिब्बे भी रखे देखे सदूक मे। शायद सुनहरी के ही होंगे। अजित जानता है, केशर मा के सदूक म भी इसमे बडे बडे कई डिब्बे रखे ह। सबम जेवर हैं। हसली लाकिट, अगूठिया बाजूबन्द और और तरह की चीजें। चादी के जेवरो का डिब्बा अलग। विक्टोरिया के जमाने के कलदार भी हैं केशर मा के पास।

सुनहरी के डिब्बो म भी यही कुछ होगा अजित का मन सुनहरी के प्रति विरक्ति और चिढ से भर उठा है। कितनी गालिया बकती है ? गोदावरी अम्मा को एक बार सहोदरा से कहते सुना है अजित ने—'ये सुनहरी छोरा मोरा नरक नही लेनेगी। इसकी तो बह-बह गत करेंगे जमदूत कि दखी न जाय आदमी की कद्र नही करती। जिस औरत ने घरवाल पर थूका उसका नाश हुआ समझो !

और सुनहरी यही कुछ कर रही है अजित न सोचा। मुकुल से

उसका व्यवहार, इसके नक म जाने और जमदूता द्वारा गत बनाये जाने की पूव भूमिका है। और नक की कल्पना अजित को है। केशर मा के स दूक म एक बडी तसवीर रखी है। सिनेमा के पोस्टर जैसी। उसमे नरक के सीन छपे हैं। किसी म जि दा आदमी को एक बडे कढाव मे लपटो पर रखकर आलू की तरह उबाला जा रहा है, किसी मे नगी औरत को दो भयानक शकलवाले जमदूत आरे से चीर रहे है। इसी तरह के कई कई सीन। यही सब कुछ होना है नक म। आर होता उनके साथ है जो अपने पति का अपमान करती हैं, उससे घृणा करती है, जो वच्चे अपने माता पिता को कष्ट देते है, गाली वकते हैं, उनके लिए भगवान का यह दड विभाग है।

अजित के रोम फुरहरा उठे! उफ! सुनहरी सम्हल जाय तब भी गनीमत।

और सुनहरी इस बीच कुछ कपडे निकाल चुकी थी स दूक से। ताला उसी तरह ब द कर दिया था, चली गयी। जाते जाते फिर हिदायत, "जाना मत कही। घर खुला है।"

अजित न कुछ नही कहा। वह चली गयी। वेचारा सुकुल!

पर थाली को लकडी स सरकाकर कुछ इसी तरह की गाली तो रेशमा ने दी है—अपने घरवाले शभू को। अजित आख से देख आया है।

इसका मतलब है कि रेशमा भी नक म जायेगी—जमदूता से गत बनवाने।

जरूरी नही है कि जाय—अचानक उसन अपने भीतर ही जवाब महसूस किया था। यह जो भगवान है—सबसे सुना है—वह वडा यायी है। उसके पास थोडे ही च दनसहाय किसम के चोर मुशी होगे? जो फैसला देता होगा—सत्य धम से। किस औरत न घरवाले को कम कोसा, गालिया बकी, किसने ज्यादा, यह भी देखा जाता होगा। जरूर देखता होगा। जव यह देखता होगा तो, वह जो नक की सजा के सीन हैं—उनम से छोटी-बडी सजा मुकरर करता होगा। यही तो तरीका है याय का। कोट मे भी ऐसा ही होता है। जेब काटो तो दस दिन की जेल, कत्ल करो तो फासी! अलग अलग जुम, अलग अलग सजा!

इस सबस अजित का मन पक्का हो गया है। सुनहरी मजा नही देनी,

कभी कभी वही कडवाहट घोल देती है मन मे। आज कडवाहट ही घोल दी। सुनहरी अच्छी नही लग रही है

अजित उठा और गैलरी म जा खडा हुआ। बुरी तरह चौंक गया।

शभू नाई के मकान के पास से मोड लेते हुए दो सिपाही आ रहे हैं—आगे आगे एक आदमी

यह आदमी ? ध्यान किया अजित ने, वही चाटवाला है। इसीका ठेला तो उलट दिया था मोठ बुआ ने ? पीटा भी बहुत। क्या सिपाहियो को लेकर आया है ? जरूर कोई चक्कर।

गली मे सिपाही। बडी खबर। कई बच्चे पीछे लग जा रहे हैं—कुछ दूर दूर।

एकदम गैलरी के नीचे आकर एक सिपाही ने पूछा था चाटवाले से, "किधर रहता है ?

उधर—एकदम आखीर के मकान म।' चाटवाल ने कहा था, "बस दो मिनट की बात है हैड साहब। '

अजित जानता है कि दोना म से कोई भी हड कान्स्टेबिल नही है। हेड की बाह पर लाल फीता होना है। उडती चिडिया जैसा। इनम से एक के भी नही है, पर हड साहब कहा है चाटवाले ने। पढा लिखा ही कितना है बेचारा ? सिपाही उसके लिए हड कान्स्टबिल, हड कान्स्टेबिल—दारोगा।

मगर मोठे बुआ ? सिपाही पार चले गये—बच्चे पीछे। एम जसे रीछ वाला जब आता है तो एक फासला रखकर उसके पीछ लग जाते हैं

अजित डर गया है। अजित ही क्या, सारा महल्ला य मोठे बुआ तो कलक है काका के लिए। ठीक है कि काका बचा लेंगे। अक्सर बचा लेते हैं, पर कब तक बचा पायगे '

लगभग पाच मिनट बाद अजित ने देखा कि दोना सिपाही लौटे चले आ रहे हैं—गालिया बकते हुए दोना ने एक-एक हाथ स चाटवाले को पकडकर रखा है, 'हरामी, स्साले। दो टके का आदमी। राजा सरदारों के यहा ले आया हमको ? एसे खानदानी आदमी की औलाद तुझस पोकट चाट खायगी ? क्या ? तरी एसी की तैसी

'गगामाई की कसम हजूर, मैं सच कहता हू— यही लडका था ! "
गिडगिडाता-कापता जा रहा है चाटवाला।

"तेरी कसम तो आज हम निकालते हैं पाजी ! " और फिर वे चाटवाले को लगभग घसीटते हुए गली से गायब हो गये थे। अक्सर ऐसा होता है इसी तरह पुलिसवाले लौट जाते है। आखिर सरदार मराठे छोटे-मोटे आदमी नही है। शिलेदार हैं। पर अजित का मुह ज्यादा ही कडवाहट से भर गया है। क्या सचमुच भगवान न्याय करता होता तो इस तरह बच जाता मोठे जुआ ? सरासर उस गरीब पर जुल्म तोडा था फिर भी

नही-नही, कभी कभी लगता है सब झूठ है। स्वर्ग भी, नर्क भी। केशर मा के पास रखा नर्क का पोस्टर भी ! बेकार !

और इसलिए सुनहरी का सुकुल को गाली बकना, रेशमा का लकडी से ठोकरें मारकर थाली मे शभू को खिलाना—सब झूठ है ! इनका कुछ नही होनेवाला। फिर यह भी तो सुना है अजित ने। केशर मा ही कहती हैं, सब पलक खुली का खेल है। पलक मूद गयी तो कौन जानता है कि क्या होगा ?"

और पलक मूदती है मरने पर। वही असली पलक मूदना माना जाता है। मरना—यानी फिर आदमी का महल्ले, गली, देश और ससार से गायब हो जाना। और यह जो नरकवाला पोस्टर है उसे लेकर कहते हैं—मरने के बाद आता है ! हुह झूठ ! सब बेकार ! झुझलाता हुआ अजित फिर से बैठक मे आ गया है सुनहरी पाच मिनट के लिए कहकर नीचे गयी थी—अब तक नही लौटी।

अजित चारपाई पर बैठता है। बैठता क्या है, अपने-आपको लगभग गिरा लेता है। बुरी तरह ऊब चुका।

असल मे जब मिन्नी के यहा जा रहा था, तब तागा देखकर मुडना नही था। न मुडता तो आराम से अभी खेल रहा होता जया मौसी को मना चुका होता। वह बता भी चुकती कि 'अखड सौभाग्य' का आशीर्वाद वापस लेने के लिए क्यो कहा था रेशमा ने ? फालतू के चक्कर मे उलझ गया !

शायद कुछ ठीक ही रहता, अगर सुनहरी घर पर अकेली मिलती पर सुकुल भाग घोटता साथ मिल गया।

सारे मुहूरत खराब ! कई कई बार कुछ दिन बहुत बेतुके और बमजा बीतते हैं। कल भी यही हुआ था, आज भी अजित झल्ला उठा। अचानक निगाह बीडी के बडल पर जा ठहरी—मुकुल छोड गया है शायद। बगल म ही माचिस। अजित बीडी को लेकर बहुत दिनो से सोचता रहा है कि आखिर क्या मजा आता है बीडी, सिगरेट, नशे पत्ते म ? किसी बार नहीं समझा। किसीने नही समझाया। पीनवालो ने कहा, 'आनन्दायक है! 'न पीनवाले वाले, 'जान लेने वानी चीजें!' कितनी ही बार अजित का दिल हुआ है कि बीडी पिय आज मौका है। एकात, फिर सुनहरी की बैठक। बीडी सामने—माचिस भी मौजूद। लगता क्या है दो कश लेकर ही समझ लेगा—क्या है? उठा और चोर नजर से उस दरवाजे को देख आया, जिससे अभी अभी सुनहरी गयी थी। एक ही झटके मे बडल और माचिस हथेली म दबा लिय जोर जोर स दिल धडकन लगा डर बढ गया लगा कि साप पकड रखा है हाथ मे! किसीको मालूम हो गया तो अजित भी मोठे बुआ माना जाने लगेगा

कोई भीतर से झिझोड रहा है अजित को, 'छोड उसे ! छोड दे!'

पर नही—ढीली होती अगुलिया फिर से जकड ली हैं अजित ने। आज तो पीकर ही रहगा उसके बाद कभी नहीं। आखिर मालूम तो होना चाहिए कि मजा क्या है

वह वापस पलग पर आ बैठा है। कापती अगुलिया से एक बीडी बडल खीचता है, फिर दियासलाई की पेटी से काठी

दरवाजा बन्द कर देना चाहिए। कही सुनहरी आ गयी तो निश्चित केशर मा से कह देगी

नही ! दरवाजा बन्द करने से सुनहरी मालूम नही क्या सोचे ? सोचने लगे कि भीतर अजित शायद चोरी कर रहा है। ऐसा नही कर सकता अजित। तब ? तब उस हिम्मत करके यही पी जाना हागा ! सुनहरी आ गयी तो फट से बुझाकर फेंक देगा !

अजित न बीडी लगायी। होठ काप रहे थे अगुली भी, जिसम जलती तीली थी। जल्दी जल्दी कश खीचकर जलायी लगा कि एक आग सी उतर गयी है सीन म। कडवी, कसली और सासा को धक्झोर डालने

वाली ! जोर की खासी आ गयी। इतनी जोर से कि अजित हिलने लगा एकदम शभू नाई की तरह ! पर और भी कश खीच डाले। हर कश के साथ जलन, घबराहट और खासी बढती गयी। एक हाथ से सीना ठोकता, खासता, नाक मुह से धुआ वापस लौटा रहा था। यही नही, आखो मे आसू आ गये !

नीचे से सुनहरी की चिल्लाहट सुनाई दी, "क्या हुआ रे ? " और जवाब मे अजित ने कहना चाहा था, 'खासी आ गयी है ! पर बोलने का अवसर ही नही, खासी निरतर हो गयी थी। बीडी फेंक दी। हिलते-गिरते, चप्पल से मसल डाली फिर पलग पर बैठकर जोर जोर खासने लगा। आसू गालो तक ढुलक आये—बडी खराब चीज !

दौडी हुई सुनहरी ऊपर आ पहुची। हाथ म गिलास था—"क्या हुआ तुझे ? क्या हुआ ?" मुह मे पानी का गिलास लगा दिया, "दो घूट ले—*थम जायगी ! पता नही—क्या हो गया तुझे ?"*

जल्दी जल्दी घूट लिये दम सधा खासी हल्की हुई, फिर गुम। अजित लगभग हाफना हुआ बोला, "कुछ नही—एकदम ठसका लगा और बस !"

सुनहरी ने गिलास रखा—निगाह पलग पर रखे बडल माचिस पर जा ठहरी। पूछा, "क्यो, बीडी पी तूने ? '

"बीडी ?" घबराकर लगभग चीख ही पडा वह, पर तुरत सभला। बोला, "नही तो। कौन कहता है ? मैं बीडी पियूगा ! छि ! "

' फिर ये '

"ये तो सुकुल भाई साहब छोड गये है—याद नही तुम्ह ?" अजित बडी सफाई से बोल गया।

और सुनहरी ने मान लिया।

अजित आसू पोछ चुका था हालाकि आखें लाल थी—पर य लाल आखें सुनहरी पर टिकी हुई थी दिल अजब सी कसमसाहट स भरा हुआ उफ ! क्या जम रही है सुनहरी ? गोरा रग, उसपर यह नीली झनकें मारती हुई रेशमी साडी ! वैसा ही ब्लाउज पहना था सुनहरी ने। अजित पल भर मे सब भूल गया—अगला, पिछला

सुनहरी भी उसे ही देख रही थी—एकाएक बदन गयी थी उसकी निगाहें, वही मुस्कान—रसोईवाली, वही तिरछा होठ और वही पनियायी पुतलिया। पूछा, 'क्या देख रहा है ?"

"कौन ? मैं ? कुछ भी तो नहीं।" अजित ने निगाहें चुरा लीं।

"मैं सब जानती हू।" सुनहरी ने होठ काट लिये थे।

"क्या जानती हो तुम ?"

"उस दिन वाली तेरी हरकत भी और और "

"बोलो ना ?"

'बन क्यो रहा है ? " वह और ज्यादा तेज, कुछ ऐसी नजरो से देखन लगी कि अजित के भीतर का तनाव और और बढ गया—क्या वह रात की तरह चादर ओढ़कर इस पलग पर नही लेट सकता ? उसन सोचा। अचानक वह लेट गया क्यो—यह उसने सोचा ही नही।

सुनहरी उसके पास बैठी थी—उसके पिछले हिस्से अजित के कूल्हों को छू रहे थे—अजित सनसनी म।

"लेट क्या गया ?'

"सोऊगा।" अजित ने पलकें मूद ली। औंधा हो गया, "तुम तो नहा धो आयी हो। कही जा रही हो ना ?'

"नही। सुबह नहा नही पायी थी—इसलिए। अब मैं भी तो आराम करूगी।" कहती हुई सुनहरी भी पलग पर ही लेट गयी। सहसा उठी, दरवाजा बन्द कर आयी।

अजित ने महसूस किया जैसे उसके भीतर हजार हजार आधिया चल रही हैं—सूखे पेड की तरह उसे थरथराकर हिलाती हुई। बन्द कमरा, दिन, फिर यह अजित का घर भी नही। गुगुल भाग पीकर जा चुका है, खूबसूरत सुनहरी के साथ चारपाई पर लटा है अजित वह सोचता ही जा रहा था सोचता ही जा रहा था

"सुन रे। ' सहसा बोल पडी थी वह।

"हू।' अजित की आवाज गुनगुनायी हुई है।

"तू उस भटनागर मास्टर के यहा पढने जाता है ना ?"

चौंक गया अजित, "हा, जाता हू। तुम जानती हो मास्साब को ?"

"जानती हू।"

"तब तो तुम मिन्नी, जया मौसी, मास्टरनीबाई— सबको जानती होगी ?' अजित ने सवाल किया और महसूस हुआ जैसे गुनगुनाहट हल्की होने लगी है। पर सुनहरी कैसे जानती है उन सबको ? वह सोचने लगा था।

"सबको जानती हू। और उस माया राड को कौन नही जानता।" सुनहरी बोली।

"तुम गाली दे रही हो मास्टरनीबाई को ?" अजित कुछ उत्तेजित हो गया। वह नही सह सकता कि मिन्नी की मा, जया मौसी की बहिन और मास्साब की घरवाली को कोई अजित के सामने गाली दे।

"मैं क्या, सब गाली देत हैं उसे।"

"उन्होने किसीका क्या बिगाडा है ?"

"इधर—मेरी तरफ करवट ले।" सुनहरी ने बुदबुदाकर कहा।

अजित ने करवट बदली—एकदम सुनहरी के मुह के सामने मुह आ गया। वह मुस्करा रही थी। खुशबूवाला तेल भी महक मार रहा था अजित फिर से सनसनी मे नहा गया।

"अब बतलाओ—क्या बिगाडा है मास्टरनीबाई न किसीका ?"

"उसने क्या बिगाडा है ?" सुनहरी बुदबुदायी—उसकी निगाहें ज्यादा ही नशीली हो गयी, "तू तो रोज दोपहर वहा खेलन जाता है ना ?"

"हा।"

"तो तूने कुछ नही देखा होगा ?"

"क्या ?"

"क्यो तुझे क्या दीखता नही है कि वह मरा दरजी भर-दोपहरी घुसता है तेरी मास्टरनी के पास ? और मास्टर छत पर लेटा अखबार पढता रहता है ? बोल—तुझे क्या पता नही ?" सुनहरी न जैसे उसे कुरेदा और अजित चक्कर मे। मालूम है उसे कि कुदन आता है, पर उसके आने से क्या ? इससे किसीका क्या बिगडा और मास्टरनीबाई ने किसका क्या बुरा किया ? बोला, "हा, ठीक है। आता है पर इससे किसीको क्या करना ?"

अच्छा ! जैसे तू बडा भाला है—कुछ समझता ही नही ?" सुनहरी उससे लगभग सट गयी थी, "क्या तुझे नही मालूम कि तेरी मास्टरनीबाई उस दरजी से फसी है ?'

"फसी है ? अजित बुदबुदाया—माथे पर न समझ पाने की सल वटें—बोला "क्या मतलब ?'

'अच्छा, मतलब तुझे जाता ही नहीं और यह सब तूने कहा से सीखा ? "

'क्या सब ?'

'वही जो उस रात तू मेरे साथ कर रहा था—क्या ?' सुनहरी ने नजरें उसी पनीलेपन से अजित की ओर लगा दी—इस तरह कि अजित के भीतर तक खुप गयी। नजरें ही क्या, अजित तो भीतर से छलनी हुआ जा रहा है बिलकुल सुनहरी का पूरा बदन ही तो खुपा जा रहा है उसमें वह अपने दिमाग में एक अनसमझी उतावली महसूस करने लगा। इसी गडबड में कई नाम कई शब्द—अजब सी खिचडी ! खट्टी मीठी। माया, कुन्दन फसना क्या कर रही है और क्या-क्या बक रही है यह कम्बख्त सुनहरी !

पर जो भी करे और बके—अजित को अच्छा लग रहा है। सहसा सुनहरी परे हो जाती है उससे। कहती है, 'वह सब छोड—सो जा।"

'नहीं !' अजित ने एक झटके से सुनहरी की बदली करवट पर बाह थाम ली—अपनी ओर खीचा—ज्यादा ही सनसनी से भर उठा। वह लुढकती हुई उससे फिर आ सटी। उसकी भारी-भारी छातिया अजित के सीने से आ छुईं—फिर एकदम उससे गस गयी। बुदबुदायी, "अरे रे क्या करता है ? यह क्या ?'

पर अजित ने परवाह नही की। पूछा, "बतलाओ। यह फसने का क्या मतलब होता है ?"

'क्या—क्या सब कुछ मुझीसे सीखेगा ? फिर मर्द काहे के लिए है ?' सुनहरी ने हसकर कहा।

मैं मर्द कहा हू ? " अजित ने हैरत और भोलेपन से कहा, "मैं मैं तो बच्चा हू। सभी तो कहते है।

"हिश पगला ! क्या हमेशा ही बच्चा बना रहेगा ?' सुनहरी बोली, "अरे, भलेमानस। वह सब जो तू करने लगा है—क्या बच्चे करते हैं ? अब तो तू मद हो गया।"

अजित खुश हो गया है। जोर से सुनहरी को भीच लेता है। वह बुद बुदाकर 'आ ऊई' करती रह जाती है और अजित कहता है, "क्या बात कही है जीजी ? अब किसी ने मुझे बच्चा कहा और मैं उसके मुह पर फट से जवाब चिपका दूगा कि बच्चा तुम—मैं तो मद हू ! फिर कोई बहस करेगा तो यह भी कह दूगा कि पूछो सुनहरी जीजी से ! है ना ?"

"हिश् ! क्या बकता है तू ? ' सुनहरी की निगाहो का रस, होठो की मुस्कान और चमक—पल भर मे गायब हो जाते है।

"क्यो ?" अजित हैरान है।

सुनहरी गले का थूक निगलकर दबे स्वर मे कहती है, 'खबरदार ! जो किसी से मेरा नाम लिया। किसी मद को मद कहने की जरूरत पडती है क्या ?"

"पर ये जो लोग मुझे बार-बार बच्चा कहते हैं।" अजित दुखी हो गया है।

"उनका क्या है बकने दे उन्हे ! ' सुनहरी ने करवट फिर से बदल ली। अपने भीतर घबरा भी गयी थी शायद। अजित से एक खास फासला बना लिया। बुदबुदायी, "सो ! सो जा अब।"

पर सो सकेगा अजित ! वह बच्चा नही रहा है। मद हो चुका है। मद ही तो वह सब करते हैं जो अजित ने सुनहरी के साथ उस रात किया यानी मद हो जाने के बाद यह सब करना ही चाहिए। या या कि मद हो चुका है बच्चा—इस सबको किये बिना साबित नही हो सकता। उसने निगाह सुनहरी की पीठ पर ठहरा दी हैं

नीली साडी—बारीक। ऐसी कि परत भेदकर भीतर निगाह पहुचा दो—अजित की निगाह परत भेदकर भीतर जा पहुची हैं—उसके भीतर है नीला ब्लाउज। उस ब्लाउज के भीतर चोली होगी चोली—अगरजी मे 'बॉडी' कहते है उसे। यह बॉडी क्यो पहनी जाती है ?

एक दिन मोठे बुआ बोला था, "यह जो बॉडी होती है ना—इसलिए पहनी जाती है कि दूध न फैल जाये।"

'क्या मतलब ?" परेशान होकर अजित ने सवाल किया था। स्कूल जाते समय गली से एक चोली पडी मिल गयी थी मोठे बुआ को। यहीं से बात निकली। छोटे बुआ ने कहा था, "भाऊ, सगळयाचा घरात माहिती करुन घ्या! कुणाची आहे ही चोळी ?"[1]

और तीनो क्रमश श्रीपालसिंह ड्राइवर, वैष्णवी सीतलाबाई, सुनहरी, और सुरगो के यहा पहुचे थे। मोठे बुआ सबको बतलाता गया था चोली। पूछता, 'तुम्हारी है भाभी ?'

सुरगो ने पहचान ली थी। झेंपकर बोली थी, "सरम नही आती--कहा स उठा लाये इसे ?'

"अरे गली मे पडी थी। लाया हू तो उलटा मेरे को ही बोलती हो भाभी—'सरम नही आती।"

"हा, मेरी है।' सुरगो ने मोठे बुआ के हाथ से छीन ली थी फिर भीतर चली गयी।

लौटकर तीनो स्कूल की ओर बढे तभी मोठे बुआ ने जानकारी दी थी। अजित के यह पूछने पर कि क्या मतलब ? मोठे बुआ बोला था, "तूने देखा ना पण्डित, वह चोली सुरगो भाभी की निकली। उसके टोपे कितने बडे बडे थे। इसलिए कि सुरगो भाभी के बहुत से बच्चे हैं। सबके लिए दूध सम्भालकर रखना पडता है। न सम्भालें तो सारा का सारा ढुलक ढुलककर बह जाय।"

और बात अजित ने दिमाग मे बसा ली थी—यह है चोली का उपयोग। एक तरह से कटोरी का काम करती है चोली। दूध नहीं फलता। ठीक भी है एहतियात बरतना चाहिए। दूध—फिर असल दूध कितनी मुश्किल से मिलता है। एक दिन फल गया था तो केशर मा ने सात आठ तमाचे जडे थे अजित मे "एहतियात नही बरतता!" इसलिए सुरगो एहतियात बरतती है

१ भइया सभी के घरो में जानकारी कर लो—किसकी है यह चोली ?

और सुनहरी है भी बहुत एतहियाती। किस तरह सम्भालकर दूध रख रखा है। आगे, जब उसके बच्चा होगा—तब पिलायेगी। औरत समझदार है। छोटी छोटी चीजो का ध्यान रखती है और सुकुल पल्ले दरजे का लापरवाह।

अजित की निगाह पीठ मे गहरे तक खुपी जा रही हैं शरीर फिर वैसी ही उत्तेजना और लपटो से भर उठा है। करवट बदलता है यह सब सुनहरी की पीठ देखने से हो रहा है

लगता है, तूफान थमा है

पर इस तूफान को थामने की इच्छा अजित मे नही। उसकी पीठ के पीछे चली गयी है सुनहरी, इसके बावजूद लगता है सुनहरी का वह सारा शरीर अजित के सामने है

पीठ, साडी, ब्लाउज फिर चोली अजित एकदम करवट बदलकर फिर से अपने आपको उसी तूफान के हाथो मे झोक देता है। कैसी अजीब बात है ? तूफान अच्छा लगता है आदमी को ?

सुनहरी ने ही तो कहा था, उस रात जो कुछ किया अजित ने, 'उसके बाद तू बच्चा नही रहा—मद हो गया !'

और मद वही जो यह सब करता रहे !

यही कुछ तो कुन्दा कर रहा है शायद सुरेश जोशी और जया मौसी के बीच भी यही कुछ है और पुराणिक—जो मैनपुरीवाली के पास घण्टो-घण्टो बैठता है ? सुनहरी ने केशरमा को बतलाया था—सहोद्रा ने श्रीपाल-सिंह ड्राइवर को फसा लिया है ! सब मद ! सब साबित करते है कि वे मद हैं ! इसमे गलत भी क्या है ? अजित हौले से अपना कापता हाथ सुनहरी के मासल जिस्म पर रख देता है तूफान और तेज

सो चुकी है शायद ? अच्छा ही है। सुनहरी की बाह से हौले हौले इस तरह साडी का सरसराता है जैसे प्याज का छिलका साडी रेशम की है—जरा मे ही सरककर कमर पर झूल जाती है धीमे धीमे अजित के हाथ की सुरसुराहट तेज होती जा रही है और और

फिर यह सरकता हुआ हाथ और आगे बढता है—नीचे—कमर तक ऊपर सुनहरी की कनपटियो तक सुनहरी का शरीर हिलता है

बहुत धीमे धीमे फिर जरा जोर से। डर जाता है अजित सुनहरी एक करवट लेती है—अजित के चेहरे के सामने चेहरा ले आती है आखें बन्द।

आह सो रही है। अच्छा है। बहुत अच्छा है अपने पूरे बदन को हल्के से सरकाते हुए अजित सुनहरी से सटा देता है अजब, अनाखी आधी और तूफान बारिश की फुहारा जैसी। सुनहरी उसी तरह आखें मूदे पडी रहती है—गहरी नींद म है। बेसुध। अजित के लिए सब कुछ अनुकूल। अजित उसे कस लेता है और कसता है। अचानक सुनहरी भी बाह फेंक कर उसे कसने लगती है जाग रही है शायद। अजित के भीतर डर का एक हलका झोंका उठा है पर व्यथ! अजित ने जिस तरह कसा है सुनहरी को, उससे कई गुना ज्यादा कसन सुनहरी की अपनी है। नींद म होती तो ऐसा कर सकती?

नही नही सब जान बूझकर कर रही है। और अजित भी तो यानी सुनहरी मान चुकी कि अजित मद है। यानी अब उसके और सुनहरी के बीच लगभग कुछ वैसा ही जैसा कुन्दन और मास्टरनीबाई के बीच, या सहोद्रा और श्रीपालसिंह के बीच, या फिर पुराणिक और मैनपुरीवाली के बीच

अजित का हाफना तेज है।

सुनहरी का और तेज।

लगता है अधेरा हो गया है

खट खट् खट खट!

सुनहरी एकदम उछल पडती है। साडी ठीक करती है फिर अजित की ओर घुडकी देकर कहती है, 'तू सो जा चुपचाप!"

"कौन है? चीखती हुई सुनहरी दरवाजे की ओर बढती है

"मुकुल जी हैं?

अजित करवट लेकर लेट गया है। कान सजग। जबडे कसे हुए।

सुनहरी ने दरवाजा खोल दिया है। "अरे आप?"

'कैसी हा सुनहरीबाई?" एक मद आवाज। यह आवाज अजनबी है। कान दिये हुए अजित सोचने लगा है—'ससाला! अजित के भीत एक गाली फूट पडी है। फिर एक हिदायत। केशर मा के सामने एक वा

किसीको लेकर बोल गया था वह—यही साला शब्द—गाली। और केशर मा ने थप्पड दिया था—'गाली बकता है? कमीन है क्या? यह नीचो जैसी बात कहा से सीखी तूने! खबरदार जो कभी गाली बकी। सिर तोड़ दूगी तेरा!

और अजित ने तय किया था कि अब गाली नही बकेगा। पर आज अनायास ही मन म फूट आयी गाली। क्यो? लगता है, जैसे गलत नही है। कभी-कभी खीझता हुआ आदमी गाली बकता ही है। अजित के साथ भी यही हुआ है। मालूम नही कौन आ मरा सब मजा खराब!

"यह कौन है?" अजनबी मद पूछ रहा है।

"हमारी बुआ का लडका है। यही रहती हैं पास मे। आज मेरे पास छोड गयी हैं। सो गया है। मैंन कही आने जान नही दिया ना!"

"जमना कहा गया है?"

"भाग छानी फिर चले गये। अब आयेंगे रात तलक।"

"अच्छा। यह लो, तुम्हारी चीज। चार आन भर की है। इसी डिजाइन के लिए कहा था न तुमने?"

यानी कोई चीज दे रहा है सुनहरी को! पर है कौन? अजित करवट लिये सोच रहा है। काश देख सकता इस आदमी को! पर अभिनय ही करना होगा। 'चार आने की चीज'—मतलब सोना होना चाहिए। जरूर कोई सुनहरी का अपना होगा। कोई मैकेवाला। ऐसा कोई रिश्ता तो सुनहरी से अजित का है नही कि उसके असल मैके रिश्तेवाले अजित को जानें। यह तो महल्ले का रिश्ता है। ऐसे ही रिश्ते बनाये बिगाडे जाते हैं। इनका कोई मतलब नही।

"अच्छी है।" सुनहरी का खुश जवाब।

"और सुनहरी रानी ये रहे टिकिट—रात को नाइट शो देखना है मेरे साथ—तुम्हारा और सुकुल का टिकिट है।"

"पर पर दो नही, मुझे तीन टिकिट चाहिए।"

"तीसरा किसके लिए?'

"यह लडका जो है।" सुनहरी कहती है, "आज शायद मेरे पास ही रहे और फिर यह हो नही सकता कि इसे यहा छोड दें।"

"ठीक है यह मेरे वाला टिकिट भी रख लो। अब तो खुश ! चित्रा टाकीज पर ठीक नौ बजे। चलता हू।" फिर वह लौट जाता है।

अजित कान गडाये हुए है—उसके जाने की आहटें आ रही हैं फिर गायब। जा चुका है।

सुनहरी बकस खोलती है। कहती है, "उठ जा ! शैतान कहीं का। आज अपने साथ साथ मुझे भी फसा देता !"

अजित आखें खोल लेता है। पूछता है, "कौन था ? रात सिनेमा जाओगी ना तुम ?"

"तुझे भी तो चलना है।" सुनहरी ने वह 'चार आने भर वाली' चीज बक्स के डिब्बे मे डाल दी है। अजित के पास आ बैठती है, "चलेगा ना ?"

"पर केशर मा "

'बुआ अस्पताल से आ गयी तो उनसे मैं कह दूगी न आयीं तो मेरे साथ तू है ही। क्या ?''

"ठीक है। अजित उठ बैठता है।

"कहा जा रहा है ?"

"मास्टरजी के यहा, आज जल्दी पढ आऊगा।" अजित चल पडा है। सुनहरी चुपचाप बैठी है।

सुनहरी की बैठक से उतरकर अजित गली मे आ पहुचा है। आज धूप कुछ ज्यादा तेज है। जब धूप तेज होती है तो गली एक तरह के कर्फ्यू मे डूब जाती है। आर्मी मूवमेंट की तरह सिर्फ छोटे बच्चे मा-बाप की नजरें चुरा कर गली मे आ जाते हैं—घूमते-टहलते हैं, अण्टे खेलते हैं, गप्पें करते हैं, गालिया बकते हैं और गाहे-बगाहे मार-पीट भी कर बैठते हैं।

कुछ ऐसा ही मौसम है।

छोटे बुआ, मोटे बुआ और गली के कुछ बच्चे घूम रहे हैं। मोटे बुआ अचानक अजित के पास आ पहुचता है, "पण्डित, अण्टे खेलेगा ?"

अजित सोच मे । क्या 'हा' कर दे ? उसका जी भी बहुत होता है अण्टे खेलने को, पर केशर मा डाटती हैं—'यह एक तरह का जुआ है—बुरी बात !'

मोठे बुआ अजित की दुविधा समझ गया है । कहता है, "अबे, आज तो केशर मा भी घर पर नही हैं । आ, हो जाये एक दो दौर ?"

"ठीक है ।" अजित उसके साथ हो लिया है । इसी तरह तो मौके निकालकर खेलता है, वरना घर मे बन्द । कभी कभी झल्ला पडता है अपने-आपपर । क्यो इस घरमे पैदा हुआ ? गली पार कुम्हारो की बस्ती है । मस्ती से बच्चे घूमते रहते हैं, जो चाहें खेलते हैं, जो चाहें खाते हैं । न जागने का बन्धन, न सोने का । यह भी क्या ठीक है कि हर पल अजित किसी और के फैसले पर चले ? वह कहें जागो, तो जाग जाये ! वह कहें सो जाओ, तो सो जाये !

अण्टे फिक रहे हैं। चोट दर-चोट । मोठे बुआ कुछ ज्यादा ही माहिर है। पढ़ने में जितना फिसड्डी है, अण्टे पीटने मे उतना ही तेज । श्रीपाल ड्रायवर के मकान के पिछवाडे मोठे बुआ ने एक अण्टे का निशाना लिया तो लुढकता हुआ अण्टा नाली मे घुस गया "अरे रे रे !" मोठे बुआ चिल्लाया । नाली मे झाकने लगा । सब ठिठके रह गये ।

मोठे बुआ ने लगभग नाली म मुह घसा दिया—अन्दर अन्धेरा । दूर-दूर तक अण्टा नही नजर आता ।

छोटे बुआ ने भुनभुनाकर कहा, "झाला ! तो ह्या नाळीतून श्रीपालाची नाळी मधे गेलो—ह या गोष्ट नक्की समझा !"[1]

"ना ! " मोठे बुआ ने विरोध व्यक्त किया," "एकदम नाली मे घुस ही गया ।" बडबडाता हुआ, "तो इथेच् अटकला आहे ।"[2]

'दिसतोय् का ?'[3] छोटे बुआ ने उस पर झुकते हुए सवाल किया । अजित एक ओर खडा था ।

१ हो गया । वह इस नाली में से श्रीपाल की नाली में चला गया—यह पक्का समझो !

२ वह यहीं अटका हुआ है ।

३ दिखता है क्या ?

"नाही दिस त नाही, पण मला असे लागत "[४]मोठे बुआ की नाली म से आवाज आयी। सहसा उसने उछलकर मुह बाहर खीच लिया।

'काय झाला भाऊ ?'[५] छोटे बुआ भी पीछे उछल गया—साथ ही अजित भी।

मोठे बुआ के सिर म नाली का काला कचरा अटक गया था। बोला, "इसमे काक्रोच घुसा है रसाला।" वह नाक मुह सिकोडता रहा। सहसा अजित से कहा, "पण्डित, तू दुबला पतला है यार! जरा घुस के तो देख—अण्टा है क्या ?'

अजित ने नाक सिकोड ली, "उहु! मैं नाली मे मुह नही डालूगा। हा, तुम कहो तो श्रीपाल ड्राइवर के घर मे जाकर देख आऊ। वहा से साफ साफ नजर आ जायेगा।

'हा, यह ठीक है।' सब बोले और अजित मुडकर श्रीपालसिंह के घर म घुस गया। ठीक श्रीपाल के कमरे के पीछे यह नाली बहती है। उस तरफ अक्सर कोई नही जाता। नाली के बाद गली की ओर एक दीवार खीच रखी है श्रीपाल ने। आखिर जमीन नाली की ही क्यो न हो—उस पर कब्जा रहना चाहिए। अजित को चुपके चुपके जाना होगा। अगर श्रीपाल ने देख लिया तो पूछेगा और बतलाने पर वह केशर मा से शिकायत कर सकता है—'अजित अण्टे खेलता है!'

अजित ने इस ओर घुसते ही सिर झुका लिया था। पिछली खिडकी खुली हुई थी और उसम से श्रीपाल के हसने की आवाज आ रही थी। अजित सिर झुकाये खिडकी के नीचे से निकला तो रुक जाना पडा। क्या पागल हो गया है श्रीपाल? अकेला बैठक म बैठा हस रहा है। और अगर उसके साथ कोई है तो कौन है? उसने सिर ऊपर किया।

कमरे के कोने मे श्रीपाल के पलग पर बैठी सहोद्रा पर नजरें जा ठहरी। अजित को धक्का लगा। फिर याद आया। सुनहरी बाली थी—"जब यह मरी सहोद्रा रोज रात उसके खाते वखत उसके सामने जा बैठती है"

४ नही दिखता नहीं पर मुन एसा लगता है।
५ क्या हुआ भइया ?

अजित देख रहा है कि भर दोपहर बैठी है। सामने ही नही—पलग पर। वह लेटा हुआ और सहोद्रा उसके साथ नही नही, यह तो कुछ वैसा ही पोज हुआ जैसे थोडी देर पहले अजित लेटा था और सुनहरी उसके पास पलग पर बैठी थी। ये पोज यू ही बेमतलब नही होते अब सुनहरी से थोडा-बहुत जुडकर अजित भी काफी कुछ समझने लगा है। फिर वह बच्चा रहा नही—मद है। अजित अण्टा भूल गया है—उधर ही देखता है।

सहोद्रा कहती है, "वेशर मा ने कहा था जिस बखत मर्द-औरत साथ हो उस बखत उस कमरे मे जैसी तसवीरें लगी होगी, वसी ही सन्तान पैदा होगी इसीलिए तो कहती हू तुमसे—दो चार तसवीरें ले आओ।"

"कौन-सी तसवीरें ?"

"फिलमवाले अशोक कुमार की ले आओ, कृशनजी की ले आओ, भरतमिलाप का सीन ले आओ ऐसी ही।" होठ काटती हुई सहोद्रा धरती पर नजरें लगा देती है।

"तुझे बेटे की बहुत चाह है सहोद्रा ?" श्रीपालसिंह की आवाज भारी हो जाती है। धीमे से करवट बदलकर वह सहोद्रा की बाह पकड लेता है।

सहोद्रा की इकहरी देह और इकहरी हो गयी है—लता-सी।

बेशक ! अजित की सासें तेज हो जाती ह। वही बात। कुदन दरजी और मास्टरनी बाई वाली। सुनहरी की सारी बातें समझ म आ गयी हैं। पर ये तसवीर, बच्चे की चाह यह कुछ घपला है। इतना तो समझ मे आता है कि सहोद्रा के कोई औलाद नही है।

अजित की कमर चुके झुके दद कर आयी है। सामने नाली। अण्टा देखना है इसमे। अजित निगाहे दौडाने लगता है। आण्टा मिल जाता है, पर उठाने का जी नही होता। नाली मे सन गया है। कुछ घिन के साथ उठा लेता है। नल पर धोना होगा। झुककर वापस होने को ही है कि फिर चौक जाता है, श्रीपाल की आवाज आती है, "अरे नही-नही, सहोद्रा नसीम की फोटू तो लगी रहने दे। बडी बढिया नचनिया है। मैं बहुत पसन्द करता हू उसे।"

"नही। अब तो इस कमरे मे मरदा की तसवीरें ही रहेंगी। वेशरी मा ने कहा था—यह भी जरूरी है। लडकी चाहो तो अच्छी अच्छी औरता की

तसवीरें होनी चाहिए, लड़या चाहो तो मरदो की "

श्रीपालसिंह ठुनठुनाकर हस पडा है। अजित सरकने लगता है। श्रीपाल की अतिम बात सुनाई पडती है उसे, "तू भी कमाल की औरत है भाई !"

अजित बाहर आ गया है।

"मिला ?" मोठे बुआ सामने।

"हा, लो।" कहकर अजित न अण्टा उसे दे दिया है। खुद हाथ धोने चला जाता है। लौटकर खेलेगा, पर चौंक जाता है—काका आ रहे हैं। अण्ट बन्द। अब नहीं चल सकते। मोठे और छोटे फसेंगे। अजित राह बदल कर गली की ओर चल पडा है।

अभी गली पार भी नही कर पाता कि पीछे से मोठे और छोटे बुआ भागे चले आते हैं—हाफते हुए।

"क्या हुआ ?"

"होगा क्या यार ! " छोटे बुआ जवाब देता है, "काका निकल पडे बिधर से। पर तू इधर किधर जा रहा है ?"

"मैं मास्टर जी के यहा जा रहा हू—खेलूगा।"

"चल, हम लोग बिधर हुजरात पे जा रहे हैं—खेलने।'

साथ चल पडते हैं तीनो।

"मोठे बुआ, एक चक्कर है यार—बतलाओगे ?"

"क्या ?"

और अजित श्रीपाल और सहोद्रा वाला सीन तथा बातचीत सब बतलाने के बाद सवाल करता है, ' मेरे पल्ले कुछ नही पडा।"

"पडेगा कैसे ? तुने अकल होगी तभी ना पडेगा।" मोठे बुआ जवाब देता है, "अबे इत्ती बात नहीं समझा तू ? सहोद्रा गोरी भूरी औरत है, बिसको बच्चा भी वैसा ही होना चाहिए और बिसका मरद है ना—राम परसाद—वह स्साला रेल का भोपू ! बिस भोपू से जो बच्चा होयगा, इजिन की माफिक ही होयगा। इसीलिए सहोद्रा ने डिलेवर पर चक्कर चलाया है। डिलेवर जरा जोरदार आदमी है—ऊचा-पूरा पठानिया मद ! बिसका बच्चा भी तो बिसकी ही तरह होगा ?

अजित समझकर भी नही समझ सका है। कैसे समझेगा ? यह जो सहोद्रा, रामप्रसाद और श्रीपाल ड्राइवर का चक्कर है—ज्योमेट्री की प्राबलम जैसा लगता है। बच्चा इसमे नाइण्टी का ऐंगल और जब तक इस नाइण्टी के ऐंगिल को न समझा जायेगा—यह पूरी फिगर समझ नहीं आयेगी। पर अजित ने तय किया है—समझेगा जरूर किसी दिन।

भटनागर मास्टर साहब का घर आ गया है। अजित उन दोनो को छोडकर सीढियो की तरफ मुड जाता है। वे आगे चले जाते हैं। इधर सीढियो पर चढ़ते हुए अजित को थमना पडता है। ऊपर झगड रहे हैं सब— मायादेवी, जया मौसी और मास्टर जी

कुछ आवाजें सीढियो से लुढकती हुई अजित पर गिरने लगी हैं

"हमारी जात क्या खतम हो गयी है ? जो उस इक्के तिकडे मे बेटी देंगे ? आखिर हमारी भी कोई इज्जत है, खानदान है, तेरा क्या— तुझ पर तो इतराकर जवानी चढी है।"

"मगर मेरे लिए तुम्हे बिसन बाबू का ही घर दिखा ?" जया लग भग बौखला पडी है।

"क्यो क्या खोट है उनमे ? माथुर हैं। खानदानी हैं। पैसेवाले नही हैं तो क्या हुआ ?"

"पर माया, बिसन पढा लिखा नही है। आखिर यह तो सोचना ही होगा "बीच मे ही मास्टर जी की राय।

"पढा लिखा नहीं है तो क्या हुआ ? उसका बाप दीवान रहा है पुलिस मे। मैंने बिसन की मा से बात कर ली है। कहती हैं कि दुकान करवा देंगी "

"वह दुकान चला सकेगा ? पागल है। वह कम्बख्त तो मोहम्मद रफी बनने के चक्कर मे सारे घर को बरबाद कर डालेगा। उसके मत्थे लडकी बाध दोगी ? फिर शक्ल-सूरत "

"मरदो की शक्ल सूरत नही देखी जाती !" मायादेवी की गरजन, "जब तुम मुझे ब्याह के लाय तब अपनी शक्ल सूरत देखी थी तुमने ? था क्या तुमम, उमर, अक्ल, चेहरा मोहरा क्या था ? बताओ ता।"

"मै तुमस क्या बहस करू ! "मास्टर जी की दुखती आवाज।

"जो भी हो—मैं बिसन के बारे मे सोच भी नही सकती। " अचानक जया की रुआसी चीख आती है।

एक जोरदार आवाज—दरवाजे पीटने की। जाहिर है कि जया मौसी अपने कमरे मे बन्द हो गयी हैं।

जाये या न जाये ? अजित सोचता है, पर चल ही पडता है। देख चुका है कि मास्टर जी के घर का यह रोज का शुगल है। चलता रहता है।

ऊपर आ पहुचता है अजित। मिन्नी अकेली है बरामदे मे। दोनों सहमे हुए एक दूसरे को देखते है। अजित उसके पास जा बैठना है—खामोश। मुडकर निगाहे उसन जया के कमरे पर लगा दी हैं जिसके दरवाजे बन्द हैं।

भीतर से मास्टर जी और मायादेवी की बहस सुनाई पड रही है—

"तुम कभी अकल की बात भी सोचोगे या नही ?" मायादेवी घुरघुराती है।

"क्या हुआ ?"

"जब मैं जया से बात करती हू तब तुम बीच मे क्यो उछल पडते हो ?'

"पर सोचो तो, बिसन भी कोई लडका है ? चेचक के दाग, काला रग, उस पर एक आख गायब पढा लिखा प्राइमरी तक नही और तुम्हारी बहिन न सिर्फ सुदर है, बल्कि ग्रेजुएट भी है। तुम क्या कब्रिस्तान मे गमला लगाने चली हो ?"

"ओफो ! तुम बूढ़े क्या हुए हो—दिमाग से एकदम ही खत्म हो गये। देखो, अगर तुम्हारे हाथ पैर और अक्ल काम नहीं करते, तो भगवान की खातिर चुप रहा करो ! मायादेवी पीसते हुए शब्द बोल रही हैं।

"ठीक है। जो तुम्हारी मरजी मे आये सो करो !" मास्टर जी उठकर चल पडते हैं।

"सुनो !" मायादेवी टोकती हैं फिर कहती हैं, "तुम क्या समझते हो कि मैं बिसन से सचमुच ही उसका ब्याह कर दूगी ?'

"और क्या समझू ?"

"अगर तुमने यही समझा है तब कहूगी कि सचमुच सठिया गये हो तुम !" मायादेवी मास्साब को कुछ इस तरह समझाती हैं जसे वह अजित या मिन्नी हों। कहती हैं 'बठो।'

मास्साब रैठ गये हुंगे शायद—कर भी क्या सकते है ? अजित जानता है। उसी तरह ध्यान से सुनता जाता है सब।

"सुनो, जया बिसन से विवाह के लिए इनकार कर देगी यह मैं पहले से जानती हू। उसने इनकार कर भी दिया। इसका मतलब यह हुआ कि हम तो वर खोज रहे हैं, जया को ही कोई नही जमता ! क्या समझे और जब तक जमेगा नही, जया ब्याह करेगी नही। जया ब्याह करेगी नही तो तुम, हम मिन्नी—सब जीते रहेंगे। उसकी तनखाह घर मे न आये तो जानते हो क्या होगा ? भूखे मर जायेंगे हम ! तुम्हारी पेंशन मे तो एक बखत का मिच मसाला भी नही निकलेगा—अन्न तो दूर की बात !"

"तो तो तुम यह कहना चाहती हो कि जया को अनब्याही बिठाये रहेंगे हम लोग ?"

"ऐसा क्यो—विवाह होगा, पर मिन्नी ग्रेजुएशन कर लेगी तब।"

"और मिन्नी के ग्रेजुएशन तक हम इस बेचारी मासूम पर ज्यादती करेंगे ?" मास्साब की आवाज पिघल ही नही गयी है, रुआसी हो चुकी है, "जया की उम्र ढल चुकेगी—तब होगा उसका विवाह ? कौन करेगा ?"

"ऐसे उम्र नही ढल जाती।"

"पर सोचो तो माया—यह अन्याय है, जुल्म है"

"ठीक है। तब तुम कर दो उसका ब्याह और मरो भूखे !" मायादेवी झुझलाती हुई उठ पडी हैं। अजित नजरें झुका लेता है। वह बरामदे की ओर ही चली आ रही हैं। भारी-भरकम शरीर पर फुर्ती मास्साब से हजार गुनी। तभी तो शुरू-शुरू मे अजित ने मायादेवी को मास्साब की बडी बेटी समझ लिया था।

वह सीधी गैलरी मे आ जाती है। पुकारती हैं, "कुदन ! एय कुदन !"

"क्या चाची ?" नीचे—गली से—कुदन की आवाज आती है।

"जरा ऊपर तो आ रे। ब्लाउज का नाप ले जा।"

"आया, अभी आता हू चाची, पाच मिनट मे।"

मायादेवी पुन बरामदे मे आ पहुची हैं, "तुम दोनो यहा क्या कर रहे हो ? जाओ छत पर खेलो !"

मास्टर साहब भी आ पहुचे हैं। बुझे परेशान-से स्वर मे कहते है, "हा

हा, आओ—छत पर आ जाओ। वही खेलना।"

बरामदे से ही सीढ़िया बनी हैं छत के लिए। मास्साब धीमे धीमे सीढ़िया चढने लगते हैं और उनके पीछे पीछे घबराये हुए-से अजित और मिन्नी। अजित ध्यान देता है—निचली सीढ़ियो से एक गुनगुनाहट उभरती आ रही है—

"हो मने लाखों के बोल सहे, सितमगर तेरे लिए
सितमगर तेरे लिए

छत पर पहुचकर मास्टर जी छाह की तरफ दरी बिछाकर लेट रहे हैं—अखबार हाथ मे

मिन्नी साप सीढी का बोड ले आती है। बिछा लेती है। अजित से कहती है, "चल ! "

शायद 'कुट्टी' की बात भूल गयी। अजित चुपचाप गोटिया फेंकने लगता है। सीढी मिलेगी तो ऊपर चढ जायेगा, साप के मुह पर मोहरा आया तो पूछ तक नीचे उतर जायेगा

नीचे ? अजित खेलकर भी खेल मे रम नही पा रहा—जया मौसी का विवाह बिसन से करने की बात थी। इसी गली में रहता है। मोठे बुआ, छोटे बुआ, अजित और भी बच्चे उसे चिढाते है—पढा लिखा नहीं है, बद सूरत है, काना है तिस पर अजीबोगरीब हरकतें करता है और उन हरकतो में भी गभीर रहता है। बीच मे उसने लकडी का एक खोखा बनाया था और फुटपाथ के फोटोग्राफरो की तरह उसके पिछले हिस्से मे काला बुरका डाला था। इस बुरके मे मुह डालकर वह बोला करता था

'ये आल इण्डिया रेडियो है। अब आप बिसन माथुर से एक गीत सुनिये, जिसके बोल हैं—'आ जा मेरी बरबाद मोहब्बत के सहारे है कौन जो बिगडी हुई तकदीर सवारे आ जा हो आ जा " सुननेवाले तालिया बजाकर हसते।

ऐसे बिसन माथुर को जया मौसी का पति चुना है मायादेवी ने ? अजित का मन उदास हो गया। बेचारी जया मौसी !

"अब ये लाल मुह के बन्दर देश सम्हाल नही सके तो कहते हैं—आजाद कर दिया ! बदमाश हैं !" सहसा मास्टर जी बडबडाये थे।

अजित और मिनी उन्हें देखने लगे। लाल मुह के बन्दर ? जाहिर है कि अगरेजो के लिए कहा होगा। अजित ने कई लोगो से अगरेजो का यही परिचय सुना है। इतना जानता है कि अगरेजो ने भारत को गुलाम बना रखा है। गाधी जी, नेहरू जी, सुभाष बाबू पटेल जी सब तो लड रहे हैं आजादी के लिए। चौंककर पूछता है, "तो आजादी मिल जायेगी मास्साब ?"

"हा, बेटा। दो दिन बाद हम आजाद हो जायेंगे—पन्द्रह अगस्त को!" खुशी म छलछलायी हुई आवाज निकलती है मास्साब की। अजित को लगता है, रोने लगे हैं। अजित कुछ पूछे इसके पहले ही कहते हैं, "पर एक बुरी बात हुई है बच्चो! अगरेज हिन्दू मुसलमानो मे जहर बोये जा रहे हैं।"

'जहर? " चौक पडा है अजित, "कैसे मास्साब ?"

'बेटा, वह इस देश के टुकडे किये जा रहे हैं—मुसलमानो के लिए एक टुकडा हिन्दुओ के लिए दूसरा! कितना गन्दा जहर!"

अजित कुछ समझ पाता है, कुछ नही।

"पता नही गाधी बाबा को भी कैसे लाचार कर दिया होगा? वरना वह मानते? कभी नही! वह तो कहते रहे हैं कि हिन्दू मुसलमान दोनो को मिलाकर ही तो हिन्दुस्तान बनता है। " और भी जाने क्या कुछ बडबडाते रह थे मास्साब, पर अजित नही सुन सका था। नीचे से जया मौसी की पुकार आ रही थी, "अजित! अजित!"

"आया मौसी।" और अजित दन-दन् जीने उतरने लगा था।

उनकी आखें लाल थी चेहरा उतरा हुआ पर नजरो मे गिडगिडाहट जैसे अजित स प्रार्थना कर रही हो। अजित का मन भर आया था। सुन चुका है। सच ही तो बेचारी जया मौसी पर कितना बडा अन्याय करने जा रहे हैं ये लोग? जया मौसी का बिसन माथुर से ब्याह? छि छि!

वह अजित को कमरे मे ले आयी थी। दरवाजा बन्द कर लिया था। और चुप देखने लगी थी उसे।

अजित ज्यादा ही बेचन हो गया था, "क्या बात है मौसी ?'

"तू अब भी मुझसे गुस्सा है रे ?"

"नहीं मौसी। मैं—मैं तो गुस्सा ही नही हुआ था तुम पर। मगर बात क्या है ?"

"तुझे एक बार फिर से सुरेश जोशी के पास जाना होगा। जा सकेगा ? उसके बाद तुमसे कभी कुछ नही कहूगी। कसम खाती हू फिर तुझे कभी परेशान नही करूगी, बस, सिर्फ एक बार मेरा वह काम कर दे।" वह डरते डरते कह गयी थी।

"चिट्ठी पहुचानी है ना ?"

'हा।"

'लाओ।' अजित ने हाथ बढा दिया आगे—चेहरे पर दृढता। निश्चय कर चुका था—जया मौसी का हर काम करेगा। वह बेचारी सीधी सादी हैं तो ये लोग बिसन माथुर जैसे काने-खोतरे आदमी से उसका ब्याह कर देंगे ? ऐसी जया मौसी की तो मदद जरूर करनी चाहिए। उन्हें कोई भी तो प्यार नही करता इस घर मे।

सुरेश जोशी का चेहरा फिर से आखो में उभर आया। लम्बा चौडा, खूबसूरत आदमी पढा लिखा भी है। नेमप्लेट पर लिखा था—एल० डी०सी०। ऐसे आदमी से जया मौसी का ब्याह हो तो भी ठीक, पर वह बिसन माथुर—मोहम्मद रफी का भोंपू !

जया ने खत हाथ म रख दिया, "जा—जवाब भी लाना।"

"हा।"

'और किसी से कहना मत !"

मैं जानता हू।" अजित ने कहा। दरवाजा खोलने के लिए बढा कि मुड आया "मौसी ! '

"क्या बात है ?"

"एक बात कहू—गुस्सा तो नही होगी तुम ?" अजित ने कुछ सकोच के साथ कहा।

"बोल ना ! मैं कभी गुस्सा हुई हू तुझसे ?"

"मास्टरनी बाई तुम्हारा ब्याह बिसन से कर रही हैं ना तुम कभी मत करना !'

और जया मौसी हतप्रभ होकर चेहरा देखती रह गयी थी उसका।

"हा, ठीक कह रहा हू। कभी मत करना वह क्या तुम्हारा पति होने के योग्य है? नही नही, इसके बजाय तुम जोशी से ब्याह कर लो।"

जया मौसी हक्की बक्की हो रही। अजित तेजी से मुडा। दरवाजा खोला और जल्दी-जल्दी सीढिया उतरकर गली मे आ गया।

पत्र देकर लौटा—जवाब साथ मे था। जवाब मे सुरेश जोशी ने क्या लिखा—अजित नही जानता। बस, इतना जानता है कि जाते जाते उसने भी सुरेश जोशी को यही सलाह दी थी, "जोशी बाबू!"

वह जया का पत्र पढकर बहुत गभीर हो गया था। चिन्तित भी। पूछा, "क्या एक बात कहू?'

"बोल!"

"तुम जया मौसी से ब्याह कर लो।"

और लगभग जया की ही तरह उसे हक्का बक्का छोडकर अजित बाहर निकल आया था। खुश था कि शायद ठीक ही किया। बार-बार उसे लग रहा था जैसे ठीक ही किया है। अजित जानता है कि जया मौसी हिन्दी वाली हैं और जोशी मराठी वाला। पर अगर हिन्दी निबाहने के लिए बेचारी जया मौसी का ब्याह बिसन माथुर जैसे गधे से ही होना है तब जोशी जैसा मराठी वाला ही ठीक।

जवाब लाकर जया के पास पहुचा दिया था। फिर रुका नहीं। सीधा घर पहुचा। घर मे भी सुनहरी के पास। उसने पूछा, "पढ आया?"

"हा!" झूठ बोल गया था वह। सच तो यह है कि आज पढने में मन नही लगेगा उसका। कितना बडा अन्याय हो रहा है जया मौसी के साथ! अजित पढ सकेगा? कभी नही। गणित, अगरेजी, हिन्दी सब गड्डमड्ड हो जायेंगे। अजित का दिमाग बिलकुल काम नही करेगा।

सुनहरी चाय बना रही थी। अजित को भी पिलायी। तभी सुकुल आ पहुचा। उसकी आखें सुर्ख थी। हाथ मे एक दोना लिए हुए था। दोने मे रसगुल्ले। लाकर सुनहरी की ओर बढा दिये थे। बोला, "थाली म तो लगा दे जरा। दो अजित भइया को भी देना।' फिर वह पलग पर बैठ

गया—अजित के पास। जेब से बीडी निकाली, जलाकर कश खीचने छोडने लगा। बार बार पलकें झपकता, बार-बार अकारण ही अजित की ओर मुसकराने लगता। अजित को यह समझते देर नही लगी थी कि भाग चढी हुई है उसे।

सुनहरी ने सिर्फ उसे घूरा, फिर चुपचाप एक तश्तरी मे रसगुल्ले रख लायी। लगभग पटक्ते हुए सुकुल के आगे रख दिये।

सुकुल झुका, एक रसगुल्ला उठाया और मुह मे डालकर बोला, "खाओ अजित भइया, तुम भी खाओ। असल देशी घी के हैं।"

"तू रहने दे अजित ! ऐसे भूखा नही मरा जा रहा। इस भसे को ही खाने दे। इसी के बाप दादे इसे भुखमरा छोड गये थे !" सुनहरी बडबडायी।

सुकुल जोर से हस पडा। अजित चौंककर उसका चेहरा देखने लगा। सुकुल हसता ही जा रहा था—जोर जोर से, पेट पकडे हुए। वह हाफने लगा। आख से आसू निकल आये

'देखो देखो मरा नसेलची ! पागल हो गया ! अरे, काहे को मुह से दस्त कर रहा है ? तेरे मुह मे मक्खिया चली जायेंगी हत्यारे !" सुनहरी उससे कही ज्यादा पागल होकर चीखने लगी थी।

और सुकुल हसे जा रहा था। एक बार तो अजित पर ही ढुलक गया होता। अजित एकदम दूर हट गया। सुकुल का सिर पलग के सिरहाने से जा टकराया—खटाक ! उसने जोर से सिर हिलाया। हसी थम गयी। हौले हौले कनपटी का ऊपरला हिस्सा सहलाने लगा।

"ऐसे ही किसी दिन मरेगा ! रेल के नीचे आ जायेगा ! हा !" सुनहरी गरजी।

'मर जाऊगा तो क्या हुआ ? तेरे बाप-भइयो को तो जेवर दे ही चुका ? मकान तुझे मिल गया अब क्या है जान लोगे तुम लोग ?"

'ए मरा झूठा ! " सुनहरी का चेहरा पिट गया। अजित हैरान। पहली बार उसने सुकुल के मुह से यह तडप सुनी है। वैसे सब कहते हैं कि सुनहरी ने धीरे धीरे करके सुकुल का सारा वैभव पचा लिया है। जेवर, मकान, दुकान की पगडी—सब। पर किसी बार सुकुल से नही सुना था—

आज पहली बार सुना।

'लो अजित भइया--कहती है मैं झूठा। अच्छा भइया, मैं ही झूठा सही। ये माटी पत्थर, सोना चादी तू अपने सिर पे रख के ले जाना। मैं तो जैसा आया हू, वैसा ही जाऊगा। जो खा-पी लिया, सो साथ " वह फिर रसगुल्ले खाने लगा एकदम निस्पृह भाव से।

सुनहरी गालिया बके गयी।

देर तक सुकुल ने जवाब नही दिया था। पर एक बार उबल पडा, "देख सुनहरी। मैं तुझे कभी रोकता नही हू। तू मकान, दुकान, जेवर-जमीन से चाहे जो करती रह! तू उस महेसरी सेठ के लौंडे के साथ सिनेमा देख, बाजार घूम, उसका माल खा, अपनी जवानी पिला मैं तेरे को रोकता नही। रोकूगा भी नही, पर मेरे नशे-पत्ते मे टाग अडायेगी ना तो चीर डालूगा! समझी!" वह सरदार मराठे के एकलौते घोडे की तरह हिनहिनाता हुआ एकदम खडा हो गया था।

सुनहरी बुरी तरह सिटपिटा गयी। बोली, "ठीक है। मेरे भाग मे राड होना ही लिखा है—तो हो लूगी! मर मेरी तरफ से!"

"तेरे भाग म सुहागन होके सुहाग नही लिक्खा, सरीफ होके सरीफ होना नही लिक्खा। ऐसे ही मैं यह भी जानता हू कि तेरे भाग म राड होके राड होना भी नही लिक्खा! तू अपनी लैन चलती जा, मैं अपनी लैन जा रहा हू—फालतू मे टकराव मती कर!" वह मुडा और झूमता हुआ एक ओर रखे गिलास मे घडे से पानी निकालकर फिर से पलग के पास आ गया।

उसने गिलास धरती पर रख दिया फिर जेब से एक पुडिया निकाली। पुडिया मे भाग की गोली रखी थी। सुकुल ने मुह फाडा, गोली उछालकर गले मे फेंकी और ऊपर से गट गट कई घूट पानी गले उतार लिया। एक डकार ली और रसगुल्ले खाने लगा।

परेशान और घबराया हुआ अजित उसे देखता रहा—अभी दोपहर भी भाग पी गया था, अब भाग का गोला गटक गया वडा भयानक नशेबाज है!

सुनहरी उसे घृणा से देख रही थी और इसी तरह की बकवास या अजीबोगरीब बातो मे उन्होने एक घण्टा बिता दिया था। इस बीच सुनहरी

खवर ले आयी थी नीचे स। खवर आकर अजित को दी थी, "सुन रे!
वुआ आज रात नही आयेगी। कम्पाउण्डर खवर लाये हैं—वही रखेंगी।"
फिर उसने सुकुल से पूछा, जो अब तक आखें मूदे हुए पलग पर फल गया था, "सुनते हो ?'

वह पलकें मूदे हुए ही गुनगुनाया था, "हू।"

"सनीमा चलोगे ?"

"महेसरी सेठ का लौडा आया था क्या ?'

सुनहरी ने सिटपिटाकर एक वार अजित को देखा, फिर बोली, "हा, आये थे।'

"पन्ना सराफ ने पहले ही वतला दिया था, मुझे।" सुकुल उठ बैठा—मुस्कराता हुआ बोला, महेसरी आज उससे चार आने भर की कोई चीज बनवा ले गया है। मैं समझ गया था कि आज तू सिनेमा जायेगी।"

"हेय मरा नमेलची! ' सुनहरी ने नफरत से कहा, "मैं पूछ रही हू कि तू सनीमा चलेगा कि नही ?"

' हा हा चलूगा। चलूगा क्यो नही ? " वह उठ खडा हुआ, "जरा दस रुपय तो निकाल!'

"काहे वात के ?

अजित हैरत से देख रहा था। कैसी वातें करते है ये दोनो। अजब गुत्थमगुत्था। आधी समझ मे आती है, आधी नही।

सुकुल वोला 'पूछती है काहे के ? तू सनीमा देखना, मैं पार्क मे लेटूगा। खर्चा नही लगेगा ?"

'पर टिकिट ले लिया है तेरा।'

' उसे भी दे दे देखू तो कित्ते का है। वह तो खिडकी पर वापस हो जायेगा।" सुनहरी ने टिकिट लाकर उसकी हथेली पर रख दिया। सुकुल बोला, ' दस रुपय भी रख! ऐसे ही सनीमा देख लेगी उसके साथ ?"

झुझलाते हुए सुनहरी न दस का एक नाट ब्लाउज से निकाला और उसके ऊपर उछाल दिया। सुकुल ने मुस्कराते हुए नोट चूमा, फिर जेब के हवाले करके कहा चल, पहन ले कपडे !"

कुछ भी तो समझ नही आता आया भी नही था। जितना आया वह यह कि जो आदमी दोपहर को टिक्टि दे गया था, वह किसी महेश्वरी सेठ का लडका है। या तो सुनहरी का दोस्त है या फिर सुकुल का। उसने सुनहरी के लिए सोने की कोई चीज भी बनवायी है। और जब इस तरह की कोई चीज किसी औरत के लिए बनवायी जाती है तो उसका मतलब होता है कि वह बनवाने वाले आदमी के साथ सिनेमा देखने जायेगी

सुनहरी जा रही है

सुकुल तभी समझ गया था जब उसे पन्ना सराफ ने बतलाया था। पर अजीब है यह सुकुल। दस रुपये का नोट लिया है। कहता है कि सुनहरी सिनेमा देखे और वह पाक मे सोयेगा। शायद नशे मे है, इसीलिए

वे तैयार होकर चल पडे थे। सुनहरी, सुकुल और अजित। चिन्ना सिनेमाघर के बाहर सडक पर ही मिल गया था महेसरी सेठ का लडका। इत्र महक रहा था उसके कपडा से। होठो पर पान की लाली। उसने सोने के चैन वाली घडी कलाई मे वाध रखी थी—शानदार सिलक्न कुरता और सफेद क्रीजदार पाजामा। कीमती चप्पलें पैरा मे थी। जाहिर था कि पैसे वाला है। सेठ का बेटा है ही

पर अजब सी हरकत की थी महेसरी सेठ के बेटे ने। वह भी महेसरी ही हुआ। इसलिए महेसरी ने। सुकुल, अजित और सुनहरी जैसे ही उसके पास पहुचे—वह फुसफुसाकर सुनहरी से बोला था, "तुम लोग भीतर पहुचो—मैं जरा देर से आऊगा।" और सुनहरी एकदम चल पडी थी। अजित की बाह मे हल्के से झटका दिया, "आ!"

अजित चल पडा। जाते-जाते उसने देखा था—महेसरी सुकुल को कुछ दे रहा है। क्या दिया होगा? शायद पैसे। सुनहरी की ही तरह सुकुल ने उससे भी दस का नोट झटक लिया होगा। हो सकता है कि उसके पास भाग की एकाध गोली और हो? वही खाकर पाक मे लेटेगा।

अजित हाल मे आ गया था। फिल्म शुरू हो चुकी है। उन लोगो के नाम आ रहे है, जिन्होने यह फिल्म बनायी है

वे दोनो एकदम कोने वाली सीटो पर बैठ गये हैं और तभी अजित ने देखा था कि अधेरे मे सुनहरी के पास कोई आ गया है। पूछता है, "ठीक

है ?"

"हू।" सुनहरी सुगबुगायी हुई आवाज मे कहती है।

वह बैठ गया है। बीच म सुनहरी। अजित दायी तरफ है ही।

अजित ने निगाहे फिल्म मे लगा दी हैं। उसे फिल्म बहुत अच्छी लगती है। कभी कभी चचेरे बडे भाई रघुनाथ आते हैं तो वही दिखाते हैं फिल्म, वरना अजित सिफ बोड देखकर सतोष कर लेता है। कई फिल्म ऐक्टरों और ऐक्ट्रेसो के चेहरे भी उसने इसी तरह याद किये हैं, नाम भी। अब यह सुनहरी ने एक फिल्म दिखला दी है उसने क्या, महेसरी ने दिखलायी है। सुनहरी की वजह से। अजित खुश है। बीच मे सुकुल याद हो आया। पाक मे होगा। बडा मूख है। नशे के लिए फिल्म छोड बठा। ऐसा भी कही होता है ? इसम शायद ज्यादा मजा आता।

नाचते गाते हुए हीरा-हीरोइन प्रेम कर रहे हैं। इस ऐक्टर का नाम है, श्याम और ऐक्ट्रेस जो नाच रही है—मुस्करा रही है—यह शायद नसीम। फिल्म हुई शबिस्तान।

शबिस्तान का मतलब नही जानता है अजित। सुनहरी की ओर मुडता है—शबिस्तान माने क्या होता है ? पर सवाल होठो पर ही ठिठक जाता है। वह अधेरे के बावजूद फिल्म की जितनी रोशनी है—उसम बहुत कुछ देख सकता है। वह देख रहा है कि सुनहरी की गोद म महसरी सेठ के बेटे का हाथ है—सुनहरी का भी। दोनो ने हाथ लगभग उसी तरह मिला रखे हैं, जैसे फिल्म मे श्याम और नसीम (शायद नसीम ही है ?) ने मिला रखे थे

छि। वह नही जानता क्यो, पर उसे अच्छा नही लगता। सवाल नही पूछेगा अब। चेहरा मोडकर फिर से फिल्म देखन लगा है। एसा क्यो कर रही थी सुनहरी ? क्या किसी औरत को चार आने भर खाने की चीज देन से उससे साथ हाथ मिलाने का भी हक हो जाता है आदमी को ? फिर ऐसे गोद मे हाथ डाल देने का क्या मतलब ?

अगर हो भी जाता है तो अजित को यह पसन्द नही है।

श्याम और नसीम अब वादियो म दौडे जा रहे ह। थोडी देर बाद घोडे पर बैठ जायेंगे। अजित को सब कुछ अच्छा लगता, पर अब कुछ भी

नही। आखें परदे पर हैं और दिमाग सुनहरी की सीट पर इस तरह जैसे सुनहरी की सीट पर अजित ही बैठा हुआ है। महेसरी के बेटे ने अजित की अगुलियो से खेलना शुरू कर रखा है नही-नही, यह बिलकुल पसन्द नही है अजित को। मन करता है, घर चला जाये।

फिर यही सब तो नही देखा था फिल्म मे ? अजित को उस दिन बहुत परेशान होना पडा था। सुनहरी पर क्रोध आने लगा था उसे। अजीब-अजीब पागलपन की हरकत करती है सुनहरी। और वह महेसरी सेठ का बेटा ? अधेरे मे उसने सुनहरी के गले मे बाह डाल दी थी

इस तरफ हाल का काफी हिस्सा खाली था। आगे पीछे की सीटें दूर-दूर तक खाली।

सहसा एक आवाज से चौंक गया था, "उह क्या करते हो !" सुनहरी फुसफुसायी थी, लडका बैठा है पास मे।"

और अजित ने गरदन नही घुमायी—सिर्फ पुतलिया। महेसरी का बेटा सुनहरी को दोनो बाहो मे भरे हुए था। ऐसे, जैसे मोठे बुआ कभी-कभी मारपीट करते हुए दूसरे लडके को कसकर दबा लेता है !

गुस्सा मोठे बुआ की हरकतो पर भी आता है अजित को—सुनहरी और महेसरी पर भी आ रहा है। फर्क इतना ही है कि मोठे बुआ के झगडे मे सिर्फ मोठे बुआ पर गुस्सा आता है, मगर इस बार दोनो पार्टियो पर आ रहा है।

जैसे-तैसे फिल्म देख सका था अजित। अजब सी झुझलाहट और समझ न आने वाले गुस्से मे भरा हुआ वह लौटा था। लौटने के साथ ही सुनहरी पर झुझलाकर बरस पडा था, "तुम और वह क्या कर रहे थे सिनेमा मे ?"

सुनहरी की आवाज बुझ सी गयी थी, "कुछ भी तो नहीं वह कौन ?"

"वही महेसरी का बेटा और तुम !"

"उसके उसके हाथ पैरो मे दर्द था, इसलिए "

"झूठ !" *अजित बौखलाया हुआ था,* "*हाथ-पैरों* क्या एक-दूसरे को दबाया मसका जाता है ? तुम मुझे उल्लू

"चुप !" सुनहरी बोली थी, "देख, एक तो तुझे सिनेमा

ऊपर से तू ऐसी गन्दी गन्दी बातें करता है ?"

"कैसी बातें ?"

सुनहरी चुप हो रही थी। पर सडक से गुजरते हुए अजित ने देखा था—सुनहरी का चेहरा बीमार जसा हो गया है। अजित को खुशी हुई थी। सुनहरी को खूब डाटा उसने।

महेसरी का वटा उन्हें सडक तक छोडकर चला गया था। गली मे व अकेले जा रहे थे। जाते जाते महेसरी कह भी गया था, "तुम्हारा 'क्लीयरेंस सर्टीफिकेट' तो घर पहुच चुका होगा। कह गया था कि मैं घर पहुच जाऊगा"

सुनहरी ने जवाब नही दिया था। रात के सन्नाटे मे वे चुपचाप चलने लगे थे और तभी अजित विगडने लगा था उस पर। सुनहरी ने कहा था, "देख अजित! तू यह सब किसी से कहेगा नही।"

"क्यो? कहूगा क्या नही? मैं तो सबसे कहूगा। यह भी कि तुम्हें महेसरी ने चार आने भर की कोई चीज दी, तुम उसकी दोस्ती म सिनेमा देखने गयी, फिर तुम दोनो हाल मे गन्दी-गन्दी हरकतें करने लगे और "

'चुप! ' सुनहरी ने घुडक दिया था, "अगर तूने कुछ बका ता मैं भी समझ लूगी तुझे।'

"क्या करोगी तुम मेरा?'

"मैं—मैं तेरा कबाडा कर सकती हू। जानता है मैं केशर मा से कह सकती हू।"

'क्या कह सकती हो ?

'यही सब, जो तूने उस रात किया था और आज—आज दोपहर किया था।" सुनहरी बोली थी और अजित एकदम सिकुड गया था। सच ही तो वह खुद क्या कम गन्दा है। इसीलिए तो सुनहरी ने दबा लिया उसे। अजित रुआसा हो आया था।

"बोल—बकेगा अब ?"

अजित चुपचाप चलता रहा उसके पीछे—इस तरह जैसे खिचता हुआ जमीन पर घिसटता जा रहा हो।

सहसा सुनहरी की आवाज मे दम आ गया था, 'इसी तरह चुप रहेगा

तो मजे करेगा। आज सिनेमा देखा तूने वह आगे भी अपुन को बहुत कुछ दे सकता है। सिनमा दिखायेगा, होटल मे खाना खिलायगा और आगरा ले चलेगा—ताजमहल दिखाने। समझा!"

अजित चुप था।

सुनहरी बडबडाये गयी थी, "और तू तू भी क्या कम बदमाश है? महेसरी वह सब करता है तो तू भी तो वही सब करता है।"

"अब मैं कुछ नही करूगा। मैं समझ गया हू—तुम गन्दी हो!"

सुनहरी एक पल चुप रही थी, सहसा बुदबुदाती-सी आवाज मे बोली थी, "तू कुछ भी नही समझता रे! अगर तुझे मालूम हो ना कि एक दिन मरा भगेलची दुनिया छोड जायगा तो तू कहेगा मैं ठीक ही कर रही हू। सब भाई-बद, नाते वाले भूखी मार डालेंगे मुझे! कोई खाने नही देगा समझा!"

और अजित कुछ नही समझ सका था। सुनहरी की बैठक मे आकर चुपचाप लेट रहा था वह, सुनहरी उसके साथ, पर अजित ने परवाह नही की थी। दिन भर की थकान ने कब उसे घुप्प अधेरे मे अपने आपसे ही गायब कर दिया था—पता ही न चला।

पता चला था सुबह, जब सुनहरी ने ही उसे जगाया था। एक प्याला चाय दी थी, फिर कहा था, "जल्दी से हाथ मुह धो ले "

"क्यो?"

"केशर मा ने अस्पताल से खबर भिजवायी है कि कम्पाउण्डर के साथ तू भी उनसे मिल आना।"

"अच्छा!" अजित तैयार होने लगा।

महाराजवाडे पर महाराजा की स्टैचयू है। स्टैचयू के गिद पाक। इस पाक पर एकदम अलस सुबह घूमने टहलने वाले बूढे देखे जाते ह। कोई राम राम गुजाता हुआ, कोई सोच मे डूबा हुआ। सुबह सुबह नहा धोकर ये बूढे घर से निकल आते है। हाथ मे छडी या छाता। पाक के गिद एक वडा मैदाननुमा चक्कर है। इस चक्कर को कई मुख्य सडको ने घेर रखा है। यह चक्कर भी सडक की ही तरह डामर का है। कुछ लोग कबूतरो के लिए थैलो

मे अनाज भरकर लाते हैं 'होये—होये ' चीखते जायगे और सडक पर अनाज फेंकते जायेंगे। ढेर ढेर कबूतर उछलते, फडफडाते अनाज के दाने चुगते हैं। वे आने-जाने वाला से भी नही डरते। दाने खिलानेवाला तो कभी कभी वहा पहुचने के साथ ही उनसे घिर जाता है

अजित को लगता है कि ऐसे आदमी को कबूतर भी पहचान जाते हैं। पक्षी और जानवर भी तो बडे समझदार होते है। मुहल्ले के एक आवारा कुत्ते को अजित रोज सुबह एक रोटी खिलाता है। महीना से खिला रहा है। वह कुत्ता निश्चित समय पर अजित को मिलता है। अजित को देखते ही पूछ हिलाने लगता है। है गली का कुत्ता, पर सारी गली उसे अजित का कुत्ता कहने लगी है।

ऐसे ही शायद कबूतर समझत जानते हैं

कम्पाउण्डर शामलाल जब साइकिल के कॅरियर पर अजित को बिठाये हुए जच्चाखाने की तरफ बढा तो अजित का मन हुआ था, पूछ ले, "कुछ बच्चा बच्चा दिया सुरगो भाभी ने ?"

पर पूछना नही पडा। शामलाल खुद ही बोल पडा था, "देखो, अब क्या खबर मिलती है अजित भइया ? रात तक तो कुछ हुआ नही था।"

अजित ने बिना सवाल किय जवाब पा लिया। अभी न तो लडका, न लडकी। गली से साइकिल पार हुई। अजित चौक गया। महाराजवाडे की तरफ कुछ लोग रामधुन करते जा रहें है— सबके सिरो पर सफेद टोपियां, सब शात और तन्मय। उनके बीचाबीच एक आदमी तिरगा झडा लिये जा रहा है। झडे पर चरखा। काफी लोग हैं। जवान भी, बूढे भी, महिलाए भी। सब गाधी बाबा वाले काग्रेसी हैं। यही तो लड रहे हैं देश आजाद कराने के लिए अजित को याद आया था। मास्टर जी बोले थे, "बस, अब तीन दिन बाद आजादी !'

यह भजन करना नयी बात नही है। अक्सर इस तरह रामधुन करते हुए काग्रेसी शहर मे सुबह सुबह घूमते हैं। इने कहते हैं—प्रभातफेरी।

शामलाल साइकिल से उतर पडा—पीछे से अजित। हाथ जोडकर सभी की ओर श्रद्धा से शामलाल ने नमस्कार किया। अजित ने उसे देखकर हाथ जोड दिय। जब जुलूस गुजर गया और 'रघुपति राघव राजा राम,

ईश्वर अल्ला तेरे नाम' की धुन धीमी होने लगी तो शामलाल ने साइकिल आगे बढायी। अजित उछलकर करियर पर बैठ गया।

महाराजबाडे पर बडे-बडे बोड लग रहे है आज कबूतरो की जगह घेर रखी है काग्रेसियो ने।

आदमी की ऊचाई से भी बडी-बडी फोटुये बासो पर लटकायी जा रही हैं। सभा होगी शायद कई नारे कपडो पर लिखकर पेडो के सिरो से यहा-वहा झुलाये हुए हैं

"भारतमाता अमर रहे।"

"स्वतत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।"

"हिन्दू मुसलिम भाई भाई।"

यहा भी भीड काफी थी। एक बार फिर शामलाल को उतरना पडा। बोला था, "पैदल ही चलेंगे। शायद आगे भी भीड मिले। आखिर घर घर मे जशन की तैयारिया हो रही हैं। कल सुबह हिन्दुस्तान आजाद होगा। स्साले अगरेज समुन्दर पार चले जायेंगे।"

"फिर क्या होगा शाम भइया?"

'फिर क्या! अपनी सरकार, अपना देश और अपनी हकूमत।" शामलाल की आवाज मे ऐसी खुशी थी जैसे बेटा पैदा हो गया हा—लम्बी चाहत की पूर्ति। कहे गया था, "हम लोग तो बडे भाग वाले हैं अजित, जिनको आख से अपना देश आजाद देखन को मिलेगा। दो सौ साल हो गये—हमारे बाप दादे गुलामी ढो ढोकर ही मर गय क्या क्या नही हुआ इस आजादी के लिए? पर वाह रे गाधी माहात्मा! तूने यह दिन दिखा ही दिया!"

और सच ही तो सब खुश हैं। वे बूढे भी—जो टहलने आते हैं—ऊबे ऊबे, गभीर से लगते है। उनके चेहरा पर भी अजित एक इन्द्रधनुषी चमक देख रहा है। बदलिया को चीरकर निकल आया इन्द्रधनुष! और यह जवान—यह तो जैसे अपने-आपमे गुलदस्त। महकते हुए, खिले हुए, खिलखिलाते हुए फूलो जस। अजित वह सब देखता ही रह गया था।

नेहरू जी और गाधी जी की आदमकद तसवीरें बासा पर खडी की जा चुकी हैं। सब तरफ तिरगी झडिया लगी हैं। ऐसे, जैस हजार हजार

शादिया एकसाथ हो रही हो !

अजित खडा था आजादी ! हमारा देश, हमारी सरकार!
और अजित समझता है इस दिन के लिए क्या-क्या कुरबानिया हुई हैं।
कितनो को फासिया, कितनो को गोलिया, कितनो को काला पानी।

पर अजित उस सनसनी का बयान नही कर सकता, जो इस सबको
देखकर उसके भीतर हो रही है—अजब, मोहक, गुदगुदी विचित्र
अनुभूति।

शामलाल ने कहा था, "चल ना !"

अजित बोला, "कुछ देर देखन दो ना, भाई साहब !"

"लौटकर देखेंगे रे अब तो यही सब देखना है। खुशिया ही खुशिया।
बहुत खून चुसवा लिया। अब जोक बदन से छूटी ! आ !"

और अजित उस शोर, उस सजावट, उस उत्साह को मुड मुडकर
देखता हुआ फिर से साइकिल के करियर पर बैठ गया था।

पाच मिनट बाद साइकिल टिकाकर शामलाल और अजित अस्पताल
मे थे। कई औरतें और कई छोटे छोटे बच्चे। सफेद कपडे पहने हुए जवान
बूढी हसिनियो सी तैरती नर्सें। नथुना मे दवाइयो की महक।

सुरगो के पलग के पास ही धरती पर बैठी थी केशर मा। अजित ने
देखा—सुरगो की बगल मे एक छोटा, बहुत नन्हा सा मुलायम बच्चा
अजित ने शामलाल की ओर देखा—वह मुरझा गया था।

"रात बारह बजकर तीन मिनट पर हुई।" केशर मा ने निरुत्साह
आवाज मे कहा था।

शामलाल कुछ बोला नही। उसका रास्ते भर खिला रहा चेहरा अना
यास ही एसे हो गया था जस बदन से खून बह गया हो। चेहरा—पीला।
उसने चाय की केतली केशर मा के सामने रखी थी फिर बिना कुछ कहे
चुपचाप गैलरी की ओर मुड गया था। केशर मा ने एक गहरी सास ली।

अजित सहमा हुआ खडा था। समझ गया है—सुरगो ने फिर से लडकी
पैदा कर दी। खुद सुरगो भी तो किस कदर पिटी हुई पडी है। अजित ने
देखा—बच्ची की ओर से गरदन फिरा रखी थी सुरगो ने। आखो म
आसू।

"ले—चाय पी ले। " एक प्याले मे चाय भरकर केशर मा उठ पडी थी, पलग पर सुरगो के पास ही बैठ रही।

"नही काकी। " सुरगो ने तडपकर कहा, "मन नही है।"

"तो तू अपने से दुश्मनी करेगी ?" केशर मा झुझलायीं।

सुरगो रो पडी, "अपने से तो बहुत दुश्मनी कर चुकी काकी। अब तो चुनमुन के बाप से दुश्मनी कर रही हू।" वह सिसकने लगी। केशर मा ने जल्दी से चाय की कटोरी एक ओर सकपकाय खडे अजित के हाथो मे थमा दी, फिर सुरगो के सिर पर हाथ फिराती हुई बोलीं, "बावरी ! अरे कोई विसीम दुश्मनी करता है भला ? यह तो भगवान की देन है। पर सुरगो—बिसवास रख—तुझे बेटा जरूर मिलेगा ! "

"कब तक बिसवास रखूगी काकी—क्या बिसवास रखूगी ? ' सुरगो की हिचकिया बधी हुई थी।

अजित भी अफसोस मे। बेचारी सुरगो ! लडकिया ही लडकियो की मा। यह भगवान भी कभी कभी अगरेजो जैसी हरकत करता है। बे-मतलब सुरगो को सता रहा है। क्या बिगड जायेगा इसका अगर एक बेटा सुरगो को दे दे

"पागल हुई है ? मालूम नही है बूढे-पुरानो की बात। या तो तीन के बाद बेटा, या फिर पाच के बाद न हो तो सात के बाद—आखिर मे नौ के बाद तो बेटा देना ही पडता है उसे। यह ही है उसकी लीला ! क्या मालूम तेरे भाग मे नौ बिटियो के बाद बेटा हो ? इस परीच्छा से टल मत सुरगो। भगवान पर बिसवास रख !"

अजित ने हिसाब लगाया सात तो है—अब यह आठवी हो गयी। नौवी और होगी फिर बेटा ! यह भगवान भी खूब कानूनदा चीज है। सब हिसाब लगा रखा है।

"भगवान के यहा देर है, अधेर नही—ला चाय दे रे !" केशर मा न बडबडाते हुए चाय का प्याला अजित से लिया और सुरगो के होठो से लगा दिया, "अब फालतू जी हलकान मत कर ! वह बेचारा शामलाल और ज्यादा दुखी हो जायेगा।"

सुरगो चाय के घूट सिप करने लगी। प्याला खाली हो गया तो केशर

मा ने कहा, "जा अजित। सामने नल है। धो ला।"

अजित लपका गया। प्याला धो लाया।

"रख दे।" केशर मा ने सकेत से जगह बतलायी। दो खाना वाली एक छोटी सी अलमारी करीब थी। अजित ने प्याला उसी म रख दिया।

"मैं दोपहर को आऊगी। सुनहरी से कह देना।" केशर मा कह रही थी, "स्कूल मत जाना आज। घर की साफ सफाई करने को भी कह देना सुनहरी स।'

"अच्छा। अजित ने जवाब दिया।

सुरगो बोली पर उसकी आवाज बहुत मद्धम थी। अजित को लगा कि दुख बहुत पहुचा है उसे। सहानुभूति स सुनने लगा था, "तुम सच कह रही हो ना काकी, नौ के बाद "

'अरे, तो मैं क्या यो ही झूठ बात करती हू ?" केशर मा ने कुछ नाराजगी से जवाब दिया, "जो बात शास्त्रा मे लिखी है, वही तो कहूगी कि अपनी तरफ से फिर आगे मइयो बाप का भाग।"

और अजित ने देखा—सुरगो के चेहरे पर इस जवाब से हलकी-सी चमक पैदा हुई है। जरूर नौ के बाद उसे बेटा मिल जायेगा। अजित ने सोचा—खुश हुआ।

'अब तू जा।' केशर मा बोली थी, "शामलाल से कह देना—दोपहर को खिचडी लाये।'

'अच्छा मा।" अजित वापस हो लिया।

शामलाल गलरी के पार देखता हुआ खडा था। क्या देख रहा है ?

"क्या देख रहे हो भाई साहब ?" अजित न एकदम पूछा था।

चौंक गया शामलाल। बोला, "कुछ नही, ऐसे ही। सोच रहा हू अजित, अडतीस रुपये तनखाह और आठ बेटिया वाह रे भाग।" उसकी आखें छलछलायी हुई थी।

रास्ते मे उत्साह, जुलूस नारे, झडिया, शोर और भीड सभी कुछ बढे हुए मिले थे बढ़ते ही जा रहे थे। पर शामलाल किसी जगह नहीं रुका

था। उसका दुख देखकर अजित का मन भी नही हुआ था कि रुकने क
कहे। सोचा था—छोटे बुआ और मोठे बुआ के साथ जाकर देखेगा

गली मे साइकिल घुसी तो राजनाथ भटनागर के मकान के आगे काफ
भीड देखने को मिली क्या हुआ ? अजित ही नही, शामलाल भी चौं
गया था। मोठे बुआ, छोटे बुआ सभी तो खडे थे। गैलरी मे मिन्नी दी
रही थी—रोती हुई।

शामलाल उतर गया था। अजित एकदम छोटे बुआ और मोठे बु
की ओर न जाकर सीढियो की तरफ लपका। तभी छोटे बुआ ने आक
कन्धा थाम लिया था, "रुक जा पण्डित ! "

"क्यो ? '

"इसलिए कि ऊपर जाकर तुझे कोई पूछेगा नही।"

"पर पर बात क्या है ? यह सारा महल्ला क्या इकट्ठा है ?" अजि
बडबडाया।

छोटे बुआ ने फुसफुसाकर कहा था, "वह जया मौसी थी ना ?"

"हा हा, क्या हुआ उन्हें ?"

' वह भाग गयी ! रात से ही गायब है। मास्टर जी उसे ढूढन ग
है स्टेशन। मास्टरनीबाई भी रिश्तेदारो म गयी हैं "

"भाग गयी—कहा ? किसलिए ?"

"सिडी है तू ! " खीझ पडा था छोटे बुआ, "अरे यार उसका अं
वह सुरेश जोशी है ना—म्युनिसिपालिटी वाला—उसका प्यार चल र
था। उसी के साथ भाग गयी स्साली !"

"तुम गाली बकते हो ?" अजित गुर्राया।

"अबे जो बदमास लडकी घर छोडकर भागेगी, उसे गाली न देंगे
क्या अम्माजी कहेंगी ?" छोटे बुआ भी बिगड पडा था।

छोटे बुआ का हाथ कन्धे से झटककर अजित सीढ़िया की ओर लप
था। बरामदे मे वीरन भटनागर मिल गया था उसे। जबडे कस रखे
उसने। अजित को देखते ही गरजा था वह, "किसलिए आया है यहा
क्या बात है ? '

अजित एकदम थमा रह गया—लगा जैसे भूल की है। ठीक ही क

था छाटे बुआ ने। अजित को यहा नही आना चाहिये था। बोला, "कुछ नही—ऐसे ही।" फिर वह वापस उतर आया।

गली मे उसी तरह कानाफूसिया हो रही थीं।

"भाग न जाती स्साली तो क्या करती ! जब सरेआम उसकी बहिन दोपहरिया मे दरजी को बुलवायेगी और कमरे मे बन्द हो जायगी तो वह बेचारी क्या तपस्या करने के लिए थी ?"

"नही जी, वह ऐसी लडकी थी ही नही "

"अरे, सब ऐसी ही लगती हैं—नीचे से दूर कढाई की तली जली होती है।"

अजित न सुना, कुछ भी समझ मे नही आया। सिफ इतना कि जया मौसी भाग गयी हैं जरूर वह सुरेश जोशी के साथ ही गयी होगी—जरूर ! और अच्छा ही किया। यहा रहती तो मास्टरनीबाई उनकी शादी जबरदस्ती उस बिसन माथुर से कर देती !

अजित चल पडा था गली की ओर। घर खोलकर थोडी देर सोवेगा। जया मौसी चली गयी। अजित के सामने रह रहकर चेहरा उभर रहा है ममता भरा स्नेहिल मीठा। कुछ शब्द भी उभरते हैं—"तू मरा कौन है रे ? कौन है तू मेरा ? "

अजित की आखें छलछला आयी हैं। वहा गय होगे दोनो ? सुरेश जोशी कहा ले गया होगा उन्ह ?

कहा ले गया था सुरेश जोशी ?

उस दिन अजित कितना कुछ सोचता रहा था और आज जब अचानक ही सही जया मौसी फिर से अजित के सामने उसी बिजली की तरह कौंध आयी है—जैसी अचानक उस बार उदय हुई थी—तब अजित सोचने लगा है कि कहानी जुटान के लिए फिर जया से मिलना होगा। तब गणित ठीक तरह नही जानता था अजित। और अब शायद इतना जानता है कि उस अपन गणित के उलटवासिया आकडे बतलाकर जया मौसी भटका नही सकेंगी ! उन्हें सुरेश जोशी के बारे मे भी बतलाना होगा उस बच्ची के बारे म भी—जो नैनीताल म पढ रही है और उस तसवीर क बारे म

भी—जो जया मौसी की बेटी तुली अपने पास पिता की जगह रखे हुए है

"अजमेरी गेट पर किस साइड म जाना है साहब ?" थ्री ह्वीलर वाले ने बुरी तरह चौंका दिया था अजित को। यह नहीं कहा जा सकता कि जी० बी० रोड चलो। दोपहर या शाम को यह मुमकिन था। पर इस वक्त नौ बज चुके हैं। बोना था, "बस, गेट पर ही उतरना है।"

घुरघुराता हुआ स्कूटर नयी दिल्ली रेलवे स्टेशन का पुल पार कर रहा था। इसे पार करते ही अजमेरी गेट। गेट स मुडकर अजित पैदल चल पडेगा। हल्की सी याद है वह बिल्डिंग। तीसरी मजिल पर है जया का कोठा जया नही चदारानी!

मन अजब सी खलबली से भरा हुआ है। क्या अजित के पूछने पर बतलायेंगी वह? वह लडकी? नैनीताल? सुरेश जोशी? पिता के नाम पर तसवीर?

अजमेरी गेट। जी०बी० रोड के मुह से मुडता हुआ थ्री ह्वीलर खडा हो गया—गेट के मुह पर।

अजित उतरा। पैसे दिये। थ्री ह्वीलर चला गया। तब अजित फिर से मुडा। जल्दी जल्दी जी०बी० रोड मे घुस गया। कैसी अजीब बात है? अजित ने कब सोचा था कि कोठे पर इस तरह आना होगा? या कभी आयेगा? कहानिया लिखते हुए पचासो बार सोचा है—कोठा देखे, पर किसी बार साहस नही जुटा सका। फिर अनायास ही सखाराम ने पहुचाया था उसे। वरना वह इस मामले मे बेहद कायर।

कायर या धूत? या गणितज्ञ!

सबकी तरह अजित ने भी गणित ही लगा रखा है। प्रतिष्ठा का गणित। कितनी बुरी बात होगी अगर कोई अजित जसे लेखक को जी० बी० रोड के कोठे की सीढिया चढते देखे। यह गणित इतना हावी हो चुका है कि थ्री ह्वीलर के अजनबी ड्राइवर से भी डर लगा था। इस आकडे को छिपाने के लिए ही तो वह उसे बतला नही सका कि उसकी यात्रा कहा तक है?

क्यो डरा अजित ? मन म अपने लिए ही घिन भर आयी है। इतनी कायर है उसकी आत्मा ? वह सच को स्वीकार नही कर सकता ?

बिल्डिंग के एकदम नीचे आ थमा है—यही बिलकुल यही है। सीढ़िया सामने। जया मौसी तक पहुचा देंगी य सीढिया।

उसने सीढिया की ओर कदम बढाये। अधेरी सीढिया। कुछ पदचापें आ रही थी—कोई उतर रहा है ? उतर जाय, फिर अजित चढेगा। थम गया। तभी पदचापें चेहरा म बदल गयी। अजित को गहरा धक्का लगा—जया ? दो सिपाही उसके पीछे थे। वह एकदम रुक गयी थी, "तू ? "

अजित सकपकाया हुआ।

एक सिपाही बुदबुदाया था, "क्या बात है चन्दारानी ? यह भी ग्राहक है क्या ?' दूसरा अजित के करीब आ गया। अजित की बोलती बन्द।

पर जया एकदम बोल उठी थी, "तू सामने से नही हट सकता—हरामी के ! रडिया देखी नही हैं क्या तूने ? हट बगल से ! " फिर जया उसे लगभग धकेलती हुई आगे बढी—सडक की ओर।

जिस तरह—जो भी कहा गया था—उससे अजित ज्यादा ही हकबका हो गया और पास आ पहुचे सिपाही ने कहा, 'माफ करना भाई साहब ! आधी बात सुनकर लगा था कि आप भी गाहक हैं इस रसाली के—इसीलिए आपका टोक दिया।' फिर वे आगे बढ गये।

और अजित देखता रह गया था—नि शब्द ! सिपाही जया, नहीं चन्दा का लगभग धकेलते हुए सडक पार खडी पुलिस वान की ओर बढ गये। अजित ने देखा और भी कई सिपाही, कई वश्याआ और कई मरदा को सडक के भीतरी कोना से लिये चले आ रहे हैं।

अजित मुडा—वापस हो लिया। अजमेरी गेट से उसने थ्री व्हीलर लिया। घर। सवाल अधूरे ही रह गये है

पर अधूरे क्यो रहे ? अजित चाहता तो कह सकता था उन सिपाहियो से "हा, यह मेरी परिचित है।" उसे छुडा भी सकता था अजित। उन अधूरे सवाला के जवाब भी पा सकता था, पर ऐसा न कर वह कायरा की तरह भाग खडा हुआ है। जया ने अपन सवाद से अजित के प्रति अपरिचय

की बात जतला दी थी—उसी का लाभ उठाकर अजित भागा जा रहा है

रेलवे स्टेशन का पुल पार करके करौलबाग की ओर दौड पडा है थ्री ह्वीलर

क्या अजित ने ठीक किया ? वे अधूरे सवाल ? वे सब, जया मौसी के साथ फिलहाल पुलिस थाने के सीखचो मे बन्द हो गये हैं। जवाब पा सकता है अजित, पर अजित अपना गणित गलत नही करेगा

करौलबाग इलाके मे आ गया है थ्री ह्वीलर।

या भी जया मौसी बोली थी, " सीढियो को लेकर सोचने, माथा पटकने से क्या लाभ ? उन्हे तो तू पार कर आया अब वे तो सच नही रही।"

ठीक ही तो। अजित सोचता है—जया मौसी को लेकर उठा हर सवाल उनकी सीढिया थी, जिन्हें वे पार कर आयी—अब वे उनका सच नही। उनका सच है पुलिस के सीखचे। और उस सच को देख चुका है अजित।

और अजित का सच—उसकी प्रतिष्ठा। वह भी उस सच को लेकर ज्यादा क्यो सोचे—जो उसकी सीढिया थी। हुह !

कहानी लिखने के लिए जितना देख समझ लिया जाये—अच्छा होगा—यही कुछ सोचकर बरसो पहले किसी वश्या को देखने और कोठे पर जाने की इच्छा हुई थी। पर जब जब इस इच्छा को मूलरूप देने की कल्पना आयी, तब-तब भद्रता के अहसास ने आ घेरा। क्या जरूरी है कि अपनी प्रतिष्ठा और सामाजिक शालीनता की आहुति से मूल्य चुकाकर कहानी ढूढी जाये ?

पर कौन जानता था कि सखाराम धूमकेतु की तरह अजित की प्रतिष्ठा और भद्रता के नीले विस्तीण आकाश पर उदितहोगा और अजित के सामने वेश्या पेश कर देगा ? या यो कि शायद वेश्या के सामने ही भद्रता को पेश कर देगा।

जितना घटा है, उस सबको याद करने पर यही कुछ तो लगता है।

देवता अमर हो सकें—इसलिए शिव ने हलाहल पान कर लिया था। स्वय का शरीरदाह करके भी सुरो की रक्षा कर लेनी चाही थी। शिव की कहानिया लिखी गयी है। पर उनसे भी कहीं ज्यादा कहानिया सुरो की हैं। भद्र समाज की कहानिया। भव्यता, कुलीनता, शालीनता, सौजन्यता और उच्चता की बहुरगी चकाचौंध लिये हुए। ऐसे समाज की उपस्थिति के बीच विभूति लगाये, भाग धतूरा पान करते हुए विषपायी की कल्पना कठिन। या यो कि बहुत कुछ मेल नही खाती। इसीलिए तो शायद अजित के समाज मे वेश्या की कल्पना मेल नही खायेगी। गालिया बकती और फूहड ढग से कामुक सकेत करती हुई जया की कल्पना इस कल्पना को सह पाना कठिन। सारी सामाजिक उच्चता, कुलीनता, प्रतिष्ठा और भद्रता पलक मारते मृत हो सकती हैं।

पर विश्वास नही होता कि यह भद्रता जी गयी है। इसके विपरीत लगता है कि उस पल, जब सिपाही ने उसे टोका था— "क्या बात है चन्दा रानी? यह भी ग्राहक है क्या?" तो अजित चुप खडा रह गया था। क्या इसलिए कि वेश्याबाजार की उस जिस्मफरोश औरत के साथ एक जिस्मखरीद मर्द की तरह अजित को भी कोतवाली ले जाया जा सकता था? या इसलिए कि अजित गाहक रूप मे न सही, किसी और रूप मे भी वेश्या से परिचित जाना जाये—अजित। इससे उसका अपना जीवन गणित गलत हो जाता है। एक सभ्य, कुलीन व्यक्ति का गणित और एक वेश्या का गणित?

अजित को मालूम नही—उस पल क्या हुआ था। पर हुआ यही था। हो सकता है कि वह अकस्मात घटी उस घटना से स्तब्ध रह गया हो? भला उसे क्या मालूम था कि क्या सूत्र जोडने की एक कोशिश मे जया से मिलने पहुचे अजित को वेश्याओ पर पडे छापे का सामना करना होगा?

शायद ऐसा ही हुआ। कुछ इसी तरह सोचकर सन्तोष कर लेने से सुख मिलता।

पर ऐसा सन्तोष सुख पा जाना सहज है क्या? अगर ऐसा ही था तब अजित अजमेरी गेट पर आकर तुरत की ह्वीलर लिये हुए वहा से भाग क्यों

खड़ा हुआ ? न—बात यों नहीं बनेगी। ठीक है कि बाहर से एक उजली चादर में अपनी भद्रता को ओढ़े रह पर यह कैसे भूल सकेगा कि वह इस चादर की तह मे पीठ के नीचे अपनी कायरता का कीचड़ छिपाये हुए है।

जया इस समय हवालात के सीखचों में होगी।

जया नहीं—वेश्या! चन्दारानी।

अगर उस पल जया ने उन पुलिस वालो के सामने अजित से अपरिचय जाहिर न किया होता तो शायद अजित भी हवालात मे होता। समाचार-पत्रों मे खबरें आती—वेश्याबाजार पर पड़े पुलिस छापे मे लेखक अजित कुमार भी पकड़े गये हैं। बहैसियत ग्राहक। सब आब धुल गयी होती।

बचा दिया था उसने। और अजित भी बचकर भाग निकला। क्या अच्छा हुआ यह ?

शायद नहीं। अच्छा होता कि अजित आगे बढ़कर कहता, 'मैं गाहक तो नहीं हू इनका पर मैं इन्हें जानता हू—यह मेरी परिचित हैं। यहा तक कि मैं इन्हें मौसी कहता हू।" वह होती भद्रता, कुलीनता और उच्च-सामाजिकता। पर हुआ उलटा।

कब कब यह उलटा नहीं होता रहा है ? दूसरा के प्रति अवहेलना, घृणा और निन्दा की आलोचना पर खड़ी हुई तथाकथित समाज की यह भद्रता उन्हीं दूसरो की दया-कृपा और हलाहल पीने की शिवशक्ति पर टिकी हुई है। कैसी विडम्बना ?

इसी विडम्बना को तोड़ने के लिए छटपटा उठा था अजित। लगा था कि भद्र भाव को काटता हुआ कोढ़ फूट निकला है तन मन से—अपने ही प्रति घृणा और अवहेलना का जहर!

यह जहर ताड़ना होगा—पी जाना होगा। जब जया मौसी उसके लिए विषपायी बनकर पल भर मे उसकी समूची भद्रता पर थूक सकती हैं तो वह भी अनुदान मे मिला उच्चता का यह गौरव नहीं लेगा। वह साबित कर देगा कि वह भला, ऊचा और कुलीन है।

उस रात ठीक तरह सो नहीं सका था अजित। सुबह के साथ ही अपने एक उच्चाधिकारी पुलिस मित्र को फोन किया था, "मनहोत्रा है ?"

"जी हैं।" जवाब आया था।

"तो उनसे कहिये अजित जी का फोन है।"

दो मिनिट बाद उधर से मलहोत्रा की आवाज सुनायी दी थी, 'क्या भई लेखक साहब सुबह सुबह कैसे याद किया ?"

"बहुत जरूरी बात थी मलहोत्रा।" अजित एकदम बोलता गया था, "रात जी०बी० रोड पर छापा मारा है तुम्हारे आदमियो ने।"

"हा हा "

"उसीके बारे मे कुछ कहना चाहता था।"

"पुलिस के बारे मे या रडियो के बारे मे ?" उधर से हसा था मलहोत्रा। पर अजित न उस सबकी परवाह नही की थी—सारी बात कह सुनायी। इस डर से कि कही जया को लेकर कोई भद्दा मजाक न कर बठे उसने बडी ईमानदारी से सब कह डाला था, "वह मेरे पडोस की एक महिला है भाई। पढी लिखी। समझदार। हालात की किस आधी ने उसे बाजार तक पहुचाया यह मै नही जानता। पर अगर तुम उसे छुडवा सको तो मै तुम्हें यकीन दिलाता हू—कोशिश करूगा कि वह इस रास्ते स हट जाय।"

जवाब मे मलहोत्रा ने कहा था, "ठीक है। मैं कहे देता हू, पर इतना जरूर कहूगा कि काजल की कोठरी से गुजरते हुए तुम अपने आपको बचाने की कोशिश करना कोशिश ही कर सकोगे। इसस ज्यादा तुम्हारा वश नही होगा—मैं जानता हू।' उसने उपदेश रोक दिया था, "क्या नाम बतलाया है तुमने उसका—जया ?"

"हा नाम तो यही है पर वह यहा चदारानी के नाम से दज होगी।"

'ठीक है तुम इतजार करो। मैं फोन करता हू।'

लगभग पद्रह मिनट तक मलहोत्रा के फोन की प्रतीक्षा करता रहा था अजित। फिर मलहोत्रा न सूचना दी थी, "इस नाम की तो काई प्रास पकडी ही नही गयी है ?"

नही-नही, एसा कैसे हो सकता है ?" अजित बडबडाया था, 'मैंने खुद

"यानी लेखक जी भी रात को मौजूद थे वहा ? 'मलहोत्रा जोर से हसा था फिर बोला "खैर मैं अच्छी तरह जानकारी कर चुका हू। चदा रानी नाम की किसी वश्या को रात पुलिस ने नही पकडा है। सारी लिस्ट

देखी जा चुकी।"

"ठीक है।" अजीत की मिमियाती-सी आवाज आयी थी और मलहोत्रा ने उधर से फोन काट दिया था

आखो देखा सच—झूठ हो गया है? अजित बेतरह परेशान हो गया था। अगर चन्दा यानी जया को छोड दिया गया न-न, छोडने का सवाल ही कहा पैदा होता है। मलहोत्रा तो कह रहा है वह पकडी ही नही गयी तब वे सिपाही, वह सवाद

नही नही! कही कुछ घपला हो रहा है। हो सकता है कि चन्दा ने अपना नाम कुछ और दर्ज करवाया हो। पर उस नाम को जाने बिना अजित किसी से क्या बात करेगा?

पहले पता लगाना होगा—क्या चन्दारानी के अलावा भी उसका कोई नाम है?

वह जल्दी जल्दी तैयार होकर एक बार फिर अजमेरी गेट पहुचा था। अब न सकोच था, न भय बल्कि लगता है अजित किसी गहरे रहस्य-द्वार पर जा खडा हुआ है।

जया को पाये बिना ढेर-ढेर गुत्थिया उसे तग करती रहेगी। जिस सुरेश जोशी के साथ वह भागी थी—वह कहा है? और क्या वह सुरेश के साथ ही भागी थी? और भागने से लेकर कोठे तक आ पहुचने के बीच क्या क्या घटा?

नैनीताल के होस्टल मे तुली नाम की लडकी मा के नाम पर जया का और बाप के नाम पर किस अजनबी का फोटो रखे हुए है?

और सबसे बडी बात है जीवन गणित के उन आकडो की खोज, जिन्हें जया ने जुटाया था? सिर्फ जया ने ही क्या—उस सारे गली महल्ले ने जहा से जया, अजित, सुरेश जोशी कितने ही लोगो की कहानिया शुरू हुई थी।

सुबह के वक्त बरसो से बिना पुती पडी दीवारो पर पीक के धब्बे बहुत साफ दीखते हैं। उससे भी कही ज्यादा साफ है ये सीढिया, जिनके किनारे या तो घिस चुके हैं या निरतर चढते उतरते रहने के कारण टूट गये है। अजित

को वेसरी ने घेर रखा है—चन्दारानी नाम की कोई वेश्या पुलिस न पकडी ही नही ? यह कैसे हो सकता है ?

दरवाजे पर हौले हौले थपकियां बरसाने लगा था वह। सकोच मन म। मालूम नही इस दरवाजे के भीतर से कौन निकले ? अजित को क्या व्यवहार मिले ?

फरमाइये ? ' द्वार खुल गया है। अजित के माथे म हल्की-सी कौंध होती है—यह लडकी ?

"चन्दारानी है ?" अजित ने आवाज मे बहुत दढता बटोरे रखना चाही है, पर जाने क्यो उसे खुद ही लगता है जसे वह बोलन म कुछ सिटपिटाया हुआ-सा था।

"जी हा—है।' लडकी कहती है। निगाहें अजित पर इस तरह ठहरा रखी है जैसे तेज नश्तर से उसके भीतर कुछ कुरेदकर देखना चाहती हो आइय।'

सच ही तो। इसका मतलब है च दा को पुलिस न नही पकडा। पकडा होता ता पर वही उलझन। आख देखा सच भी झूठ हो गया है। वह लडकी के पीछे पीछे चल पडता है। लडकी उस बैठक म ले आयी है। वही बैठक। इसी बैठक म सखाराम लाया था उसे। वह रहा दीवान। सखाराम नशे मे सरावार उसी दीवान पर लेट गया था और तभी प्रकट हुई थी चन्दा यानी जया ! अभी कुछ दिन पहले की बात।

अजित को गहरा धक्का लगा था—जिस जगह खडा है—वही ठिठक रह गया था वह—जया मौसी ? पर कभी की उन जया मौसी का यह नया रूप नया परिचय और नया नाम —चन्दा।

'बठिये। लडकी कहती ह ' बुलाती हू उन्हें।" फिर वह अजित के उत्तर की परवाह किय बिना भीतर चली जाती है। परदे के भीतर।

अजित बैठ रहा है। दीवान साफ-सुथरा। कालीन उम्दा। शो पीस म एक छोटी सी मूर्ति रखी है—राधा कृष्ण की। कुछ कुढन हो आती है। वेश्या के घर भगवान ? छि ! शायद जया को कभी नही समझ पाया अजित। बचपन म इसलिए कि सब कुछ समझने की कोशिश ही कर रहा था और जया समय जान से पूव मछली की तरह छोटे-से शहर की गली

के जीवन से फिसल गयी थी। किन सागरा मे तैरी, कहा कहा रही— अजित नही जानता। पर जब जानने की उम्र आयी है तब इस तरह जानना होगा—वेश्या जया और राधा कृष्ण की मूर्ति।

दरवाजे का सिलकन परदा कुछ थरथराया। अजित की नजरें उस ओर उठ गयी। अलसायी सी जया मौसी बाहर निकल आयी। कधे पर बाल बिखर हुए, गरदन पर चमडी मे हल्की हल्की सलवटें। शायद सो रही थी ? अजित के मुह का जायका बिगड गया—सूरज चढे तक सो रही थी ? फिर याद आया—रात रात जागना पडता है इन पेशेवर औरतों को। तिस पर पीना पिलाना। सहज ही है कि दोपहर तक सोती होगी

पर यह वही जया है जो सुबह चार बजे जागकर मिन्नी को नाश्ता देन के बाद स्कूल चली जाया करती थी—पढाने !

वह मुस्करायी, "अरे, तू ? तुझे मालूम कसे हुआ कि मैं रात लौट आयी हू ?" फिर वह धम से एक ओर पडी कुरसी म जा धसी। अजित जवाब मे कुछ कहना चाहता था पर शब्द अटके रह गये—जया के ब्लाउज के दो बटन खुले हुए थे। इन खुले बटना के भीतर से सीना झाक रहा था पर वह बपरवाह !

अजित ने नजरें झुका ली।

जया मुस्कराती हुई बटन लगाने लगी, "तू अब भी ज्या-का त्यो है ? मैं तो उस दिन के बाद सोच भी न सकती थी कि तू कभी आयगा "

"अच्छा होता अगर न आता।" अजित न कुढकर कहा।

"पछतावा है तुझे ? " वह हसी, "कुछ न कुछ फायदा ही हुआ होगा तुझे। न हुआ होगा ?"

"क्या बकती हो तुम ?" अजित चिढ गया।

"तू अब भी वैस ही गुस्सा होता है जैसे खैर छोड ! वैसे तुझे बत लाऊँ मैं यक नही रही हू, सच कह रही हू। ईमानदारी से बोल, तू किसी मतलब से ही आया है ना ?'

अजित ने देखा—उनकी नुकीली निगाहें अजित के भीतर खुपी जा रही थीं। बोला, "झूठ है ! मैं सिर्फ तुमसे मिलने आया हू।"

'सच ? "उन्होंने उसी तरह नजरें गडाये रखी।

"और क्या झूठ ?" अजित का चेहरा तमतमा आया।

"तब तो सचमुच कमाल ही हुआ ! तुझ जसा लखक और कहानी को पाकर छोड बैठे—यह मैं नही सोच सकती थी। "

"तुम्हें किसने बतलाया कि मैं लखक हू ?" वह बुरी तरह चौंक गया था।

वह हस पडी। एक झटके से अपने खुले हुए बालो को कन्धे के पीछ फेंकत हुए कहा, "तू क्या समझता है कि मैं वश्या होन भर से निर्मोही हो गयी ! स्त्री नही रही ! लेखक होकर भी तू यह नही समझ सका कि दल दल मे फसा हुआ आदमी खुले जल और मजबूत धरती की जितनी कीमत और याद महसूस करता है, उसे समझ पाता है—उतना जल में तरता या धरती पर खडा आदमी महसूस नही कर सकता।' सहसा वह मुडी। पुकारा, "कस्तूरी !"

"जी, बहनजी !" वही युवती आ खडी हुई।

चन्दा उफ जया ने गभीर स्वर मे कस्तूरी को आज्ञा दी, "जा ! दरोगाजी ने चाय पी ली होगी। उनके कपडे रैक म रखे हैं—दे दे।

"वह और कुछ कह तो ?' कस्तूरी ने पूछा।

जया मुस्करायी, "रात भर तो कहते रहे हैं अब भी कुछ बचा ? बच भी गया होगा तो इसी बठक से तो निकलेंगे—कह लेंगे।'

अजित ने जबड कस लिये। पूछा "भीतर कोई है ?'

"जिस दिन भीतर कोई न रहेगा, मैं तुझे इस बस्ती म जिन्दा दिखूगी ? इतना भी नही समझता तू ?'

' काई पुलिस वाला है ?'

"वह है—इसलिए तो तुझे सुबह यहा मिल सकी हू, वरना अब तक

"मैं समझ गया ! अजित ने बात काट दी।

"अब तू बहुत समझदार हो गया है। वह बोली, फिर उठ खडी हुई, "मैं हाथ मुह धोकर आती हू तब तक कस्तूरी तुझे चाय पिलायेगी। जाना मत !"

अजित स्तब्ध सा बैठा रह गया है। जया मौसी की आवाज दृष्टि, व्यवहार कुछ भी तो नही बदला पर फिर भी पूरी बदल चुकी है वह।

कभी किसी पुरुष को लेकर चर्चा तक मे रुचि न लेनेवाली जया मौसी अब पुरुषो से कितने ही रगो की बात कर सकती हैं। निलज्ज शब्द बोल सकती हैं और सवेदन की जगह एक लापरवाह रुख अख्तियार कर सकती हैं। कैसे हो गया यह सब ? यही कुछ तो जानना होगा अजित को। इसलिए आया है, पर अभी अभी जया बोली थी कि वह स्वार्थवश आया है तो अजित ने उत्तर दिया था, "मैं सिर्फ तुमसे मिलने आया हू।"

रेशमी परदा फिर से झिलमिलाता हुआ खुलता है। अजित कुछ सहमकर देखता है उस ओर—बेन्ट कसते हुए एक पुलिस अधिकारी निकल रहे हैं। उनकी आखें कुछ मूजी हुई सी। तोदिल व्यक्तित्व। प्रौढ आयु के होगे। अजित की ओर एक कडवी मुस्कान के साथ देखते हैं, फिर जैसे सूचना देते हुए चले जाते हैं "चन्दा से कहना, हम गये।" फिर वह तेजी सेजी न की ओर बढ जाते हैं।

अजित का मन कडवाहट से भर आता है। ये कानून के रक्षक है। सौदेबाजी करके अपनी ही तरह दलाली खाने वाले इस बाजार के लोगो से कहा अलग हुए यह सज्जन ? और जब यही अलग नही हैं तब वेश्या को समाज स अलग कैसे कर सकेंगे ?

"लीजिए।" कस्तूरी चाय ले आयी है। ट्रे—ट्रे म कुछ नमकीन बिस्कुट, कुछ मीठे। अजित के सामने टेबल पर ट्रे रखकर चली जाती है।

अजित कुछ कुढता हुआ बठा है।

"अरे, तून प्याला नही उठाया अब तक ?" जया उसके सामन आ बैठती हैं। अजित का अचरज होता है। इतनी जल्दी जया मौसी ने कपडे भी बदल लिये, चेहरा भी। लगता नही कि यह वही है, जो अभी उसके आन पर शराब की एक खाली बोतल जैसी उसके सामने आ पहुची थीं

वह मुस्करा रही हैं। एक खाली प्याला और रखा है ट्रे मे। जया मौसी केतली से उसमे चाय उडेलती हुई पूछती हैं "वह गये क्या ?"

क्या यह सवाल अजित से ही किया गया है ? हा, उसी से है। कहना पडता है "हा अभी-अभी।" फिर अपनी ओर से एक सवाल भी पिरो बैठता है, "यही लोग जिस्मफरोशी रोकेंगे ?'

जया सिर्फ प्याला सिप करती है। नजरें अजित पर। तमतमाये

चेहरे के साथ अजित उसी तरह बडबडाता है, "जिन लोगा का चरित्र ही नही है उ ह चरित्र का मास्टर बनाया गया है। कसा मजाक हो रहा है पूरे दश स।'

अनायास ही हस पडती है जया मौसी।

'क्या हुआ ?

"कुछ नही।" एक गहरी सास लेती है वह, "सोच रही थी कि त कितना जिज्ञासु हो गया है "

वह तो मैं पहले भी था।'

'हा, था तो, मगर लगता है जसे अब तेरा अहम् आहत होने लगा है, बस—इसके अलावा तेरी जिज्ञासा और मासूमियत म कोई अ तर नही आया।"

"तुम कहना क्या चाहती हो ?'

तू चरित्र की मास्टरी और देश के मजाक की बात कर रहा था ना ?'

"हा। पर उस सबसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही।" सहसा ही फिर याद हो आया है अजित को कि वह सिफ जया से नही, एसी जया से बात कर रहा है जो च दारानी भी है—बल्कि सिफ वही है।

हो सकता है कि तू ठीक ही कह रहा हो, पर मैं केवल वही जानती हू कि जिन चरित्र के मास्टर की बात तूने की है—कल रात वह न होते ता मैं तुझ यहा नही मिलती। और मै तुझे न मिलती तो तू कहानी किससे जानता आता ? और तुझे कहानी न मिलती तो तू लिखता किस पर ? और जब लिखा न जाता तो तुझे हजारो हजार रुपये रायल्टी कहा से मिलती ? '

'मौसी। तुम तुम मेरा अपमान कर रही हो।" तिलमिलाते हुए प्याला टेबल पर रख दिया अजित न।

पर वह अडिग अविचलित, प्रभावहीन बैठी रही। बोली, "गुस्सा आया न तुझे, पर यही तो चरित्र है। यह जो आदमी है ना, कभी लेखक होता है, कभी दरोगा, कभी नेता, कभी समाज सुधारक और कभी वेश्या—सभी कुछ चरित्र हैं। चरित्र क्या करना क्या किसी का मान

अपमान करना है ?"

"मुझे आश्चय है—तुम कितना निगटिव साचने लगी हो ? यह चरित्र समझे है तुमने ? राम, कृष्ण, विवेकानन्द—वे भी चरित्र थे ? राम मोहन राय, तिलक वे भी क्या इसी कोटि म गिन लोगी तुम ? वेश्यागिरी को तक ढूढकर तुम जायज नही बतला सकती।"

"ना ! मैं अपने चरित्र के जायज-नाजायज होने की ता बात ही नही कर रही अजित।" जया मौसी अचानक बहुत गभीर हो गयी थी। प्याला टेबल पर रखकर उसी तरह सरल, सयत, किन्तु शान्त स्वर मे बोली थी, "मैं केवल चरित्र की बात कह रही हू। जो नाम तूने गिना दिये उन्ह मैंने देखा नही कभी। जो देखा है—वही कह सकती हू।"

"ठीक ही तो है। एक वेश्या, अपने और दलालो के बारे म ही तो कहेगी ?" अजित ने झुझलाते हुए उत्तर दिया था, "शराब, शरीर और थिरकनें ही तो उसका समूचा चरित्र हैं।"

"तू फिर—फिर मुझे गलत समझ रहा है अजित।' जया मौसी उसी धीरज से उत्तर दिये जा रही थी।

"क्या गलत समझ रहा हू ? बिलकुल ठीक ही तो समझा हू।"

"क्या समझा है तू ?"

"यह कि तुमने विगत, अपने पराये, मित्र सखा सब भुला दिये हैं। सब कुछ स्वाहा करके सिफ तुम आज से जुडी हुई हो और तुम्हारा यह आज बहुत घिनौना है।" अजित उठ खडा हुआ था। तय कर लिया था कि अब कुछ भी नही बचा है जया मौसी के पास। उनके पास बैठकर अपने-आपको अपमानित नही करेगा अजित।

'बैठ ! " अचानक उनका आदेश भरा स्वर गूज उठा था। वही स्वर, जो कभी मास्टर जी के बरामदे म सुना है अजित ने—बरसो पहले। बोली थी, 'जब तूने जिक्र ही छेड दिया है तब तू इस तरह साफ सुथरा नही निकल सकेगा। तुझे सुनकर जाना होगा वह सब—जो तूने मुझे सुना दिया है।'

"मैं मैं जाना चाहता हू।"

'जिसकी जेब मे सिफ रुमाल और शक्ति मे केवल बातें होती हैं, उन्

मैं रोकती भी नही, अनुनय विनय करना तो दूर की बात है। वह मेरा चरित्र नही है। पर मैं तुझे रोक रही हू उन शब्दो की तोल के लिए जो तूने अभी-अभी कह डाले हैं। उनको उसी तरह वजनी बनाये हुए तू यहा नही छोड सकेगा। उतना ही वजन लेकर तुझे भी जाना होगा।"

अजित को बैठ जाना पडा। जया मौसी के अन्तिम शब्द कुछ तीखे—बहुत तीखे महसूस हुए थे उसे। इन शब्दो को या ही उलीचकर वहा से हट पाना अजित के लिए कठिन ही नही असभव !

'तूने अभी अभी विगत, मित्र-सखा, अपने पराया को बिसरा देने की बात की ना ?

"हा, और फिर कहता हू—तुम सब कुछ भूल चुकी हो! और वह सब भूल चुकी हो इसीलिए वेश्या हो! वेश्या होकर भी हस सकती हो!' अजित के स्वर म नफरत थी।

"सच तो यह है अजित, वह सब नही भूल सकी हू—इसीलिए वेश्या हू। बल्कि यो समझ ले कि इसलिए वेश्या रहकर भी हस लेती हू—खश हू। जया मौसी ने सहसा निढाल होकर अपना सिर सोफा कुरसी के पिछवाडे टिका दिया था—वह छत की ओर देख रही थी—ऐसे, जसे अपने ही शब्दो से जुडकर उस विगत को देखने लगी हो।

अजित न कहा, 'मुझे मालूम है। इन कोठो पर भाषा मे अजब-सा शायराना अदाज और धोखादही का फन आ जाता है और तुम तो यो भी सदा से औरतपन के फन म महारत हासिल किये रही हो ?

फीकी सी मुस्कान होठो पर बिछ गयी थी उनके। बोली थी 'तू तो सचमुच बडा विद्रोही लेखक हो गया है रे! पर लेखक होना एक बात है और सारे दर्शित को न्यायाधीश की नजर से देखना अलग बात। अगर ऐसा कर पाया तब मैं तुझे बहुत याद आउगी। उस दिन तू मेरी कहानी नही लिखेगा, मेरा न्याय करेगा अजित! और यह न्याय ही है जो वेश्या बनाए रखकर भी जीने के लिए बाध्य किए हुए है।

मैं तुमसे लच्छेदार भाषा नही सुनना चाहता।" अजित न तडपकर कहा, 'न ही मेरे लेखक होने न होने की व्याख्या करने का तुम्हे अधिकार

है। तुम जल्दी से सिफ अपनी बात कहो, जो कहना चाहती हो।"

"ठीक है, तब मैं वही कहूगी और तुझे यही बतलाना होगा कि मैं अपने वेश्या होने से जुडी हू, या विगत से "

"हा हा, वही ।"

कस्तूरी को एक एक प्याला चाय और बनाने के लिए कहकर जया मौसी बोली थी, 'माया बहिन जी और कुदन दरजी के सम्बध तू उस समय नही समझा था पर बाद मे तेरी समझ मे जरूर आय होगे उसक बावजूद जीजा जी माया जीजी को पचाये जा रहे थे पति बने रहे, समाज म वही इज्जत अभिवादन मिलते रहे, जो लेते आये थे—क्या? बतला सकेगा?"

अजित बुरी तरह सिटपिटा गया। यह कल्पना नही थी कि जया मौसी इस तरह विगत से अपना जुडाव साबित करेंगी। उसने गरदन झुका ली थी।

"बोल ना—चुप क्यो है? कह दे कि वह झूठा और घिनौना आदश नही था? क्या सिफ जिस्मफरोशी करने वाले लोग ही वेश्या कहलाने चाहिए? बोल! तू तो बडा नुकीला लेखक मानता है अपने-आपको? बडी बडी बातें भी करता है, लिखता भी है—बतला कि अनैतिक सम्बधो की जानकारी होते हुए भी कोई पति पत्नी की हरकतो को सहता जाये, नकली हसे या पत्नी इस तरह के पति को सहती रह—उसे क्या कहेगा तू? क्या नाम देगा तेरा समाज, जिसमे तू चरित्र ढूढता है?'

"पर पर मौसी, इस सबसे तुम्हारे विगत को न भूल पाने का क्या सम्बध है?" अजित ने महसूस किया था कि अनायास ही सही, पर वह अपने सारे सामाजिक तर्कों, उच्चता और कुलीनता के मूल्यो का टोकरा सिर पर उठाये हुए किसी वजनी पत्थर से टकरा गया है—सारे मूल्य और आदश बिखर गय हैं। सारा इकलाब गुम।

"नही-नही, तुझे बतलाना होगा अजित। सब बतलाना होगा। तुझे जवाब देना होगा कि उस दिन की तेरी जया मौसी का विवाह न होने देने के पीछे जो कारण था, क्या वही सामाजिक मूल्य था, वही था तेरा आदश? तेरे समाज का चरित्र? "

अजित ने कुछ डरकर उन्हें देखा था।

वह उठ पडी थी। कमरे म चहलकदमी करने लगी। बाली, "दीदी, मेरा विवाह नही होने देना चाहती थी। मेरे जीवन म नरेश आया, मैंने रघ को खोजा, अविनाश सेन को तलाश किया, सुरेश जोशी को ढूढा पर मेरे सामने लाया गया बिसन! अपढ और मूख! इसलिए ना कि मैं इनकार कर दूगी? इनकार कर दूगी और अविवाहित रहूगी। अविवाहित रहूगी और उस घर की भुखमरी को सम्हाले रहूगी यह भी तो पेशा ही हुआ अजित? बता—क्या सिफ जिस्म बचनेवाले ही वेश्या होते हैं?"

'पर मौसी ?'

'सिफ सुनना होगा, तुझे। सिफ सुनता जा! " जया मौसी की आवाज अचानक ही एक तलवार की नुकीली धार जसी अजित के मस्तिष्क को चीरती निकल गयी थी, 'बेटे की आस म तेरी गली वाली औरत सहोगा जो कुछ कर रही थी—क्या वह भी सामाजिकता ही थी? उसका पति रामप्रसाद सब कुछ जानकर जिस तरह समझौता किये हुए था क्या वह भी उसका सामाजिक नैतिक चरित्र था, वेश्या चरित्र नही? वह तेरा किरायेदार चन्दनसहाय जो कुछ करता जा रहा था—वह भी तेरे समाज की ऊचाई थी? बोल बतला अजित न्याय कर। कौन नही भूला है विगत को? तुम समाजजीवी या मैं शरीरजीवी?"

"मगर मगर यह सब बातें तुम्हारे वेश्या होने को तकसगत नही बना देती मौसी " देर बाद ही सही अजित ने एक तक खोजा था।

'तो यह सब असगत भी कहा कर देती हैं?' वह फिर से अजित के सामने आ बठी थी, "सच तो यह है अजित, कि मैं उस सबको कभी नहीं भूल पायी हू। भूल भी नही पाऊगी, इसीलिए मुझे यह आज अखरता नहीं। जब किसी अजनबी मद का पस खाली कराकर उस बाहो म भरती हू, तब भी मुझे जरा नही अखरता रे! बहुत अच्छा लगता है। इसम कोई खोट-दोष, कोई दाग झूठ तो नही है?'

"मौसी!" चीख पडा था वह। उठा और दरवाजे की ओर बढा, 'मैं चलता हू '

"क्या, सुनेगा नहीं? अब नही बतलाएगा कि शायराना अन्दाज और धोखादेही का फन वहा किस ज्यादा जाता है? लच्छेदार बातें

किन्हें आती हैं ? किसके पास औरतपन की महारत है और किसके पास पौरुष की महारत ? "

और अजित ने सीढ़िया उतरते हुए, लगभग भागते मे सुने थे अंतिम शब्द। फिर वह ठहाका हलका होता चला गया था, जो ऊपर जया मौसी ने लगाया होगा

लगा था जैसे वह ठहाका पिघले हुए सीसे की धार जैसा अजित के कानो से उतरता हुआ समूचे शरीर मे फैल गया है। बदन एक अजब सी जकडन मे गिरफ्तार हो गया था

शब्दो के कवच बनाकर समाज की स्थितियो को पश करते हुए अजित ने कब सोचा था कि एक दिन हर कवच टूटकर गिर पडेगा। एक वेश्या के दस बीस शब्द ही उसके हजारो हजार पृष्ठो के शब्दजाल को ताडकर मुक्त भाव से इसकी समूची आत्मा और समाज पर फैल जायेंगे ?

एक बार फिर कायरो की तरह भाग खडा हुआ था अजित। सारे प्रश्न उसी तरह अनुत्तरित सुरेश जोशी ? नैनीताल की वह लडकी ? लडकी के पास पिता की जगह सुरेश जोशी के स्थान पर किसी अजनबी का चेहरा और उस चेहरे के साथ जया मौसी ?

और वही जया मौसी कोठे पर !

निरुत्तरित, हताश, तर्कहीन और बचकानी बातें करता हुआ अजित ! सवेदनाओ और भावनाओ के सैलाब मे बहकर बेकार ही जया मौसी से बहस कर उठा। हालाकि वह पहले ही जतला चुकी थी कि ऐसा दुस्साहस न करे। इसीलिए तो बोली थी, " लगता है अब तेरा अहम् आहत होने लगा है बस—इसके अलावा तेरी जिज्ञासा और मासूमियत मे कोई अतर नही पडा ! "

यह सुन लेने से ही क्या वह सतर्क नही हो गया था कि जया मौसी—वेश्या चन्दारानी—शायद अजित से कही गहरी है, कही न्यायप्रिय और कही कठोर यथार्थ की तह पर खडी तटस्थ स्त्री !

पर वह देख रहा था सिर्फ वेश्या !

वेश्या ही तो देखने गया था ? जिज्ञासा थी ना और जो कुछ बहस

करने लगा था चन्दा से—वह अजित का लेखकीय अहम अहम, जिसे सत्य के पहले थप्पड न ही हचमचा डाला !

क्या सच ही अजित वेश्या को देख सका है ? देख लिया है तो क्या समझ सका है ? और समझ सका है, तब वह विगत से वापस क्यो नहीं जुड जाता। वही, जहा जया मौसी को छोड आया था।

जया मौसी को छोडकर या छूटकर समझा था कि कहानी अब जया मौसी के पास है।

सच तो यह है कि कहानी अजित के पास ही है। जया मौसी ने एक झटके मे बतला दिया। अपरोक्ष रूप से यही तो कहा है उन्होने कि सही वेश्याओ को देखना है तो कोठे उचित जगह नही है शायद तथाकथित सभ्य समाज ही है।

" बतला कि अनैतिक सम्बन्धो की जानकारी होते हुए भी कोई पति, पत्नी की हरकतो को सहता जाये—उसे क्या कहेगा तू ? क्या नाम देगा तेरा समाज ? क्या सिफ जिसमफरोशी करनेवाले लोग ही वेश्या कहलान चाहिए ? "

अजित उत्तरहीन !

यह भी सच है कि अजित सदा ही वेश्याओ के बीच रहा। कभी पुरुष वेश्या, कभी स्त्री वेश्या ! अथ, काम, मोक्ष कितने कितने स्तरो पर वेश्याए बाजार कितनी कितनी खरीद फरोख्त

हर छोटी कहानी मे दस बडे सौदे। हर कहानी मे विभिन्न किस्म की वेश्याए। जया मौसी बोली थी " लेखक होना और बात है और सारे दर्शित को न्यायाधीश की नजर से देखना अलग बात। अगर ऐसा कर पाया तो मैं तुझे बहुत याद आऊगी। उस दिन तू मेरी कहानी नहीं लिखेगा मेरा न्याय करेगा अजित ! '

और जया मौसी के साथ न्याय ही करना होगा। एक उन्हीके साथ क्यो उन सबके साथ क्या नही जो उनकी कहानी के इद गिद गुथे हुए हैं

' नीचे से हर कडाई की तली जली हुई होनी है !' कुछ इसी तरह के

निष्क्रय तो निकले थे—जया मौसी के गायब हो जाने पर।

कहते हैं कि सुरेश जोशी और जया मौसी के भाग जाने की खबर पर रिपोर्ट दर्ज करवाने के लिए मास्टर जी कोतवाली गये थे। अकेले कभी गये नही थे, इसलिए मोठे बुआ को साथ लेते गये। सब कुछ अजित को मोठे बुआ से ही सुनने मिला था। बोला था, "यार पण्डित ! मास्टर जी इत्ते डरपोक होंगे—मुझे मालूम नही था।"

"क्या बात हुई ?" अजित ने पूछा था।

वे सब उस शाम हुजरात मैदान पर इकट्ठा हुए थे। जया मौसी क भागना शायद गली के लिए अगले दिन मनने जा रहे स्वतत्रता दिवस भी ज्यादा सनसनीखेज और चटखारेदार घटना थी। वे सब, जो मास्टर ज के यहा पढने जाते थे। मैंनपुरीवाली का बेटा महेश, छोटे बुआ, मोठे बुअ अजित, रजन दलवी, शरीफखान—सब।

मोठे बुआ ने कहा था, "हुआ क्या ? " मास्टर जी कोतवाली के गे मे घुसते हुए ही कापने लगे थे। बोले, "मारोतीराव, कुछ गडबड न नही होगी रे ?"

"आप भी मास्साब यो ही घबराते हैं। भला पुलिस चोर पकडने खातिर है कि जिसका माल गया—उसे ही बन्द कर देगी ? आप चलि तो सही। मैं सब देख लूगा। कोतवाली मे बहुत-से सिपाही जानते हैं मुझे यहा कई बार आ चुका हू। सब बढिया है—घर सरीखा। आइये।"

और राजनाथ भटनागर सहमे, घबराये हुए मोठे बुआ के साथ सा कुछ-कुछ पिछडते हुए-से चलते गये।

मोठे बुआ सीधा, निशक होकर सतरी के पास जा पहुचा था, "ब भाई साहब ! दीवानजी किधर मिलेंगे ?"

"क्या बात है ?" सिपाही ने एक नजर मास्टर जी को, फिर मोठे बु को देखा था। उसकी वरदी, निगाहें और आवाज के कलफ ने मास्टर को ज्यादा ही सहमा दिया।

"एक रिपोट लिखानी है।" मोठे बुआ ने उत्तर दिया।

"वहां बैठ जाओ।" सतरी ने एक बेंच की ओर इशारा क दिया।

वे वेंच पर जा बैठे। टुकुर टुकुर कोतवाली को देखते रह। गतिविधि बहुत तेज थी। मोठे बुआ ने मास्टर जी से कहा था, "य सब क्ल की तैयारिया हो रही है मास्टर जी। कल बडे जोर का जशन होगा ना ?"

"हू।" बुदबुदाकर चुप हो रहे थे मास्टर जी। प द्रह अगस्त के इतिहास की सारी कहानिया आत्मा के भीतर रची बसी पडी हैं मगर इस पल उस सबमें कोई उत्साह नही। कहा होगी जया ? और वह हरामजादा सरेश जोशी ?

मोठे बुआ ने पूछा था, "जोशी को ढूढा आपने ?

"बहुत। पर घर से गायब है। ताला लगा है। सुबह से छह सात बार जा चुका हू।'

"यह उसी हरामजादे की करामात है—वरना जया मौसी बेचारी तो स्टेशन का रास्ता भी क्या जाने।'

कोतवाली मे झडिया लगायी जा रही थी। हर दरवाजे पर पत्तो के ब दनवार। एक सिपाही ब दनवारा का तयार झुड उठाये चला आया। आकर सन्तरी के सामने पटक दिये।

दीवान जी आ पहुचे। मोठे बुआ और मास्टर जी उठे, ' नमस्ते साहब !

'नमस्ते।" दीवान जी बडबडाये, फिर ब दनवार वाले सिपाही की ओर देखा। बोले, "अब रख क्यो दिय हैं यहा। लगा दे ना !"

' थानेदार साहब के घर झडिया पहुचा आऊ, फिर लगाऊगा साव !

ठीक है ठीक है।" कहते हुए दीवान जी अ दर घुसे, कुरसी मे धस गये। उनक पीछे-पीछे मोठे बुआ और मास्टर जी भी हाथ बाधे कमरे मे समा चुके थे। दीवान जी ने पूछा, बोलो ! क्या बात है बूढ़े बाबा ?

साव ! मास्टर जी की साली भाग गयी है घर स। विसको एक लौंडे न भगाया है। विसका नाम सुरेश जोशी है " मोठे बुआ एकदम स बयान करन लगा था।

मास्टर जी की आखें छलछला आयी थी। मोठे बुआ न कहा था, "अभी

ज्यादा आगे तलक नही जा पाये होगे साहब। इधर झासी साइड को गये होंगे तो स्टेशन यासी तक पहुचे होगे या फिर दिल्ली साइड को गय होंगे तो धौलपुर आगरा तलक "

"अबे चुप ! अब तू हमको सिचुएशन समझायेगा ?" दीवान जी ने घुडक दिया था, फिर मास्टर जी से कहा, "हा बाबा, जरा जल्दी जल्दी बयान करो सारा मामला। आज जरा भी फुरसत नही है। आपको तो मालूम ही होगा कि "

"जी हा जी हा।" कहते हुए मास्टर जी इधर-उधर देखने लगे। बैठने को कही जगह मिलनी चाहिए, तभी तसल्ली से कह पायेंगे। दीवान जी ने कहा था, "अब बैठने को तो यहा आपको तख्तेताऊस मिलेगा नही। धरती पर ही जम जाओ और बयान करो सारा मामला लौंडिया कब से फसी थी ? कब से लौडा उसे खिला रहा था "

मास्टर जी का चेहरा एकदम ही बुझ गया। क्या मालूम था कि यह जया विद्रोह के नाम पर इस तरह अपमानित करवायेगी उन्हे। जानते होते तो मायादेवी कुछ भी करती-कहती, उसी पल जया की मा के साथ उसे नागपुर खदेड दिया होता।

"जल्दी करो !"

और मास्टर जी ने सारी कहानी बयान कर दी थी। जिस भाषा मे पुलिस के दीवान जी बात कर रहे थे, उसी भाषा मे तरह-तरह के सवाल करते रहे थे, कभी जया के बारे म, कभी सुरेश जोशी के बारे मे और कभी साथ आये मोठे बुआ के बारे म। मास्टर जी बुझने सुलगने रहे, पर जवाब देने पडे। बयान दर्ज करवाने के बाद मास्टर जी के दस्तखत लिये गये। गवाही म मोठे बुआ ने हस्ताक्षर कर दिये थे।

विदा होने से पहले मास्टर जी ने पूछना चाहा था, 'कब तक पता चलेगा सर ?' पर पूछ सकें, इसके पहले ही दीवान जी बोले थे, "अरे सुनो बाबा।"

"जी ?'

'ऐसा करो तुम्हारा काम तो होगा ही, पर पर जरा देश का काम भी करो। वह जो बन्दनवार रखे हैं ना, छाकर के साथ मिलकर टागा तो दो दरवाजों पर सीढी मैं मगवाये देता हू।" फिर उन्होने मास्टर जी की

स्वीकृति-अस्वीकृति की परवाह किये बिना पुकार लगाकर एक सिपाही बुलाया था। आदेश फेंक दिया, "इस बाबा का मोढी दो, कीलें दो। कन्दावार ये लगा देंगे।"

मास्टर जी भुनभुनाकर रह गये। मोठे बुआ भी कुढ गया, पर क्या करता। इस पुलिस की दुनिया में अपनी बात कहना एसे ही है, जसे रीछ के सामन जाकर उस टि लि लि लि लि कहते हुए अगुली दिखाना। थप्पड चलते मे जरा देर नही होनी। और थप्पड भी ऐसा कि न पुरविया हवा का पता पडे, न पछहिया का! बस, किसी भी तरफ से आ जायगा। बहस करोगे तो आधी आयेगी, पानी आयेगा, भूकप भी आ जाये तो अचरज नही।

दीवान जी का हुक्म निबाहने मे दो घण्टे लग गये थे। बाहर आते समय पूछ लिया था मास्टर जी ने, "सर, वह हमारे मामले मे"

"हा हा, पता लगेगा। जरूर लगेगा! पर इस वखत तो तुम देख ही रह हो बाबा। पूरे देश का काम चल रहा है और एक लडकी को लेकर डिपाटमट बिजी नही किया जा सकता, पर आपका काम हो जायेगा! सो फीसदी हो जायेगा! आप जाइये!'

'पर बिस बखत तक तो मच्छी और मछेरा दोना समुन्दर पार कर जायेंगे साहेब!" मोठे बुआ ने कह दिया था।

दीवान जी की भवें चढ गयी थी, "बहुत समझदार लगता है क? इतना ही समझदार था ता स्साली मछली को मछेरे तक जाने क्या दिया? और अब चली गयी है तो तू किसलिए मेढक की तरह टर्रा रहा है। जाओ यहा से! इस वक्त मुल्क की आजादी को देखें कि तुम्हारी दो रुपल्ली की लौंडिया को!'

सहमे, घबराये हुए से बाहर चले आये थे।

बडी साफगोई और ईमानदारी के साथ सारी बात सुनाकर मोठ बुआ ने कहा था, 'यारो, मास्टर जी इस कदर लडी आदमी है—मरे को पता नही था। नइ तो जाता ही नही। अब देखो ना, उस स्साले दीवान के आगे पाजामा खान बैठे। एसे लोगो को क्या गिनेंगे पुलिसिय?'

अजित भुनभुना गया था। मोठे बुआ की भाषा, शब्द कभी-कभी इतन

घटिया होने हैं कि जी होता है उसे पीटा जाये। पर पीट नही सकता। यह सब सोचकर ही गुस्सा शात कर लेना होता है। वही किया था।

फिर मोठे बुआ की बातचीत मे सबने बहुत रुचि नही ली थी। मास्टर जी के प्रति सहानुभूति और दुख से सभी भरे हुए थे। अजित उठ पडा था, "चलता हू।"

"कहा जायेगा ?" छोटे बुआ ने सवाल किया।

"घर और कहा ? " झूठ बोल गया था अजित। जायेगा—मास्टर जी के घर। इधर दो दिनो से पढाई बन्द है। बीरन भटनागर भी घर पर ही है, मगर अजित फिर भी जायेगा। जाने क्यो उसे जया मौसी पर क्रोध आता है, मास्टर जी, मिन्नी, बीरन, यहा तक कि मायादेवी से भी सहानुभूति होती है। बेचारो का गली मुहल्लेवालो ने मजाक उडाना शुरू कर दिया है। मुस्कराते है जया मौसी को लेकर छिछोरे छिछोरे मजाक करते हैं, मायादेवी तो कई-कई घटो कमरे मे बन्द होकर रोती रहती हैं। जया मौसी ने बहुत बडा अपराध किया ! बहुत बडा ! किसलिए इन बेचारो को मजाक बना डाला !

"एकदम वेश्या थी स्साली !" गयी रात शभू बोला था। ड्राइवर है। उससे बडा शराबी, धोखेबाज और खराब आदमी गली मे किसी को नही माना जाता। कहते है, रडियो के गाने सुनता है। वहा बैठकर बकवास भी करता है।

अजित अपने भीतर गुस्सा भी पैदा नही कर सका था उसके लिए। सच ही तो, क्या भले घरो की बेटिया भागा करती हैं ?

वह आगे बढ गया था।

सुनहरी, रेशमा, सुरगो, सहोद्रा—सभी मिले थे। सभी से बातचीत हुई थी, किन्तु किसी भी बार अजित उन सबसे जुड नही सका—रुचि नही ले सका। बातो को याद नही रख सका। याद—तो सिर्फ जया मौसी किस तरह भागी होगी ?

अजित अपने ही भीतर लडने उलझने लगता है।

जया का विवाह मायादेवी उस बौडम, अपढ और एक आख के आदमी से कर देना चाहती थी ?

तो जया मौसी न करती ? हज ही क्या था ? इनकार कर देती। पर इस तरह भाग जाना और यह सही बात है—जिस घर की बेटी भागगी, उसकी इज्जत तो धूल माटी होने की ठहरी !

केशर मा ने कहा था, "मास्टर जी शायद ही यह सदमा झेल पायें।" वह सुरगा के साथ अस्पताल से वापस आ चुकी थी। बच्ची लेकर सुरगो अपने घर म घस गयी थी और केशर मा नहा धोकर हमेशा की तरह सुनहरी, सहोद्रा या वैष्णवी सीतलाबाई के साथ दरबार लगाने लगी थी।

'तुम भी हद करती हो बुआ।" सुनहरी ने कहा था, "आखिरकार थी तो उस रडी की ही बहिन। यह तो खून की रगत है। बहन ने घरवाल के होते हुए भी घरवाला कर रखा है। जया ने कुछ ऊची हवा ले ली—बस !

'पर बेचारे मास्टर का क्या कसूर ? सुना है—बडा भलामानस है ?' केशर मा को अभी अभी—इस घटना के बाद ही मास्टरजी के घर की सारी कहानी सुनने जानने को मिली थी। बतलाता कौन ? इसी दरबार ने बतलायी है।

इसी तरह की टिप्पणिया मे दो दिन बीत गय थे। अक्सर एक टिप्पणी काफी जोर से सुनी थी अजित ने—"अरे मरी को भागना ही था तो किसी जात बिरादरीवाले के साथ जाती। मरे उस 'बढीचट'[1] से लग गयी ! राम राम ! जात, धरम, मान मरजाद, कुल कुछ भी तो नही देखा मास्टर की साली ने !

कभी कभी इस बात से भी अजित सहमत हो लेता—ठीक ही है। मास्टर जी ठहरे हिन्दी वाले, कायस्थ आदमी और जया मौसी न पति बनाने के लिए सुरेश जोशी को चुना। भाषा, जात-पात, रहन-सहन कुछ भी एक सा नही। एक तरह स यह अच्छा नही हुआ, पर दूसरी ओर अजित यह भी भूल नही पाता कि अगर जात-पात म बिमन मायुर जैसा लडका हो या तो बेचारी जया मौसी ने क्या भूल की ?

१ बढ़ीचट—पश्चिम क्षेत्र में महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों के लिए हल्के स्तर पर को जाने वाली बातचीत का एक शब्द।

पर भूल की—भागकर भूल की ! जोर-शोर से शादी करनी थी । इ
मामले मे अजित की एक ही राय है। यही राय बार-बार सहानुभूति से भ
हुए मास्टर जी की सीढ़िया बढा देती है अजित को। आज भी चढ आया है

मोठे बुआ से जानबूझकर झूठ बोल आया था। वह छिछोरा लडका है
मजाक उडायेगा। हो सकता है कि और भी गन्दी-भद्दी बात कह बैठे
इसीलिए छिपाना होगा।

बरामदा अजब-से सन्नाटे मे डूबा हुआ है। अजित एक पल खडा र
गया है। साथ वाले कमरे मे जया मौसी रहा करती थी जाने क्यो अजि
का मन होता है—पुकार ले—'मौसी ?'

फिर एक गहरी सास लेकर कहता है, 'मिन्नी ? मास्टर जी ?

"कौन है रे ?' भीतर से कमजोर मगर भारी आवाज। ऐसे जैसे पानी
म मुह डुबोये हुए कोई बोलने की कोशिश करे।

"मैं—अजित।" आगे बढकर अजित उस द्वार पर जा पहुचा है
जिसके भीतर स आवाज आयी है।

"आ—जा !" मास्टर जी हैं।

अजित भीतर जा पहुचता है। मिन्नी ताश के पत्ते लिए हुए एक ओर
अकेली ही उन्हें फश पर लगा रही है इक्का दुक्की, बादशाह, चौकी
मेम अजित उसके सामने जा बैठता है—चुप।

मास्टर जी लेटे हैं। मायादेवी और भीतरी कमरे मे हैं। किचिन से कुछ
आवाजें आ रही है। अजित को अचरज है—मायादेवी किचिन मे ह ?
कभी तो नही होती थी। हमेशा बेचारी जया मौसी ही किचिन मे काम
करती थी, पर अब जया मौसी नही रही। वह कही अपने घर मे—
मतलब सुरेश जोशी के साथ किचिन मे होगी। उसके लिए चाय बना रही
होगी—छि ! गन्दी ! बिना ब्याह के उसके लिए चाय और खाना
बनाने लगी हागी। बुरा किया उन्होने।

"पत्ते मागेगा ? हा, माग ?" मिन्नी ने सब पत्ते समेटकर हथेली म
दबा रखे हैं।

"बादशाह दो।'

"चाहे था ?"

"पान का।"

मिन्नी उसके सामने एक—और अपने सामने एक—इसी तरह पत्ते डालने लगी है। अजित पत्ते भी देखता है, मास्टर जी का चेहरा भी। कैसे बीमार जैसे हो गये हैं ? बहुत सदमा। डर लगता है। केशर मा ने कहा था, ' सदमा सह नहीं पायेगा बेचारा !'

नहीं नहीं। हे भगवान, मास्साब जिन्दा रहे !

"पढने आया था रे ? ' मास्साब पूछ रहे हैं।

"जी ? नहीं। ऐसे ही मैं तो मिन्नी के साथ खेलने आया था।'

"अच्छा-अच्छा !" मास्टर जी बुदबुदाते हैं, चुप हो जाते हैं।

"बादशाह मेरे पास आया ! ' मिन्नी कह रही है।

'ठीक।" अजित का उत्तर, "अब लाल पान की बेगम दो !"

मिन्नी पुन पत्ते बटोरकर बाटने लगी है।

मायादेवी आ पहुची हैं हाथ म चाय का प्याला। मास्टर जी चारपाई से उठ बैठे हैं। मायादेवी प्याला उनके सामने रखकर बडबडाती है, ' अब चाय के लिए मत कहना।"

"क्या ?"

' तुम तो बहुत 'क्या-क्यो' कर रहे हो ? अब क्या जया की तनखाह आनी है घर मे ? '

और अजित कुछ चौंक गया है मास्साब का प्याले से प्लेट म चाय गिराता हाथ काप जाता है। थप्पड खाये हुए से पत्नी को देखते हैं, फिर एक गहरी सास लेते हैं, "हा, ठीक ही तो है।

'कुन्दन कह रहा था कि छत्री बाजार और कम्पू मे ट्यूशनें है।" मायादेवी बतलाती हैं, "पन्द्रह पन्द्रह रुपये मिला करेंगे। सवेरे छत्री बाजार जाना होगा रात आठ बजे के बाद कम्पू। मैंने हा कर दी है। कल से ही पहुचना है '

' पर माया तुमने हा कैसे कर दिया ? '

'क्यो ?'

' मालूम नहीं है क्या ? कितने दगे फसाद हो रहे हैं शहर म ?'

मास्टर जी बुदबुदाते हैं। चेहरे पर भय है, निगाहो म मासूम बच्चे जैसा
ापन, "सारे हिंदुस्तान पाकिस्तान मे जैसे सभी पागल हो गये हैं।
ों ही लाशें, न बूढे का फर्क, न बच्चे का और फिर कम्पू इलाका
तुम जानती ही हो। तिस पर रात का वक्त।" मास्टर साहब के
ा मे खाली प्लेट है।

"पर इस सबसे दुनिया का कामकाज तो रुक नहीं जाता ?" मायादेवी
ास किये जाती है, 'प्रलय हो जाने पर भी आदमी की जात खतम नही
।"

"मगर सोचो तो माया, अब मेरे शरीर मे इतनी भी शक्ति नहीं है
ा जोर की आधी मे पैर टिकाये रख सकू, फिर ये दगे फसाद तो शैतानी
दसे हैं। और "

"वब वहम है।" मायादेवी उन्ह टोक देती हैं, "तुम्हें छुरा मारकर
सी को क्या मिलेगा ? जब तक ऊपर वाले ने मौत नही लिखी, आदमी
ो कुछ नही होना।"

मास्टर जी निरीह दृष्टि से पत्नी को देखते रह गये है। क्या सचमुच
ही जीवनसाथी है ? यही है दुख दद को आपस मे बाटने का समझौता ?

मायादेवी बडबडाती जाती हैं, "यह तो ससार है। इसी तरह चलता
, चलता रहेगा अगर भगवान ने मौत लिख ही दी होगी तो यहा, इसी
ल बैठे खासी के साथ प्राण निकल जायेंगे वरना आदमी हवाई जहाज
ा गिरे तो भी बच जाये।"

इसका मतलब है कि मास्टर जी को इन दगे फसादो मे भी टयूशन
ढाने जाना होगा ? दुख से अजित ज्यादा ही भर गया है। इतनी उम्र और
ासपर बुढापा, सब्जीमडी तक जाते हैं तो लौटकर आधा घण्टे हाफते रहते
ैं। आखें मूद लेते हैं, दस बार राम नाम कहते हैं वही मास्टर जी अब
ेज रोज सुबह शाम टयूशन करने जायेंगे ? पद्रह और पद्रह—तीस।
ीस रुपये महीने की खातिर

मायादेवी उठकर फिर से किचिन म चली जाती हैं। बडबडाती हुई
"इसी दिन के लिए जवान जहान बहिन को रखा, खिलाया पिलाया कि
एक दिन सारी आबरू पर थूक जाये ? हमे दो पैसे का कर जाये ? मैं

कहती हू कि जहा भी गयी हागी—उसे चैन नही मिलेगा। उसकी बोटिया कुत्ते नोच खायेंगे ! कमीनी ! "

अजित समझ सकता है कि किसे लेकर कह रही ह, उबल रही हैं। पर हैरत होती है। जया मौसी तो बेचारी कमाकर लाती थी। इनसे कभी कुछ मागते, शिकायत करते यहा तक कि ऊचा बोल बोलते नही सुना तब उसे बददुआए क्यो दे रही हैं। उन्होने घर से भागकर भूल की, पर माता पिता और बडे तो कभी अहित का शब्द बच्चो को लेकर मुह से नही निकालते ? केशर मा चाहे जितना कोस ले अजित को। पर जब उनका गुस्सा शात होता है, तब किसी के पूछने पर यही कहती हैं "अब देखो ना, अजित को लेकर क्या कुछ कह देती हू, पर आखिर है तो मेरा खून, मेरे ही कलेजे का टुकडा—कुछ एमा वैसा कर भी देगा ता कोई अपने बदन के हिस्से का तो काट नही फेंकता ?"

पर जया मौसी को लेकर हमशा अजित ने मायादेवी का कोसना ही सुना है। किसी बार यह नही कि वह उनकी अग है—उनकी छोटी बहिन। अचानक ही अजित का मन मायादवी के प्रति फिर खराब हो उठा है। अपने से ही फिर जूझ उठा है। शायद ठीक ही किया उन्हाने। न भागतीं तो इसी तरह लानत मलामत सहती रहती। किसी बार प्यार के दो बोल नही ! ठीक ही किया !

अगले ही पल नजरें मास्टर जी पर नही—जया मौसी ने ठीक नहीं किया। बचारे बूढे मास्टर जी का तीस रुपल्ली के लिए कितना कितना भटकना होगा ? फिर इस दगे फसाद म ? अजित सिहर उठा है।

दग फसादा की बात आते ही अजित इस पल से कही दूर उलझ जाता है अपने से ही बहुत दूर। अखबार म कार्टून देखने से ज्यादा लगाव कभी नही रहा अजित का। देखता कार्टून को समझता। कभी मुस्कराता, कभी जार स हस पडता। यही रहा है अजित का अखबार पढना देखना।

जब पडित जी यानी अजित के पिता जीवित थे और जमीदारी करते थे—तब उनके पास अखबार आता था— हिदुस्तान। इस 'हिदुस्तान' म अजित गाधी जी, नेहरू जी, पटल, सुभाष बाबू वगैरा देखे हैं। बातचीत स यह भी समझ लेता था कि यह देश हिन्दुस्तानियो का है और इन नेताओ

के साथ साय हिन्दुस्तानी हिन्दू-मुसलमान अगरेजो से देश को वापस लेने के लिए लड रहे हैं। इस सन्दभ मे अजित ने भगतसिंह, आजाद, बिस्मिल ये सभी नाम देखे पढे हैं। पर कभी कोई खास रुचि उनमे नही ली। बस, उसे कुछ चीजें ही पसन्द आयी हैं। तिरगा झडा, चरखा कातते गाधी बाबा, जवान और खूबसूरत नेहरू जी और मिलिट्रीवाली ड्रेस मे सुभाष बाबू।

इसी अखबार मे अजित ने कई विदेशी नाम भी पढे ह। कोई एक देश है जमनी। इस जमनी मे हुआ हिटलर। इस हिटलर ने अगरेजा, फ्रान्सीसियो, रूसियो और अमरीकियो सबसे लडाई की। उस हिटलर की फोटो भी याद है अजित का। अखबार मे सामने ही होती थी। हवा मे हाथ उठाये हुए मक्खीकट मूछोवाला एक आदमी फौजी ड्रेस म खडा है। उसके सामने लाउडस्पीकर का डण्डा। इस डण्डे मे मुह फाडे हुए अजब सी बन्हवास हालत म कुछ चीख रहा है अखबार मे चीखने की आवाज तो सुनाई देती नही—बस फोटू आ जाती है। जो चीखा होगा, सो लिखा होगा। आगे लिखा होगा कि हिटलर ने इतने हजार अगरेज मारे अगरेजो ने हिटलर पर बम गिरा दिय। अमरीकी जूझ रहे हैं। रूसी भाग रहे हैं ऐसा ही कुछ।

पर इस सबको कभी गभीरतापूवक नही लिया अजित ने। बस, इससे कुछ ज्यादा रुचि होती थी गाधी, नेहरू, मौलाना आजाद मे। झडे लिय चले जा रहे हैं। पीछे पीछे ढेर-ढेर हिन्दुस्तानी मद औरतें। फोटो म आखीर तक उनके छाट और छोटे हाते जाते सिर काले-काले धब्बो जैसे। अजित की आखें फैल जाती। ये सब अगरेजा से अपना देश वापस माग रहे है। कहते हैं कि तुम हमारी चीज पर जमे हुए क्या बैठे हो? भागो यहा से!

मगर मारपीट नही करते है ये लोग। गाधी जी कहते ह कि इनकी बन्दूका के सामने निहत्थे जाओ! हजार, लाख, करोड आदमी मरो देखें ता कब तक दिल नही पसीजता इनका? अजित को अपने भीतर इस तक पर सोचना पडा था—गोलिया से मरते ही रहेंगे क्या हिन्दुस्तानी? हिन्दुस्तानी यानी हम? अजित खुद भी तो हिन्दुस्तानी है? एक अजानी तकलीफ उसके भीतर घिरती। यह तकलीफ कब गुस्से मे बदल

जाती—मालूम ही नही पडता । गोलिया मारने वाले लोगो को इस तरह कैसे भगाया जायेगा ? उनसे लडना पडेगा ! वह अखबार मे सुभाष बाबू का नाम ढूढने लगता था। फोटो। वह ड्रेस यही तो है जो गोली का जवाब गोली से देंगे। इसी तरह भागेंगे लाल मुह के बन्दर !

अगरेज सिपाहियो की रायफलो और बम बरसानेवालो की फोटुए भी तो देखी है अजित ने। निहत्थे हिन्दुस्तानी बेचारे भाग रहे हैं डण्डे खा रहे है मारे जा रहे हैं, मरे पडे हैं। अजित भुनभुना उठता है—ये कम्बख्त अगरेज इन्सान है ? ऐसे होते है इन्सान ?

एक बार फिर याद आती गाधी जी की बात, "मरो और इन्हे मारने दो ! कब तक नही सोचेंगे कि यह इन्सानी काम नही है ? अनायास ही अजित को लगता कि यह भी कुछ ठीक सी बात है। इतने करोड करोड सिरो को मारने के लिए कितनी सारी गोलिया चाहिए ? कितने फासीघर और कितने बम ? हिन्दुस्तान तो बहुत बडा है। सबसे बडी आबादी मे दुनिया का दूसरा नम्बर देश। यहा बहुत इन्सान। और वे भी इन्सान है जो मार रहे है कभी न कभी तो लगेगा ही कि क्या ठीक कर रहे हैं वे ?

और फिर एक दिन यही हुआ। उन्हे ही लगा होगा कि कब तक मारेंगे इन्हें ? ये औरतें बच्चे, बूढे ? राम राम। दिल भर आया होगा उनका। बोले होंगे—"अच्छा भाई हिन्दुस्तानियो अपना यह देश सम्हालो। हम चले। " और वे चले गये। सीनो के सामने गोलिया हार गयी ! इसीलिए तो गाधी सिर्फ गाधी नही—महात्मा।

अजित इसी तरह पल भर मे पचास साल की यात्रा कर लेता है वक्त, समस्याओं और दुनिया की सारी राजनीति को इस तरह लाघता हुआ जैसे बच्चे धरती पर खाने बनाकर खेलते है बेहद आसानी से।

पर इन दगो ने उसे थप्पड मारकर पहली बार जगाया था नींद से नीद—अब अखबार पढने होंगे। यह सब सिर्फ पढकर भूल जाने की बात नही है। कहा किन जगहो पर अगरेजो से कैसे लडाइया हुई हैं, यह सब सिर्फ सुना या उडती-उडती निगाहो से देखा ही था अखबार मे पर इन दगो ने तो बिलकुल ही कनपटी पर थप्पड मारकर जगा दिया है !

एक अजित को ही नहो, सबको यह सब समझना होगा—इसी तरह सहोद्रा, सुरगो, सुनहरी, मायादवी, यहा तक कि जया मौसी से भी कहं ज्यादा समझनेवाला मामला है। अजित अनायास ही बहुत गभीर हं उठा है।

और जब आज मायादेवी बूढे मास्टर जी को दगो की आग के वी तीस रुपये माहवार के लिए धकेलने जा रही हैं, तब कुछ ज्यादा ही गभी और चिन्तित हो उठा है अजित।

"कहा गया था तू ? "

परेशान होकर अजित ने देखा था मिन्नी को। वह मुस्करा रही थी बोली, "जानता है कितनी बार पुकारा था मैंने तुझे ? "

गरदन हौले से हिलाता हुआ अजित उस जगह वापस आ पहुचा है जहा से चला था—कैसा पागल है अजित ? दगे, नेहरू, गाधी, हिटलर बम गोले क्या कुछ सोचता ही चला गया ? सामने को भूल ही गय बिलकुल ? मिन्नी और ताश के पत्ते अजित ने याद किया—लाल पा की बेगम मागी थी उसने। मुस्करा उठा। उसके सामने पडी थी बेगम कहा, "मेरे पास आयी है। "

"वह तो बडी देर से आ गयी थी, पर मैं तो यह देख रही थी कि जागते जागते सो लेता है ?" मिन्नी हसने लगी थी। बोली, "अब उठा पत्ते। बाट।"

"नही, अब नही खेलूगा।" कहकर अजित उठ पडा था।

मिन्नी कुछ नही बोली। उठी और उसके पीछे हो ली। अजित बराम को पार करता हुआ सीढिया तक जा पहुचा। मिन्नी बोली थी, "अजित !

अजित मुडा। उसकी आवाज कुछ भारी थी। पूछा, "हू ?"

तेरा भी मन नही लगता ना ?" मिन्नी की आखें छलछला आयी थं अजित समझा नही। सिर्फ उसे देखता रहा।

"जया मौसी के बिना बहुत बुरा लगता है ना ?" मिन्नी रुआसी नहीं हुई, लगभग रो पडी थी।

और अजित के मुह से शब्द नही निकला। थूक का घूट निगला-

लगा कि वह भी रो पडेगा—जल्दी जल्दी सीढिया पार करता हुआ सडक पर जा पहुचा।

लग रहा है जैसे शब्द अब भी पीछे है, " तेरा भी मन नही लगता ना ?"

अजित सिर झुकाये चला जा रहा है मिन्नी के शब्द, जया मौसी, मास्टर जी की ट्यूशन, दगे फसादो का वक्त छुरे चलते हैं यही सब दिमाग मे।

हार्न की तेज आवाजो ने उसे झकझोर दिया। घबराकर पीछे देखा। एक ट्रक उलटा उलटा घुसा आ रहा है गली मे बार बार रुक जाता है। बार बार शुरू। गली सकरी है। आगे से रास्ता बद। इसीलिए एक दो आदमी पीछे की तरफ से चिल्लाते है, "आने दो ! आने दो ! "

अजित साइड मे खडा होकर थम गया। फिर याद आया—शिवमन्दिर है, जल्दी से चप्पलें उतार दी। शभू नाई के इस मोडवाले मकान म एक शिवमदिर भी है। बहुत पुराना। कहते हैं कि शभू के पूवज बहुत धार्मिक थे, उन्होने बनवाया था। किसी ब्राह्मण को पूजा पाठ के लिए रखते आये है इन दिनो वामन पुढरीकर पूजा करता है। मराठीवाला ब्राह्मण। लाल सोला—रेशम की धोती—पहनकर पूजा करता है। ऊपर से नगे बदन। सिफ जनेऊ झूलता हुआ। गले म रुद्राक्ष की माला। नग पर। यह हुआ वामन पुढरीकर।

भीतर ही था। कुछ श्लोक बडबडाता हुआ। पर उस ओर अजित ज्यादा ध्यान नही दे सका। ट्रक उलटा उलटा काफी आगे आ चुका है। पर किसलिए आया होगा ? इस गली मे ट्रक आया ही क्यो ? फिर इस दगे फसाद म ?

ट्रक के आते ही पल भर म चाद मिया और इब्राहीम अपनी अपनी इमारतो से बाहर आ पहुचे। व परेशान और हकबकाये हुए स लग रह थ। बदहवास हालत म ही उन्होन पुकारें लगानी शुरू कर दी थीं, 'अमा फते मिया ? शराफत ? अरे हुसैन ? जल्दी करो भई ! वक्त नहीं है। बगमा से इल्तजा करा कि इस वक्त लाज शरम न करें। जल्दी जल्दी सामान लगवाए।

चाद मिया ता दौडे दौडे भीतर ही जा पहुचे। और फिर अजित ने देखा कि आधी-तूफान की तरह सरकारी रगरेज के सारे ही घरवालो ने एक एक करके ढेर-ढेर सामान ट्रक मे फेंकना शुरू कर दिया। कई बेगमो के चेहरे कभी नही देखे थे अजित ने पर उन्हें भी देखा

सारी गली के लोग इकट्ठा हो गये थे—औरतें-मर्द, बच्चे—सब। कुछ लोग आग भी बढ आये थे, "लाओ चाद मिया, हम लोग मदद करें।"

श्रीपालसिह ड्राइवर बोला था, "यह अच्छा नही कर रहे हो मिया? आखिर इस गली और धूल मे हम लोग साथ-साथ खेले है, सुख-दुख मे शरीक हुए है। क्या तुम्हारी जान लेंगे? राम-राम! यह सोचना तक पाप!" पर श्रीपालसिह सामान भी रखवाता जा रहा था।

चाद मिया की आखें भर आयी। बोले, "मैं जानता हू श्रीपाल भाई, पर यह सब वक्त की करामात है। आप और इस महल्ले के अजीज हमारे खून के नही ता मुल्क की मिट्टी के तो हैं पर उन शैतानो को कौन रोकेगा जो इसान नही रहे है—सिर्फ जानवर हो चुके हैं। भले ही वह मुसलमान हो या हिन्दू!"

"हमारे रहते भला किसकी हिम्मत है मिया? इस इमारत को छू भी नही सकेंगे एस लोग।" श्रीपाल जैसे आहत होकर चिल्लाया था।

"पर खुदा न करे, किसी वजह से ऐसे शैतान आप पर टूट पडें।' सहसा इब्राहीम बोल पडे, "वे तो इस कदर खून के प्यासे हैं कि मुसलमान को बचानेवाले अपने भाई का गला काट लें और हिन्दू को बचानेवाले मुसलमान भाई का मुसलमान गला काट लें वे हिन्दू या मुसलमान नही हैं भाई जान! व सिर्फ शैतान हैं। शैतान का कोई मजहब नहीं होता!"

"हा, जनाब इसीलिए यही बेहतर है! खुदा के लिए हमे इजाजत दीजिये। रुखसत कीजिये।" रो पडे चाद मिया।

और अजित हतप्रभ रह गया था। श्रीपालसिह ड्राइवर भी रो पडा। और दोनो रोते रोते [ही ट्रक मे सामान भरने लगे थे। श्रीपालसिह की देखा-देखी बहुत-से लोग जुट गये थे सामान भरवाने म। खुद अजित भी छोटा छोटा सामान रखवाने लगा था चाद मिया का बेटा शरीफखान उसका दोस्त जो था। कभी-कभी इब्राहीम का बेटा मुन्ने मिया भी अजित

से बोनता खेलता था अजित को खुद अच्छा नही लगा था उन सबका जाना। शरीफ खान न कहा था, "तू पाकिस्तान आयेगा ? अजित '

"आऊगा अगर तुम पता दोगे तब ?

"मैं वहा सब मुसलमानो को बतला दूगा कि अजित मेरा भाई है—उसे मारना मत। मगर तू आना जरूर !" शरीफखान की आवाज भर्रा गयी थी।

"तू सर्टीफिकेट साथ ले जा रहा है ना ?" अजित ने पूछा था, "नही ले गया तो तुझे भरती कैसे करेंगे वहा ? '

"कहते है कि यहा का सर्टीफिकेट वहा नही चलेगा।" शरीफ दुखी हो रहा था।

' वह ! कैसी जगह है ? यहा का आदमी चला लोगे और सर्टीफिकट नही चलाओगे ?

तभी ट्रक स्टाट हो गया था

' अच्छा, खुदा हाफिज ! ' शरीफखान अचानक ही गले लिपट गया था अजित के। ट्रक चल पडा था। इब्राहीम, चाद मिया, उनकी बगमें, बच्चे सब पीछे-पीछे जा रहे थे। सारी गली उनसे राम राम, दुआसलाम कर रही थी। और वे सब खुदा हाफिज ! ' जिन्दा रहे तो भाई एक बार इस धरती को चूमने जरूर आयेंगे।"

सबकी आखें भरी हुई थी।

अजित भी उनके पीछे पीछे चला था लग रहा था वे सब किसी अर्थी के पीछे जा रह हैं। सहसा अजित के कन्धे पर हाथ रखा था मोटे बुआ ने "सुन पडित ?'

'क्या है ? ' थम गया था अजित।

' जाने दे स्साला को ! "

अजित हक्का-बक्का देखने लगा था उन्हें।

' तू आ मेरे साथ।' वह अजित को बाह पकडकर पीछे खींचने लगा।

पर कहा ?'

'बतलाता हू।' कहता हुआ मोटे बुआ उसे फिर से शिवमन्दिर पर ले है। कहता है, ' बैठ। फिर खु भी चबूतरे पर बैठ जाता है।

"बोलो।" अजित खडा है।

"पहले बैठ तो सही।" वह कधा दबाकर अजित को बिठा लेता है अपने पास, "ये स्साले पागल हैं। इन पाजियो को रोकन का मतलब ?"

"तुम इब्राहीम और चाद मिया के बारे मे कह रहे हो ?",

"हा।" अजित की ओर सख्त निगाहो से देखता है मोठे बुआ, "इस गली के हिदू बेवकूफ हैं। उन सालो को आराम से निकलने दिया। यही नही, इस तरह विदा करने गये हैं, जैसे राम जी न अयोध्या छोडी हो। एकदम गधे स्साले!"

अजित उसके गुस्से और गालियो का अथ नही समझ पा रहा है। हैरत से देखता है। कहता है "व बेचारे हमेशा के लिए अपना घर, देश, वह धरती छोडकर जा रहे हैं मोठे बुआ, जहा वे पैदा हुए, खेले, पढे लिखे। इस गली म तो सब भाई भाई बनकर रहे थे—पर हिदू-मुसलमानो ने आपस मे लडकर उन्हें भी डरा दिया। एक बार शराफत ने बतलाया था मुझे कि उसे घर छोडना पडेगा। वे सब डर गये हम लोगो से।"

मोठे बुआ झुझलाया हुआ-सा देख रहा है उसे। बडबडाता है, "जाने नहीं देना था स्सालो का!"

"तब क्या लूट मार करना था? उन को छूरे मारने थे? ' अजित को गुस्सा आ गया है। पल भर मे तय कर लेता है आज अच्छी तरह मोठे बुआ को फटकार कर छोडेगा। यह आदमी कभी भी मारपीट, गुण्डागर्दी से अलग सोचता ही नही है। बोला, "उन्होने हमारा क्या बिगाडा था?'

"और उन बेचारे हिदुओ ने क्या बिगाडा है, जिनको उन्होन बरबाद कर दिया है, जानें ले ली हैं, लूट लिया है? '

"अगर कुछ मुसलमानो न ऐसा किया तो बेचारे चाद मिया और इब्राहीम मिया को क्यो मारा जायेगा, जरा बतलाओ तो?" अजित बहस करता है।

"बात चाद मिया और इब्राहीम की नही है। हिदू और मुसलमान की है।" मोठे बुआ का एक झुझलाया हुआ तक।

"वाह वाह, क्या दिमाग लगाया है तुमने रे!" अजित मुह बिचकाता है। "झगडा करेगा झडू और मारा जायेगा बडू। वाह वाह बुआ, क्या

आइडिया सोची है।'

"तू तू स्साले महात्मा गाधी है ?" चीख पडा है मोट बुआ।

अजित देखता है उसकी ओर महात्मा गाधी ? अजित महात्मा गाधी ? जोर से हस पडता है, 'यह भी क्या आइडिया सोची है तुमने! मैं और महात्मा गाधी ? तुम तुम पागल हो गए हो बुआ! एकदम पागल हो चुके हो यार!" फिर वह खडा नही रहता वहा, चल पडता है अपनी गली की ओर

सुनहरी बैठी है केशर मा के पास।

इसे देखकर अजित को चिढ होती है। सुदर है, खूब बढिया लगती है, निगाहे भी खास तरह की सब अच्छा लगता, फिर भी अचानक चिढ होती है। अजित भूल नही पाता कि सुनहरी का पति मुकुल जमनाप्रसाद भगलची है। सुनहरी उसे गालिया बकती है। उसने मुकुल को एक एक पैसे का मोहताज कर रखा है। उसका मकान अपने नाम करवा लिया है किरायेदारो से किराया भी ले लेती है, फिर सुनहरी ने महेसरी और जाने कौन कौन दोस्त शहर म बना रखे हैं। उनके साथ सिनेमा देखती है, हाल मे खराब खराब हरकतें करती है और जब अजित ने उसे धमकी दी थी कि वह केशर मा से सब कुछ कह डालेगा तो सुनहरी ने उलटे उसे हा धमकी दे दी थी कि अगर अजित न कोई ऐसी-वसी बात की तो वह अजित की वह हरकत भी केशर मा को बतला देगी जो अजित ने उसके साथ की थी।

अजित का मुह बन्द हो गया था।

जब जब सुनहरी सामन आ जाती है, अजित सोचने लगता है कि उसने सुनहरी के सोते हुए उसके बदन पर हाथ फिराकर उसे भीचकर, जो आनद लिया—क्या मतलब था उसका ?

बस अजित इतना जानता है कि आनद आया था उसमे। पर इस तरह के आनद को सब गलत कहते हैं—गदा। पर यह गदा ही आनन्दायक भी है। अजब दुविधा म उलझ जाता है अजित। जया मौसी से पूछना या शायद मिन्नी और वह मिलकर ही सोचते किन्तु मौका ही नहीं मिला।

जया मौसी सुरेश जोशी के साथ भाग गयी और मिन्नी के घर में कोहराम मचा हुआ है। खुद मिन्नी बुरी तरह परेशान और दुखी है। इस समय ये सब बातें नहीं।

पर सुनहरी के आते ही दिमाग में ये सब बातें।

रोज की तरह शाम के खाने की थाली परोसकर जब सुनहरी उसके सामने रख गयी थी, तब अजित का मन नहीं हुआ था कि रसोई से हटकर बैठक में जा पहुंचे, जहां केशर मां और सुनहरी बातें कर रही होंगी। वहीं खाना खाकर वह कमरे में पहुंचा था। चुपचाप चादरा ओढ़कर लेट रहा था।

'तुम्हें मालूम है बुआ, एक एक करके सब चले गये हैं " सुनहरी बड़बड़ायी थी।

"कौन?" केशर मां ने तम्बाकू फांकते हुए सवाल किया था।

"मुसलमान।" सुनहरी बोली थी, "वह चांद मियां, इब्राहीम, गफूर तांगेवाला, सब "

'तब पूरे मकान खाली पड़े होंगे?"

"हां मगर कौन परवाह करता है इस सबकी।" सुनहरी ने उसी तरह उत्तर दे दिया था।

और सहसा याद हो आया था अजित को—उसे अखबार पढ़ना होगा। हमेशा पढ़ेगा। आखिर कुछ तो होता ही है, जो अजित के सामने उसके शहर में न होता हो, पर उससे असर पड़ता है। ऐसा न होता तो चांद मियां, इब्राहीम और गफूर घर, गली, महल्ला छोड़कर क्यों भाग गये होते? कितने बढ़िया-बढ़िया मकान थे उनके? जमीन, सामान सब कुछ। पर सब छोड़ गये। घबराये हुए थे। यहां रहे तो मारे जायेंगे। मोठे बुआ कह रहा था कि मारना था उन्हें। कितनी अजीब और पागलपन-भरी बात। मोठे का तक यह कि कहीं दूर, पर शहर में हिन्दुओं को मार रहे हैं वे—इसलिए यहां रहनेवाले चांद मियां और इब्राहीम को मारा जाये। कैसा पागलपन-भरा इरादा। और वे भी क्या कम पागल होंगे, जो हिन्दुओं को मार रहे होंगे? उन बेचारों ने किसी का क्या बिगाड़ा?

लगता है कि कोई किसी का कुछ नहीं बिगाड़ रहा है—बस, जीवन में घटते हर इत्तफाक के साथ ही आदमी 'कुछ तो भी' करने लगता

है। इस कुछ तो भी का दिमाग-मन से कोई वास्ता नही, पर करता है।

और कभी-कभी अजित को लगता है कि यह 'कुछ तो भी' करना सिर्फ हिन्दू मुसलमान का ही तो नही है, व्यक्तिगत रूप मे हर जगह हर कोई यही कुछ कर रहा है। जया, मायादेवी, मास्टर जी सुनहरी, सहोद्रा सुरगो सबके सब यही कुछ कर रहे हैं। क्या इसीका नाम ससार है? एक दूसरे को मारना, छलना, कुछ चोरी से करना और कुछ खुल्लमखुल्ला निष्कप वही। समझ से बाहर। अजित सोचता है तो बेतरतीब, बेमतलब सोचता ही चला जाता है। पर ऐसा नही है

एक बार मास्टर जी बोले थे, 'तू अखबार पढाकर, लोगो से पूछाकर कि बाहर क्या कुछ हो रहा है?'

"क्या कुछ मास्साब?" अजित की समझ मे कुछ नही आया था।

"अर, पागल है क्या तू?" मास्टर जी ने अगुली का धक्का देकर ऐनक को नाक पर ऊचा किया था "घर के बाहर कुछ लोग थगडें, चिल्लायें, गाना गाये तो क्या तू घर मे ही घुसा रहगा? "

"क्यो घर मे क्या घुसा रहूगा? " अजित ने उत्तर दिया था, 'सब कुछ देखूगा। '

तो तेरे भीतर देखन की इच्छा होगी ना? "

"होगी क्या नही?"

"इसीलिए कहता हू—घर के बाहर जो हो रहा हो उसे देखना चाहिए। यह इच्छा या ही नही होती पगल यही इच्छा तो है जो मनुष्य को समाजी जन्तु बनाती है। फिर सच तो यह है कि घर के बाहर होने वाले शोर से तेरे घर मे असर न हो—यह तो होगा नही। इसलिए बाहर की जानकारी होनी चाहिए।'

"वह सब क्या लोगो से पूछ-जानकर की जा सकती है मास्साहब? '

"बहुत कुछ पूछ-जानकर और बहुत कुछ अखबार से

अजित ने बात दिमाग मे बिठा ली थी, फिर भूल गया था—यह भी याद नही। आज जब चाद मिया, इब्राहीम मिया गय हैं तो लगता है कि उस दिन मास्साब ने ठीक कहा था। अजित न अखबार पढ़ होते, न सुनहरी सहोद्रा के चक्कर को लेकर माथापच्ची न की होती तो पूरी तरह

जान सकता कि आखिर क्यो पूवजो का घर छोड गय वे ? किसलिए कही दूर हिदू मुसलमानो को, और मुसलमान हिदुओ को मार पीट रह हैं, लूट रहे है ? अजित सब कुछ जानता-समझता होता, पर अब बौडम की तरह व्यथ भीतर ही भीतर कुलबुलाता छटपटाता रहता है। सहसा अजित ने चादर से मुह बाहर निकालकर कहा था, "मा "

"क्या है ?"

"कल से अखबार बाध लो।"

"क्यो ?"

"रोज पढना होगा। आखिर हमे मालूम तो होना चाहिए कि बाहर क्या हो रहा है ? कौन किसे मार रहा है, क्यो मार रहा है ? अगरेज चले गये हैं। सुनते हैं लाड माउण्टबेटन भी चले जायेंगे फिर उनकी जगह कौन आयेगा "

केशर मा हैरत से उसे देख रही हैं

अजित कहे जाता है, "अब देखो ना अपनी गली से चाद मिया चले गये, इब्राहीम और उनके बच्चे औरतें चले गये। सब बतलाते हैं कि पाकिस्तान तो कोई जगह नही था जसे हमारा हिदुस्तान है, पर कहते हैं कि अब कोई जगह हो गया है। आधा हिन्दुस्तान ही पाकिस्तान बन गया है। ठीक है कि बन गया, फिर मार पीट क्यो कर रहे हैं आपस म ? किसलिए एक दूसरे के घर छीन रहे हैं ? यह सब यह सब हमे मालूम होना चाहिए ना।"

सुनहरी हस पडी है एकदम, "पहले तू अपनी पढाई तो कर ले, फिर यह सब पढना और यह पढकर तू करेगा क्या ?"

"तुम चुप रहो जीजी।" झुझला पडा है अजित। जब-जब अजित केशर मा से कोई बात करना चाहता है, करता है, तो यह हमेशा बीच मे टाग अडाती है। बोला था, "तुम्हें चुप रहना चाहिए। दस्तखत करना तो तुम्हें आता नही। बहुत-से जेवर पहन लेने से ही बीच मे बोलने की समझ आ जाती है क्या ?"

सुनहरी एकदम चुप हो गयी है। उदास और कुछ नाराज। केशर मा बात सम्हालती हैं, "ठीक है। देखेंगे।'

'देखेंगे नही। अखबार खरीदेंगे। रोज पढकर जाया करूगा सब।"
अजित जरा रोबीले स्वर मे उत्तर देता है।

और फिर अगले दिन बहुत सुबह जागकर अजित छज्जे पर बैठा अखबार वाले लडके को देखता रहा था—वह आयेगा। रोजाना इसी गली के सामने से निकलकर अगली गली मे अखबार देने जाता है। किसके यहा अजित को मालूम नही, पर उसे पुकारकर कहेगा कि अखबार उसके यहा भी दिया करे रोज। यही किया था। वह निकला तो अजित जोर से चीखा था, 'ऐ भाई! इस घर मे भी एक अखबार रोज डाला करा।"

लडके ने घर, दरवाजे, छज्जे को ठीक से देख लिया था। कहा, "अच्छा।" वह जाने लगा तो अजित बोला था, "आज का अखबार तो डालो।"

लडके ने जवाब दिया "नही। कल से दूगा। आज तो गिने हुए हैं।" फिर वह साइकिल पर पैंडल मारता हुआ आगे बढ गया था।

अजित खुश। चलो, कल से सही, पर अखबार आया करेगा। उसी तरह जिस तरह उसके पिता के समय आया करता था। अनायास ही अजित इस अहसास से भर गया था कि वह बडा होने लगा है, समझदार भी। जब ऐसा होता है तभी तो आदमी के यहा अखबार आना शुरू होता है।

स्कूल के लिए तैयार हुआ। छोटे बुआ ने अपने घर के आगन से ही चीखकर पूछा था, पण्डित, रेडी?"

यस रेडी।" अजित ने किताबें हाथ मे ली। सीढिया की ओर मुड गया। अभी उतरना शुरू ही किया था कि सहसा चीख उठी। बुरी तरह चौंक गया था अजित। लगभग दौडते हुए सीढिया उतर गली म आ पहुचा। कल्पना थी—चीख बाहर के ही किसी मकान से उठी है। गली मे आकर देखा कि शभू नाई के घर की ओर कम्पाउण्डर शामलाल, श्रीपाल ड्राइवर, सहोद्रा सुनहरी, रामप्रसाद मैंनपुरीवाली सभी भागे जा रहे हैं। सहमे हुए बच्चे गली मे आ खडे हुए थे।

अपने घर से मोठे बुआ, छोटे बुआ भी भाग आये थे। बहुत जोर की चीख। फिर गली के पार से भी कई लोग भागकर आते दिखे। सब शभू के मकान की तरफ।

क्या हुआ ?

"कोई चीखा था—गया शभू।   "

केशर मा छज्जे पर आ खडी हुई थीं। पूछ रहीं थीं, "क्या हुआ रे ?"

मोठे बुआ चिल्लाया था, "काकी, शभू नाई मर गया शायद   ।"

"अरे नही !" अविश्वास और अचरज से चिल्लायी थी वह।

शभू मर गया।   अजित ने हल्का सा स्मरण का धक्का महसूस किया था अपने भीतर। उस दिन अच्छा भला-सा आशीर्वाद दे रहा था अजित, पर रेशमा भाभी ने लिया ही नही। कहा, "नही लाला, यह आशीर्वाद मत दो। अपने वचन लौटा लो   मुझे कुछ नहीं चाहिए !" और आज मर गया शभू। जब किसी स्त्री का घर वाला मर जाता है तो लोग राड कहने लगते हैं—राड माने विधवा।

"आ पण्डित ! " छोटे बुआ ने कहा, "देखें तो कैसे मरा ?" फिर वह लपक पडा था उस ओर। अजित, मोठे बुआ, महेश   सब।

शभू के भीतर वाले बरामदे मे खासी भीड घुस पडी थी। सारा महल्ला। श्रीपालसिह चिल्ला रहा था, "अरे, उसे धरती पर लो !   जल्दी !"

अजित, छोटे बुआ, मोठे बुआ सब बाहर ही उछलते रह गये। कितने लोगो ने घेर रखा था शभू को। रेशमा की चीखें आ रही थी। उसके साथ-साथ सुरगो, सहोद्रा, सुनहरी, मैनपुरीवाली, वैष्णवी कितनी ही औरतो की आवाजें भी—सब गुत्थमगुत्था।

"अरे रे   इत्ता क्यो हलकान होती है   जरा धीरज धर !" "चुप चुप। ग्यारस के दिन जा रहा है, बैकुठ मिलेगा।"   " अरे, तू तो रेशमा दूसरो का जी भी घबडाय दे रही है।   जरा चुप तो कर !"

सहसा एक पुरुष आवाज आयी थी, "भई हवा आने दो। भीड क्यो की है ? हटो ! हटो !   "

"तुलसीजल लाओ कोई !   जल्दी !"

"रेशमा, गौदान, वस्त्रदान, जो भी पुन करना है जल्दी कर !   "

रेशमा की हिचकिया   चूडियो की खनखनाहट   दौड के भम् भम स्वर।

अजित और छोटे बुआ एक दूसरे को लाचार निगाहो से देख रहे थे।

भीतर क्या हो रहा है—दीखता ही नहीं।

कुछ मिनटो मे भीड छटी थी। खडे हुए कुछ लोग चेहरे लटकाये गली मे छितर गये थे।

तब हल्की हल्की दरारो के बीच से अजित ने देखा था—धरती पर चारपाई के ठीक पास शभू नाई एक चटाई पर पडा है चित! आखें, मुह खुला हुआ। वैसा ही वीभत्स, जैसा जीवित होने पर दीखता था। रोती रेशमा कुछ औरतो से घिरी है। गली के महादेव पडित और वष्णवी का पति पाडेजी जोर जोर से श्लोक बोल रहे है। तुलसीजल के कुछ पत्ते शभू के खुले मुह और चेहरे पर है। वह रह रहकर हिचकी लेता है, फिर एकदम स्थिर हो जाता है।

"श्री राम! श्री राम!" कई लोग बोलते हैं। वामन पुडरीकर और पाडेजी एक गहरी सास लेकर उठ पडे हैं "मुक्ति हुई।"

रेशमा जोर-जोर से चीख रही है औरतें समझा रही हैं। कई रो भी रही हैं।

भीड क्रमश छट गयी थी। पर अजित, छोटे बुआ, मोठे बुआ, महेश और जाने कितने बच्चे खडे भयभीत से शभू को देख रहे थे। सहसा श्रीपालसिह चिल्ला पडा था, "हटो! हटो यहा से! तुम्हारा यहा क्या काम! अपना काम देखो!" फिर उसने क्रमश कुछ की बाहें कठोरता से पकडकर दूर तक खीच फेका था। घक्रियाते-से चले गये थे सब।

वापस गली मे आ पहुचे थे। सब ओर सन्नाटा। सिर्फ कुछ स्त्रियो के रोने चीखने की आवाजें।

महेश बडबडाया था—मैनपुरी वाली का बेटा—"अब गली मे नाई कहा से आयेगा यार? बेचारा अच्छा था।"

"अच्छा था! अरे, बदमाश था, मोठे बुआ बडबडाता है, "परी की सानी न बन्द कर रखा था अब कम से कम खलगी खायगी तो! साप बनकर बैठ गया था पसे पर।'

'अच्छा? साप भी बन जाता था शभू—कैसे? बुआ, बतलाओ तो यार!' अजित एकदम सयाना करने लगा है। सुना है कि जहां-जहां धन होता है, वहां-वहां सांप रहता है—पर आदमी ही वह सांप [illegible]।

है—यह पहली बार मालूम हुआ। अजित को यह कहानी जानने लायक लगी।

मोठे बुआ ने कुछ क्रोध से अजित को देखा। बोला, "पण्डित ! तू हमेशा ही पोगा रहेगा।"

"क्या, क्या हुआ ?" अजित ने कुछ नाराज होकर कहा, "जब कहते हो कि शभू साप बन जाता था तो बताते क्यो नही कि किस तरह बनता था ?"

जोर से हसा था मोठे बुआ, "देखो स्साले की बातें ! टाग हर जगह अडाता है। समझता कुछ नही। सुनहरी इसके साथ सोती है। सहोद्रा से यह बातें कर लेता है। मास्टर जी की साली जया से इसकी दोस्ती थी, वह छछू दर मिनी इसी के साथ खेलती है और यह गधा का गधा !"

तिलमिलाकर अजित ने कहा था, 'गधा नही हू, इसलिए तो ये सब मेरे साथ सोती, खेलती और दोस्ती करती हैं। गधा होता तो ऐसा करती ?"

मोठे बुआ ने नथुने फुला लिये। कहा, "सच तो यह है पोगा पण्डित, कि ये औरतें जानती हैं कि तू गधा है—इसीलिए तुमसे निभ जाती है। नहीं तो '

अजित हसा।

"खी खी क्यो करता है ?" मोठे बुआ ने जबडे कस लिये।

पर अजित ने परवाह न करते हुए कह ही डाला, "इसलिए कि दूसरे को गधा कहनेवाला खुद कितना बडा गधा है—यही देख रहा हू।"

"पण्डित ! " मोठे गरजा।

"रोब मत बतलाओ। अगर तुम गधे न होते तो मिनी, जया मौसी को औरत न कहते ? तुम्हे इतना तक तो मालूम नही है कि औरत कौन सी होती है ? '

मोठे बुआ एकदम से हस पडा, "देखो तो स्साला कह रहा है कि औरत नही हैं हा हा हू "

"ठीक ही तो कह रहा है मोठे बुआ।" महेश बोल पडा था, "औरत वह होती है जिसकी शादी हो जाती है। और वह मिनी तो अभी

एकदम बच्ची है —हमारे जैसी।"

मोठे बुआ ने लपककर गिरहबान थाम लिया, "महेश, तू तू बीच म क्यो बोला ?"

महेश कापने लगा। पर दृश्य परिवतन हो, इसके पूव ही मनपुरी वाली आ निकली थी उधर से। और महेश चिल्लाने लगा था, "भाभी ! भाभी, देखो ये ' मोठे बुआ ने देखा, एकदम गिरहबान ढीला कर दिया। मैनपुरी वाली न तुरत बेटे को अपने से सटा लिया। गरजी, 'तेरा नास हो जायेगा ! तू लोगो को जिन्दा भी रहने देगा कि नही ! मुर्गे खा-खाकर मुटा रहा है बेसरम ! "

' अरे अरे, भाभी मैं बिस को सचमुच मार थोडे ही रहा था। मैं ता एसे ही ऐसे ही जरा ट्रेनिंग दे रहा था बिसको। मोठे बुआ बडबडाता हुआ खिसक गया गली के बाहर।

मैनपुरी वाली बडबडाती, गालिया देती महेश को अपने साथ घर म ले गयी।

केशर मा ने कहा था, "तू स्कूल जा रहा है या तमाशा देखेगा यहा और छोटे तू भी "

दोनो एकसाथ बोले थे, "बस, जा रहे है मा ! जा रहे हैं।" व चल पड थे। रास्ते मे शमू नाई के मकान से गुजरते हुए उन्होने सारे मुहल्लेवालो को एकत्र देखा था। श्रीपाल और शामलाल बतिया रह थे, "सामान का पैसा ले लो रेशमा से "

"कित्ता माग ?'

"माग ले कोई सौ रुपय इसमे सब हो जायेगा—लकडी, कफन, घी वी सब।'

और शामलाल सहमता सा उस ओर चला गया था, जिधर शमू की लाश रखी थी। छोटे बुआ और अजित चाल धीमी करक देखत-सुनते गये थे। फिर अजित का मन हुआ था जाकर रेशमा से पूछ, 'भाभी ! उस दिन तुमन आशीर्वाद लौटाकर अच्छा नही किया। न लौटाती ता शायद शमू काका बच गया होता ' पर नहीं—इस समय यह नही कहा जा सकता। व आगे बढ़ आये थ।

"पण्डित। आज शभू मर गया यार। स्कूल जाने का दिल नहीं करता।" सहसा छोटे बुआ बडबडाया था।

"तब करेंगे क्या?" अजित ने जवाब में पूछा। स्कूल मे उसका मन भी नही लगेगा—यह भी जानता था।

"गोत मारें?"

गोत! अजित घबरा गया था। एक बार छोटे बुआ की ओर देखा—डर और परेशानी उसके चेहरे पर भी थी—फिर जाने क्यो उसे अजित से ही भय लगा था। कहा, "एक ही डर है यार, किसी ने घर पर कह दिया तो सब गडबड हो जायेगा। बाई बहुत मारेंगी।" छोटे मोटे अपनी मा को बाई ही कहते थे।

"हा, यही मैं साच रहा हू। केशर मा भी बहुत मारेंगी।"

"पर पता किसे पड़ेगा?" छोटे बुआ बोला था, "हम लोग बहुत दूर निकल जायेंगे—कटोराताल या ऊधर फूलबाग की तरफ। उधर अपनी तरफ का कोई नही मिलेगा।"

"हा हा, हो सकता है। फिर आज शभू को मरघट ले जाने मे ही सब लग जायेंगे। चन्दनसहाय ही ज्यादा घूमता है। वह भी शायद कचहरी से आ जायगा।" अजित ने राय दी। मालूम था कि महल्ले का कोई आदमी मरे तो सारे के सारे महल्लेवाले अपने-अपने काम से लौटकर उसे मरघट ले जाते हैं—वहा जलाया जाता है लाश को। खुद अजित के पिता मरे, तब भी यही हुआ था। पूरा महल्ला ही नही, सारी गली आ गयी थी। जो जितना बडा आदमी होगा, उसके साथ उतने ही ज्यादा लोग मरघट जाते हैं।

"तो क्या हुआ—बोल!"

"हा, मारो गोत!" अजित ने सहसा जुटा लिया था। एक बार देखा जाये कि गोत का मजा क्या है? क्यो बार-बार उसके साथ पढने वाले बच्चे गोत मारते हैं। मोठे बुआ तो सिनमा भी देख आता है। और यह भी तो कितनी परशानी की बात है—रोज रोज सुबह जागते ही स्कूल। दोपहर भी किताब, फिर मास्टर जी के घर जाना। लौटकर मास्टर जी जो सवाला दे वह दूसरे दिन के लिए कापी म लिख लाना यह सब बडा उबा दशा है। आज कुछ नया होगा। यह नया है—गोत!

कुछ पल सोचता रहा था छोटे बुआ, बोला, "ठीक है। तेरी वर्ल्ड हिस्ट्री बिक जायेगी तो तू मेरी वर्ल्ड हिस्ट्री से चला लेना, मेरी बि जायेगी तो मैं तेरी इंडियन हिस्ट्री से चला लूगा। ठीक ?" वह उठ पडा था

"एकदम ठीक!" उत्साहित होकर दोनो चले आये थे। ऐसा ही किय पाटनकर बाजार मे किताबें बेचने के बाद कुल पाच रुपये की दोनो किता से दो रुपये मिल गये। छोटे बुआ ने बाहर निकलकर कहा था, "बहुत पण्डित ! इत्ते मे तो खूब मजे किये जा सकते हैं।"

वे सिनेमा गये थे। नादिया जान कावस की फिल्म। पहली बार अजि को लगा था कि गोत का अपना मजा है घर से बाहर का ससार कु अलग, अनोखा और सुखकारी है बस, पैसे होने चाहिए जेब म।

गोत सामान्य बात हो गयी थी उसके बाद सिनेमा भी और कई कई बातें समझ गये थे दोनो। एक दूसरे से बहस करते और नती निकालते। इन नतीजो ने ही सारी गुत्थिया सुलझा दी थी। सहोद्रा-श्रीपा की, सुनहरी महेसरी की, जया सुरेश जोशी की, रेशमा शमू की और जाने कितनी कितनी गुत्थिया, कितने कितने सवाल ! फिर अखबार भी पढना था अजित। अब दिक्कत नही होती थी बहुत-सी बातो को समझ मे। लगा था कि इस गोत ने ही सब कुछ समझाया बतलाया है। यह होती तो अजित को यही कुछ समझने मे अठारह साल की उमर हो जाती समझ कितने धीरे धीरे चलती थी ? नुकसान हुआ था सिफ यह कि दो फेल हो गये थे ! एक दो दिन दुख हुआ था, फिर सब सहज।

लगता था कि पास होना चाहिए पर अजित के मन ने ढेर ढेर त करके भी किसी बार यह निणय नही लिया—ले ही नही सका कि इ आजाद जिन्दगी के अलावा भी कोई चीज महत्त्वपूण है। फिर एक बार भी तो देख लिया था—केशर मा के बक्स मे जेवर भी बहुत है, पसे भी आखिर क्यो न होते—पुराने जमीदार जो थे।

पढाई लिखाई मे माथापच्ची वे करते हैं, जिनके पास पैसा नही होन न वे गोत मार सकते हैं, न वे सुख उठा सकते है जो अजित या छोटे बु उठा सकते है। और तभी तो मोठे बुआ मार पीट करके, सिर फाड के

पुलिस के हाथ नही आता—पैसा जो है उसके पास।

इधर अगर बहुत कुछ बदला था तो उधर भी काफी कुछ बदल गया होगा।

बहुत कुछ बदला था।

कभी-कभी जया मौसी याद आ जाती थीं। अब तक तो उनके बच्चे हो गये होंगे। अजित सोचता, फिर जी करता कि किसी बार जया मौसी से मुलाकात हो। वह देखें कि अजित कितना बड़ा हो गया

और अजित ही क्या, यह सारा मुहल्ला ही कितना बदल गया। सब कुछ समझ में आने लगा है। लड़की, औरत, मर्द, नदिया, जान कावस, अशोक कुमार, लीला चिटनिस, नरगिस और दिलीप कुमार सब समझ में आता है। यह भी कि सोना क्या भाव बिक रहा है, यह भी कि उसकी नसों में तनाव क्या होता है? और यह भी कि जिस सब पर इतनी झुंझलाहट आती है वही सब तो बहुत सुन्दर है।

केशर मां उसी तरह छज्जे पर बैठती हैं फर्क इतना हुआ है कि बोलती कम हैं

मिन्नी अब उस तरह नही बोलती, न ही उस तरह देखती है—उसकी निगाहें देखकर कभी-कभी अजित को जया मौसी याद हो आती है। अजित ने मास्साब की ट्यूशन छोड़ दी है, पर मिन्नी से दोस्ती उसी तरह है। अजित के पहुंचते ही कुन्दन मास्साब के घर से कुछ भयभीत होकर भाग खड़ा होता है। मिन्नी अब उस तरह अजित का हाथ नही पकड़ती न अजित ही साहस कर पाता है। सब बदला है, लगता है, और और बदलता जायेगा। सोचना तक बदलने लगा है

अब अजित को इस पर भी अचरज नही होता कि यह बदलाव होता क्यों है? अब केशर मां अजित को स्नान नही करवातीं। अण्डरवीयर पहन कर जिस तरह पहले घूम लेता था, उस तरह घूमने की कल्पना भर से उसे हंसी आ जाती है बिलकुल ही पागल था अजित।

जया मौसी की याद काफी कुछ धुंधला गयी थी तब तक। तीन साल हो चुके तीन साल कितनी धूल की पर्त जमा सकते हैं तसवीर

पर ? और कितनी सारी पर्तें साफ हो जाती है। वही गली, वही बाडा, वही जगह, वही लोग पर सब कुछ जैसे एकदम अलग।

पर अचानक ही एक बार फिर जया मौसी की घुघलायी हुई याद बिजली की तरह गली महल्ले के आकाश मे कौंध गयी थी। मोठे बुआ ने बतलाया था, "पण्डित, वह सुरेश जोशी आया हुआ है "

"सुरेश जोशी ?" चौक गया था अजित। "कहा है ? तुम्हे कहा मिला ?"

"ऐसे ही टक्कर गया।" मोठे बुआ ने कहा था, "मास्टर जी के घर मे जा रहा था कि सीढियो के नीचे मुझे मिल गया। बहुत दुबला हो गया है यार ? शुरू मे तो मैं बिसको पहचाना ही नही।"

अजित उत्सुक हो गया था। बोला, "मास्टर जी के यहा ! वहा क्या करने पहुचा है ? और उससे पूछा नही तुमने जया मौसी कहा हैं ?"

"मेरे को क्या करना यार ! बीत गयी, स्साली बीत गयी ! होगी उसी के पास, और कहा होगी ?" कहकर मोठे बुआ सीटी बजाता हुआ बाडे की ओर चला गया था। बाडा भरा हुआ है—शिलेदारी का आखिरी घोडा भी जा चुका मराठे साहब का। सुनते हैं कि सचमुच खाने के लाले पडे हुए है। केशर मा कहती थी, "जागीरदारी-मीदारिया जाते हुए बाजे बज जायेंगे सबके ! " सो बज गये। खुद अजित और केशर मा की भी पहले जैसी हालत नही रही।

सुरेश जोशी आया हुआ है ! अजित के लिए यू ही करके टाल देने वाली बात नही थी। जल्दी से लपक पडा था मास्टर जी के घर की तरफ न हुआ तो वही पूछ लेगा, "कहा हैं मौसी ?"

पर वहा पहुचकर सुरेश जोशी मिला नही था—मिली थी सिर्फ जया मौसी और सुरेश जोशी की बातें मिन्नी, मायादेवी और मास्टर जी की बातें। उसके जाने के बाद उसी को लेकर एक-दूसरे से उलझे रहे थे मायादेवी कह रही थी, "इस हरामी की यह हिम्मत कि इस घर की सीढिया चढ आया ! " वह मास्टर जी से भनभनाये जा रही थी, "तुमन उसे उसी पल धक्के मारकर नीचे क्यो नही गिरा दिया ! "

"कैसी बातें करती हो तुम ? " मास्टर जी कराहते हुए जवाब दे

रहे थे। वह बीमार रहने लगे थे। टयूशना को सम्हाल रही थी मिनी। बोले थे, "ऐसा कहीं किया जाता है ? "

"तो फिर कह देते उससे कि ले जा जया का जो कुछ है। "

अजित बरामदे मे आ खडा हुआ था—क्या जया मौसी का कुछ रह गया है इस घर म, जिसे मागने उन्होन सुरेश जोशी को भेजा था ? कुछ जेवर, सामान किताबें ?

"अब मौसी के किसी सामान पर हमारा हक तो है नही मा।" मिनी की आवाज आयी थी, "दे देना था लाकिट और अगूठी ! "

'तुम बाप बेटी को किसी ने रोका है क्या ? दे देते ! आग लगा देते उसकी हर चीज मे। जिसने इज्जत लूटी, वह दो चीजें भी लूट ले जाता—क्या हर्ज ?" मायादेवी की दहाड।

और दो कदम आगे बढकर अजित भीतरवाले कमरे मे जा पहुचा था। मास्टर जी बोले थे, "आओ अजित, बैठो बेटे।"

अजित की ओर एक बार सकोच भरी नजरो से देखकर मायादेवी भीतर चली गयी थी। मास्टर जी और मिनी चुप हो रहे थे। अजित ने ही छेडी थी बात, "मुझे पता चला कि जोशी यहा आया था ?"

"हा ! ' एक गहरी सास लेकर मास्टर जी ने उत्तर दिया था, "अभी ही गया है।"

"मौसी कहा हैं—कुछ बतलाया ?"

'वह आ जाती तो इतनी उलझन ही क्यो होती ?' मास्टर जी ने एक गहरी सास ली। लेटे हुए छत की ओर देखने लगे।

"पर यह तो बतलाया होगा कि कहा हैं ? किस हाल मे हैं ?" अजित के भीतर ढेर-ढेर सवाल उमड घुमड आये थे।

"यही बतला देता तो शान्ति न मिलती ? पर, पर मुझे लगता है जैसे वह हमें ठगना चाहता था।"

"क्या मतलब !"

मास्टर जी कुछ कह, इसके पहले ही मिनी बोल पडी थी, "मगर बाबूजी यही कैसे कहा जा सकता है कि वह ठग रहा था। जया मौसी के नाम से झूठ-मूठ को ही लाकिट और अगूठी माग रहा था ?"

"मैं कब कहता हू, पर जया को अगर वे चीजे चाहिए थी तो एक खत लिखकर उसे दे देती । हमे क्या एतराज ? उसकी चीजें थी, सम्हाले ! अब यह कैसे मान लिया जाये कि इसे जया ने ही भेजा है ? फिर मैं तुम्हे बतला ही चुका हू—वर्मा साहब रायपुर से लौटकर क्या बोले थे ?"

"यही तो कहा था उन्होने कि जया मौसी उन्हे स्टेशन पर मिली थी जो आदमी साथ था, वह जोशी नही था, कोई और ही था। इसका मतलब यह तो नही कि मौसी और सुरेश साथ नही रहते हैं ? " मिन्नी बहस किये गयी थी, "हो सकता है मौसी और सुरेश जोशी का वह परिचित आदमी रहा हो । इससे यह साबित होता है कि सुरेश जोशी पर अविश्वास किया जाना चाहिए ?"

"तो यह भी कहा साबित होता है कि उस पर विश्वास किया जाना चाहिए !" अचानक बातचीत मे फिर से मायादेवी आ टपकी थी । उन्होने कहा था, "और साबित भी हो जाय तो क्या जरूरी है कि उसकी दोनो चीजें दी जायें ? जिस लडकी ने घर से भागकर सब लोगो की नाक कटा दी हो, उसका इस घर की किसी चीज से कोई सरोकार नही !"

समझना कठिन नही था कि जया के दो जेवर इस घर मे हैं और उन्ही को लेने जोशी आया था, पर मास्टर जी को विश्वास नही हुआ कि जया ने भेजा होगा शायद यह भी विश्वास नही कर सके थे कि जया और सुरेश साथ साथ है । *किन्ही वर्मा जी ने रायपुर स्टेशन पर जया को किसी और युवक के साथ देखा था ।* कुल कहानी इतनी

क्या वही आदमी रहा होगा—जिसकी फोटो नैनीताल मे जया की बेटी तुली के पास है ?

तब सुरेश जोशी से कैसे बिछड गयी थी जया मौसी ? या सुरेश ही बिछड गया ?

कौन सा गणित-आकडा गडबड हो गया था उनके बीच ? या उस समय तक नही हुआ था बाद मे हुआ ? पर कैसे ? कब ? और अब जया मौसी का ही क्या सभी का गणित तो गडबड हुआ ? बात बात मे

एक बार मिन्नी बोली थी, "मैं प्राइवट बी०ए० करके बैंक की नौकरी कर लूगी। अच्छी तनखाह मिलती है उसम।"

अजित उस समय तक सारे महल्ले म आवारगी की जिन्दगी जीते हुए भी व्यक्ति रूप म माठे बुआ या और और लोगा की तरह अलोकप्रिय नहीं हुआ था। पूछा था, "क्यो शादी नही करेगी?"

अच्छी-खासी मिन्नी का चेहरा अचानक ही बदरग हो गया था। कुछ भयभीत होकर अजित की आखा म देखने लगी थी, फिर उसने एक दीघ नि श्वास छोडकर गरदन झुका ली थी। बोली थी, "क्यो, शादी करना जरूरी होता है क्या?"

अजित हक्का बक्का, "यह क्या कहती हो तुम! शादी नही करोगी? क्या सारी जिन्दगी यू ही नौकरी करती हुई इस घर मे बैठी रहोगी तुम?"

"हो सकता है।" वह बोली थी। अजित ने देखा था—उसकी आखें भर आयी हैं।

पूछा "तुमने कुछ नही सोचा? जब बात करता हू तुमसे इसी तरह की योजनाए सुनता रहता हू—मैं बी०ए० कर लूगी, मैं हेडमिस्ट्रेस हो जाऊगी बी०एड० कर लूगी कभी नही सुना तुमसे कि इसके अलावा भी जिन्दगी म कुछ है।'

"कुछ होगा, तभी न कहूगी।' मिन्नी ने जसे उत्तेजित और कुछ असन्तुलित होकर कहा था।

"यह यह तुम किस तरह की बातें करती रहती हो?"

वह एकाएक उठ खडी हुई थी ' देख अजित। तेरे पास करने के लिए बहुत सी बातें हैं। फिल्म, रिश्तेदारिया, नाटक, अखबार, पालिटिक्स मेरे पास जो बातें है—वही करती हू। बार बार मुझसे इसी तरह की बातें करके मुझे परेशान मत किया कर!" फिर वह तेज चाल मे चली गयी थी भीतर। अजित सिटपिटाया हुआ सा बैठा रह गया था। पछतावा था उसे। किसलिए मिन्नी से बहस कर बैठना है। इसी तरह अक्सर जया मौसी से भी बहस कर लेता था तब अनजाने मे करता था और अब शायद सब कुछ जानते हुए कर बैठता है।

अजित निश्चय करता—आगे इस तरह की बात मिन्नी से नही करेगा।

इसके बावजूद उससे बात होती और किसी न किसी तरह वही जिक्र या उससे मिलती जुलती बात कह बठता। जवाब मे वही तनाव, वही पुतलियो पर तिर आया आसू का जाल झुझलाहट।

गाहे-बगाहे जया मौसी भी बात का विषय बन जाती। एक बार अजित से कुछ नाराज होकर मिन्नी ने कहा था, "तुम हर बार वही-वही बात क्यो पीटते हो ?

"ऐसा क्या कह दिया है मैंने ?" अजित भी भुनभुना जाता।

"जया मौसी म और मुझम फर्क है ! ' मिन्नी जवाब देती।

"क्या फर्क है ?" अजित कहता, "तुम भी उसी तरह मिमियायी हुई या हमेशा रोती लगती हो '

"हा पर उन्होने हसने का रास्ता खोज लिया था मैं कभी रास्ता नही खोज सकूगी।" मिन्नी ज्यादा ही रुआसी होकर उत्तर देती।

"क्यो ? अब तो हालात भी बदल चुके हैं।' अजित कहता, "उस वक्त इण्टरकास्ट मैरिजेज एक विस्फोट समझी जाती थी। पर अब अब काफी कुछ बदल चुका है। कानून नये हैं, साधन नये हैं यहा तक कि काम का स्कोप भी ज्यादा है।"

"किसके लिए ? कानून, साधन, स्कोप यह सब किसके लिए है ? " मिन्नी कुछ अधूरी-अधूरी बात बोलने लगती, "इण्टरकास्ट तो छोडो, मैरिज किसके लिए है ? और तुम्हे यह नही भूलना चाहिए अजित, कि जया मौसी—मेरी मा की बहिन थी, बाबूजी की साली। बस, कुछ इतना रिश्ता था हम लोगो मे, जबकि मैं अपनी मा की बेटी हू और बाबूजी मेरे पिता है—मेरा रिश्ता नही है। मै उनका हिस्सा हू और, और घरवाले आपस मे रिश्तेदारो की तरह फैसल नही ले सकते ! '

"यानी तुमने अपने जीवन और भविष्य के लिए कोई जोड तोड नही किया है ?"

' जिन्होने किये थे, उनका क्या हुआ ? " मिन्नी एकदम बमक पडती, "बेकार बात है योजनाए बनाना, प्लानिंग बनाना, गणित बिठाना सब बकवास है ! क्या बाबूजी ने सोचा था कि वह जीते जी टुकडे-टुकडे मौत झेलते रहेगे ? और क्या जया मौसी ने भी सोचा होगा कि उन्ह सुरेश

के साथ भागना होगा ? और   और तुम्हारे साथ साप सीढी खेलते वक्त मुझे मालूम था क्या कि मुझे बाबूजी की जगह ट्यूशनें पढानी होगी ? फिर क्या तुक है कि मैं आगे के लिए गणित लगा रखू ?   क्या सबके लगाय गणित गलत नही हो जाते हैं ?"

"तो इसका मतलब है कि तुम एक बेतरतीब और हालातो से बेबस उन्ही के हाल मे चलती हुई जीती रहोगी ?"

मिन्नी के चेहरे पर कडवी हसी होती, "खूब कह रहे हो   इस तरह, जैसे आदमी स्थितियो से अलग जो सोचे, उन पर स्थितिया चलती हैं। या वह चलाने की सामर्थ्य रखता है।"

"वह आदमी ही क्या जो स्थितियो को अपने अनुरूप न ढाल सके ?"

उसने थूकती हुई हसी के साथ कहा था, "खूब कह रहे हो ! हो सकता है कि तुम इतने बडे महापुरुष हो, पर मैं उतनी महान महिला नही हू।" वह उठकर फिर से काम मे लग गयी थी। अजित ऊबता हुआ चला आया था।

कितनी बार यही सब, इसी तरह नही होता जा रहा था ? बहस, और जय पराजय के अपने-अपने दर्शन   पर इन दर्शनो से अलग जीवन से तब अजित को वास्ता नही पडा था। जो, जितना पडा था—उसे एक दर्शक की तरह ही देखता रहा था वह   उस पर सोचने का तरीका उसकी अपनी स्थितिया और विचारो से

किस किसके बारे म अपनी ही तरह नही देखा सोचा है अजित ने ? जब जिज्ञासु भाव से सोचता था तब भी, और जब समझने लगा था, तब भी।

जया, मिन्नी, मायादेवी, मास्टरजी, रेशम, वैष्णवी, सुरगो सबके बारे मे। ज्यादातर ने गणित लगाय थे   और मिन्नी—एक गणितहीन चरित्र ! फिर भी गणितयुक्त—शून्य !

शून्य, जो सबसे बडा गणित भी थी।

शून्य, जो गणित नही थी।

पर इस शून्य से पहले गणित के बडे-बडे आकडो की कहानी म ही रहना ठीक रहेगा। कम स कम जया मौसी की कहानी के चलते मिन्नी के

शून्य गणित की कहानी कहना असगत हो जायेगा—वह आगे । अभी सिफ जया मौसी की कहानी या ढेर-ढर कहानिया के दशक अजित की अपनी ही कहानी

"अजित बाबू यही रहते हैं ? "

"हा हा, फरमाइय । ' अजित ने स्लीपरो मे पैर डाले—दरवाजा खोलकर बाहर आ गया ।

सामनवाला व्यक्ति बूढ़ा सिक्ख था । बोला, "वह रोड साइड मे एक मेम साहब खडी हैं—आपको बुला रही हैं ।"

"मुझे ? कौन मेम साहब ?" अजित हैरान होकर उस दिशा मे देखने लगा । दूर, भीड से घिरे बाजार म किसके लिए कह रहा था वह आदमी, अजित तय नही कर सका । बोला, ' आप उ हे यही भेज दीजिये ना ।"

"जी नही—वही बुलाया है आपको । कहती हैं दो मिनट का काम है ।"

"अच्छा ।" अजित भीतर गया । कमीज पहनकर बाहर आया और उन वद्ध सज्जन के साथ हो लिया ।

एक टैक्सी के पीछे कोई महिला खडी है । सफेद साडी, नीले फूल । अजित की ओर पीठ कर रखी है । वद्ध ने दृष्टि से सकेत किया—यही हैं ।

"जी नमस्ते । आपने बुलाया था मुझे ?" अजित शालीन ढग से बोल पडा ।

महिला ने मुडकर एक मुस्कान फेंकी । अजित हडबडा गया, "तुम ? तुम्हे मेरे घर का पता कहा से मिला ? '

"क्या कठिन था ?" जया बोली, "किसी भी अखबार के दफ्तर या प्रकाशक के आफिस से तेरे बारे मे सब कुछ मालूम हो सकता था ।"

"मगर तुम यहा किसलिए आयी हो ?" अजित का स्वर सख्त हो गया था, इस रोड पर औसत लोग उसे नाम शक्ल से पहचानते हैं और क्या मालूम उनमे से एक दो जया मौसी को भी पहचानते हा ? क्या सोचेंगे अजित को लेकर । अजित के भीतर भय की झुरझुरी फैल गयी थी ।

महिला ने टैक्सी का गेट खोला, फिर एक लिफाफा निकालकर अजित की ओर बढा दिया, "तेरा ही है ना ?"

अजित चौंका, फिर याद आया—सुबह भूल आया होगा। असल म अजित इतना चुझला गया था कि खयाल ही नही रहा

"बस, इसी को देना था। सोचा, पता नही इसमें कितने जरूरी कागज हो तेरे ?" जया ने लिफाफा उसे दे दिया । टैक्सी म बैठ गयी, "तुझे परेशान नही करना चाहती थी मैं जानती हू कि तू एक प्रतिष्ठित आदमी है।" वह हसी।

यह हसी अजित के भीतर खुपकर रह गयी। सहसा याद हो आया—बार बार उखडकर जया मौसी से बात करना ठीक न होगा। हर बार कहानी पाते पाते रह जाता है। एक कदम आगे बढाकर खिडकी के पास झुक आया, "सुनो, मौसी !"

"हो सकता है कि यहा एक दो लोग मुझे जानते हो, क्या यह ठीक होगा कि " वह बोली, पर अजित ने टोक दिया, "मुझे परवाह नहीं है।'

"सच ?" वह मुसकरायी—घरने लगी।

अजित की नजरें झपक गयी। शायद समझ गयी होगी कि अजित झूठ बोला है। कहा, "मैं तुमसे बात करना चाहता था।"

"तो मैंने कहा इनकार किया है ? तू ही हर बार रूठ रूठकर भाग आया है।" वह मुस्कराती रही।

"तब मैं आऊगा।'

'रात को या कल सुबह ?" जया मौसी ने कहा, "वसे मैं आज रेस्ट करनेवाली हू।'

अजित का मन इस रेस्ट शब्द से कुछ खट्टा कसैला हो आया, पर सह गया। कहा, "कल सुबह ही '।

"क्यो, मुझसे डरता है तू !"

"नही, पर ?'

"तब अपने-आपसे डरता होगा—क्या ?' वह हसी, "खैर, मुझे अन्तर नही पडता। तू जब चाहे आ जा "

"नही नही, मैं आज रात ही आ रहा हू।" अजित न वार वार की चोटो से तिलमिलाकर जवाव दिया था।

"जरूर आ, मगर एक शत है ?"

"क्या ?"

"तुझे मालूम है ना कि मैं पिछली यात्राओ के बारे मे बात नही करती ?" जया मौसी ने कहा।

"तव बात करने को है ही क्या ?"

"क्या ?"

"मौसी ? ' अजित की आवाज मे अचानक तकलीफ पैदा हो गयी थी, "तुम शायद यह भी भूलती हो कि हमारा मिलना, जानना पिछली यात्रा की बुनियाद पर ही टिका है।"

एक पल स्तब्ध देखती रही थी वह, फिर हस पडी, "तब ठीक है। आ जाना—मैं भी मिन्नी के बारे मे बहुत कुछ जानना चाहती हू सुनते हैं बडा हादसा हुआ उसके साथ ?"

अजित जवाब मे सिफ एक गहरी सास लेकर कह सका था, "हा पर तुम्हें किसने बतलाया ?"

"एक बार मैं ग्वालियर गयी थी रे " वह बोली, "मिन्नी स मैं मिली भी थी "

"तुम मिन्नी से मिली थी !' चौक गया अजित, "कब ? कहा ? और ग्वालियर कब गयी थी तुम ?"

"यही सब कुछ जान पूछ लेगा या अगली बार के लिए कुछ रखेगा।" वह एकाएक फिर से हसी थी। टक्सी ड्राइवर से कहा था, "चलो, भाई।" और अजित खडा रह गया था। टैक्सी तिरती ही चली गयी थी सामने से, फिर ओझल।

जया मौसी ग्वालियर गयी थी ? मिन्नी से मिली थी और मिन्नी ने बतलाया तक नही ?

इसका मतलब तो यह है कि मिन्नी सब कुछ जानती-समझती है। वह सारी कहानी, जिसे खोजन के लिए अजित कई दिनो से छटपटा रहा है— मिन्नी जानती थी, पर उसने कभी किसी बार जिक्र नही किया। उलटे

हर बार जया मौसी का नाम आत ही बौखला पड़ती थी, "क्या बार बार तुम उनका नाम लेते रहते हो! आखिर अब रह क्या गया है याद करने के लिए? "

और वही मिन्नी जया मौसी से मिली थी? या जया मौसी ही उससे मिली थी।

उलझा हुआ अजित अपने बरामदे मे चला आया था। जया मौसी बार बार अधूरी छूट जाती हैं

पर जया मौसी को मालूम किस तरह हुई होगी मिन्नी के शून्य की कहानी या या कि सिर्फ एक कहानी, जो शून्य से शुरू हुई थी जया मौसी की कहानी की तरह आकड़ो से नही

असल म आकड़े जब बीत-रीत जाते हैं, तब शून्य फिर से गणित का आरभ करता है। कितने सारे आकड़े, हिसाब जब बीतने रीतने लगे थे, तब मिन्नी के शून्य की कहानी आरम हुई थी ?

लगभग सभी के आकड़े भूल चूक लेनी देनी मे गिरफ्तार हो गये थे। जया मौसी के भाग जाने के बाद अगले दो-तीन सालो मे ही तो कितने कितने उनके साथ की हिसाबी किताबी जिन्दगिया अपने गणित फैलाय सामने ठहरी रह गयी थी ?

एक दिन फिर कारपोरेशन के कुछ लोग आये थे। वही चेहरे, जो तीन वर्ष पहले आय थे। उन्होने शभू नाई के मकान पर सीढ़ी लगाकर पिछला सूचना पट्ट उतार दिया था, नया जोड दिया—डेयरी गली म्युनिसिपिल वार्ड नम्बर बारह'।

गली वही। बस, सरदार मराठे का नाम सूचना-पट्ट से गायब हो गया था। कुछ उसी तरह, जिस तरह जमीन्दारिया गायब हो गयी थीं, सरदार साहब का घोड़ा, सईस पाडेजी, नौकर सब गायब हो गय थे। खुल बाड़े म सिन्धी टारनदास ने अपने भाई आसनदास और टेंऊमल के साथ आठ भैंसें लकर डेयरी खोल ली थी। जिस जगह कभी सरदार मराठे व रियासती पाहे सब-दर करते, टमकत नजर आते थ वहीं अब टोरनदास की भगें अपना माटा जबड़ा रोंथी और पूछ दायें-बायें फेंकती हुई गब्दर

मक्खिया भगाती नजर आया करती। सरदार मराठे जिस जगह बैठकर शाम के वक्त गली महल्लेवालो से हसते मुस्कराते बातें करते और अपने सस्मरण सुनाया करते थे, वही सिन्धी टोपनदास मक्खियो से घिरा हुआ एक अगोछा कन्धे पर डाले बैठना। उसकी बाल्टियो मे दूध। खूब गाढ़ा दूध। महल्ले की औरतें बच्चे क्रम से पहुचते जाते। टोपनदास लोहे के डब्बो से सेर, आधा सेर, पाव दूध बेचता, रेजगी अपन नीचे बिछी चटाई के भीतर डालता जाता।

खुद अजित भी कई बार दूध लेने जाता था वैसे टोपनदास मे एक विशेषता थी। डेयरी खोलने के साथ ही उसने समझदार व्यापारी की तरह गली महल्ले के आदमियो घरो की हैसियत समझ ली थी। सरदार मराठे के घर दूध पहुचाता, केशर मा यानी अजित के घर दूध पहुचाया करता। जिन घरा का सारे महल्ले पर दबदबा था—टोपनदास ने शात, विनम्र भाव से उस दबदबे की गर्दन पर रखे हुए ही गली मे प्रवेश किया था।

अखबार मे नयी और अपनी ही सरकार बनने के बाद जिन ढेर ढेर सामाजिक आर्थिक परिवर्तनो की खबरें आ रही थी—उन्हें अजित ही नही बहुत से वे लोग धीमे धीमे ही सही महसूस कर रहे थे—जो अखबार पढ कर समझने की कोशिश करते थे, या उन्हें कोई खबर सुनाकर कुछ समझा दिया जाता था। कई बार अजित ही समझाया करता। एक बार आवास निर्माण मत्री का वक्तव्य पढकर अजित ने तकलीफजदा सुरगो, वैष्णवी, सहोद्रा कितने ही लोगो को कितनी ही बातें बतलायी थीं। बोला था, "अब समझना कि दिन बदल गये "

"सो कैसे ?" सुरगो अपनी नौवी लडकी को गोद मे बिठाय हुए अपने कच्चे घर की पूरी दहलीज पर फैली हुई थी। जानबूझकर नही सहज भाव से। चार फुटा बदन फैलकर ज्यादा ही गोल हो गया था। तिस पर दोनो जाघो के बीच बच्ची को बिठाना। लगता था जसे एक छोटी मोटी हिरा सत मे वह बच्ची कद हो गयी है। सुरगो की भारी भारी जाघो के बीच। पेट लटककर धरती पर टिक जाया करता था। इस पेट से कभी कभी खेल खेलकर थकी हुई बच्ची अलसाकर सो जाया करती। सुरगो के करीब बैठी

थी सीतलाबाई वैष्णवी। उसका पति पाडे इन दिना सईसी स ज्यादा कमान लगा था। वह किसी गोदाम म चौकीदार हो गया था। नयी साइकिल खरीद ली थी उसने। सारी गली मे घण्टी बजाता हुआ निकलता। धोती पहने हुए साइकिल चलाने मे कुछ दिक्कत होती थी, पर साइकिल का अपना रोब। सुरगो के कम्पाउण्डर पति शामलाल की तनखाह बढ गयी थी। सब लाख लाख चमकीली उम्मीदें लिय बैठे थे—अब क्या है, नयी सरकार आयी है। अपनी ही सरकार! सब बदल जायेगा। पहले लाल मुह वाले बन्दर लूट खसोटकर जो कुछ बाहर ले जाया करते थे, अब इस देश म बटता रहेगा और जब उतना सब बटेगा तो उलझनें कहा रहगी? वे सभी उत्सुकता से आते जाते लोगो की उन बातो को समझने की चेष्टाए किया करती, जो भाषणो से निकलती थी या अखबार मे मत्रियो के वक्तव्य बहस के रूप मे छपती थी। इन खबरो से उनका गहरा नाता है—यह भी समझने लगे थे वे लोग। समझते कैसे नही? शामलाल जस कम्पाउण्डरो की तनखाह बढेगी, बढने से पहले खबर आ गयी थी छापे मे। छापा माने अखबार। कुछ इसी तरह दिवाली पर शक्कर के दाम म हर सेर पर इकन्नी कम हो गयी है, यह खबर भी पहले से आयी थी मतलब यह कि जो होना है छापे मे पहले आता है—यही बात।

वे उत्सुकता से अजित का चेहरा देख रही थी, "बतलाओ तो लाला, दिन कैसे बदलेंगे?" वैष्णवी सीतलाबाई का चेहरा चमक रहा था। "छापे मे आया है क्या?"

"बिना छापेवाली बात तो मैं कभी करता ही नही भाभी।" अजित ने जरा रोब के साथ जवाब दिया। वही अकेला अखबार पढ़नेवाला आदमी है गली में। बोला, "अब जिनके पास मकान नहीं है उनके लिए मकान बनेंगे सरकार अपने खरचे स बनवायेगी। मत्रीजी ने अभी हाल में कह दिया है। बोले—गाधीजी कहते थे कि इस देस म सबसे पहले लोगो के लिए रोटी, कपडा और मकान जुटाने होंगे। वही काम सरकार ने हाथो म लिया है।"

"धन्न हो। धन्न हो!" सहोद्रा दुवा से हाथ जोडकर बडबडायी थी, "बडा पुन्न लगेगा भइया इन्हें—जो सरकार बता रहे हैं।"

पर वैष्णवी और सुरगो उदास। उनकी समस्या निजी मकान की नही। वह तो है। उनकी समस्या थी पाटोरा को पक्की छत मे बदलने की। घर के भीतर के कच्चे फर्शों को सीमटेड करने की। वैष्णवी ने उत्सुकता से पूछा था, "और आगे क्या लिखा है ?"

"लिखा है कि आदमियो को अपना कारोबार करने, यानी दुकान दुकान, खेती बेती करने के लिए सरकार से कर्ज भी मिला करेगा। फिर धीरे धीरे अपने कारोबार से चुका दें। बहुत सस्ता ब्याज लगेगा।"

"वाह! " वैष्णवी गदगद हो जाती, "उन मरे रगरेजा "

"रगरेज नही भाभी, अगरेज।" मुस्कराकर अजित टोकता।

'हा हा, अगरेज ही सही उनके जमाने मे तो पता ही नही पडा कि क्या होगा, क्या नही। सब विलायत ढो ले जाते थे। मरे मलेच्छ!"

'हा हा " अजित आग बढ़ता। सुरगो टोकती, "और भइया मेरे लिए कुछ नही छगा छापे मे ?"

"तुम्हारे लिए ?'

"हा।" सुरगो कहती। बच्ची उसकी छातिया नोचती नोचती ऊबकर रो पडती और सुरगा अपनी बात खराब न हो, इसलिए थोडी देर को उसका मुह हथेली स दबाकर पूछती, "अब देखो तुम्हारे भइया की कम्पाउण्डरी तो लगी हुई है। भगवानजी ने यह छप्पर भी दिया है सिर ढकने का—पर बहुत कमजोर है, हर दूसरी-तीसरी बरसात पाट बदलवाने पडते हैं क्या सरकार ने हमारे लिए कुछ नही लिखवाया छापे मे ?"

"ओह! ' अजित को ध्यान आता। बतलाता, "चिन्ता मत करो भाभी, कम्पाउण्डर भाई साहब के लिए भी रास्ता दे दिया है सरकार ने।'

"सो क्या ?' इस बीच सुरगो की बच्ची का मुह लाल हो चुका होता। आखें उबलने को। पर सुरगो की हथेली ज्या की त्या।

अजित कहता "भाई साहब को कर्जा मिल जायेगा—सुधरवा सकते हैं। बडी आसान किस्तें, बडा आसान ब्याज।"

सुरगो खुश हो जाती। लगता जैसे पाटौर अचानक ही पक्की छत म बदल गयी है। शामलाल और सुरगो नौ बच्चियो के साथ चारपाइया डाले हुए गरमियो म उस पर लेट हैं। उडती पतगो को देखकर खुश हा रहे हैं,

खिलखिलाकर हस रहे हैं।

स्वतत्रता और नयी सरकार, अपनी सरकार के ये नये सपने सारी गली महल्ले के घर, छत, दरोदीवारो से चिपके हुए थे अखबार रोज रोज हजारहा खुशियो और सपनो के ढेर पूरे गली बाजार, महल्ले, आगन मे बिछा जाते और सभी लोग इन सपनो को चमेली की महक की तरह आत्मा तक समोये रहते।

शभू नाई के मरने के बाद रेशमा सफेद साडी पहने रहती थी। उसका चेहरा उसी तरह दमदमाया हुआ रहता। अन्तर यह है कि बिना जेवर के बदन और रेशमी साडी मे रेशमा एक जोगन जैसी लगती। कितनी ही बार फिल्म 'जोगन की नरगिस को पोस्टर पर चिपके देखकर अजित को लगता रेशमा बैठी हुई है—सितार हाथ मे। पर रेशमा के हाथ मे सितार नही था। शभू के मकान के कागजात रहते। कमर से चाबियो का एक गुच्छा लटका रहता। इस गुच्छे म शभू की सारी दौलत बन्द। सब कहते, बहुत कुछ मिल गया है रेशमा को। उसका पूजापाठ पहले की तुलना म ज्यादा ही बढ गया था। एक युवक कही से आ पहुचा था। जब आया, तब बडे अजनबी भाव से महल्ले वालो से मिला था, फिर रेशमा ने ही उसका परिचय बतलाया था। शभू नाई की तेरहवी पर आया था वह। नाम था—भरोसे। शभू की ही तरह काला, और भद्दा सा, पर कपडे साफ पहनता था, उम्र मे जवानी भरी हुई थी। रेशमा बोली थी, "उनकी बुआ की बेटी का बेटा है। और तो कोई पास के रिश्ते मे था नहीं। अब यही काम काज सम्हालेगा "

केशर मा ने पूछा, "क्या कामकाज करेगा ?"

'करेगा क्या, वही पेटी हजामत और क्या ?" रेशमा ने उत्तर दिया था। पर भरोसे ने वह सब कुछ नही किया। वह किसी अगरेजी हेयर कटिंग सलून' पर नौकर हो गया। कई जवान नाई उस दुकान पर नौकर थे। सब अगरेजी ढग के तरह-तरह के बाल बनाते थे। रेशमा को बिलकुल पसन्द नही आयी थी भरोसे की हरकत। शभू की पेटी को आले में धूल खाती देखकर भुन भुना उठती थी, "क्या जानती थी कि एक दिन उन्ही का अश उन्ही की इज्जत आले पर रख देगा—घुन खाने के लिए !"

केशर मा धीरज दिलाती थी, "उसका दोष नही है रेशमा। वक्त की हवा है, सारे धर्म कर्म को लकवा मार गयी।"

फिर होते होते भरोसे से आये दिन रेशमा के झगडे होने लगे थे। वह सारे महल्ले मे रेशमा को लेकर तरह तरह की निंदा करता घूमता। रेशमा कुछ गिने-चुने घरो म आती जाती थी। जब पहुचती भरोसे को लेकर जी भरकर उबलती, बकती। भरोसे देशी शराब पीता और फिल्मी गीत गाता। जब वह शराब पी लेता तब डाक्टर अम्बेडकर को लेकर बात करता, हरिजन उद्धार और गाधीजी के विचार प्रस्तुत करता। महल्ले के सारे बडे जातवाला के विरुद्ध छोटी जातवालो का दुख बतलाता। उसकी इस तरह की बक्वास पर मोठे बुआ एक दिन उसे सरे गली थप्पड मार चुका था। मोठे बुआ की यह हरकत रेशमा के पक्ष मे चली गयी थी। लोग समझते कि भरोसे रेशमा के केस म मोठे बुआ रेशमा की पीठ पर है। रेशमा को लेकर बक्वास होती, पर उभर न पाती।

श्रीपालसिह का रिटायरमट करीब आ गया था। जैसे जैसे करीब आ रहा था, वसे वैसे बदनसिह की बहू घर को ज्यादा मुस्तैदी से सभालने लगी थी। किरायेदारो स किराया, बिजली का बिल वसूलते समय बहुत सख्त आवाज सुनाई पडती, यदा-कदा सहोद्रा से भी झगडा हो जाया करता। श्रीपालसिह ऐसे मौके पर अक्सर उसे डाट डपट देता। कुछ बरस पहले वह खामोश रहकर सुन जाती थी। महल्ले म चर्चा करती, पर अब किसी किसी बार जवाब दे बैठती। श्रीपाल को शात रहना पडता। उम्र, रिटायरमेट, रुतबा मतबा सम्हालने के लिए जरूरी था। एक दो बार दबे मुदे शब्दो मे बोल भी चुका था, "अपनी इज्जत अपने हाथ मे ही रखनी चाहिए। छोटो के मुह लगकर क्या लाभ।"

सहोद्रा न केशर मा की सलाह के अनुसार तसवीरो को उसी तरह श्रीपालसिह के कमरे मे लगा रखा था। वह पूर्ववत श्रीपाल के दारू पीते, खाना खाते समय उसके सामने बैठती। बिजली चली जाती तो पखा झलती। भाई का रिश्ता पाल रखा था उसने। भाई से क्या परहेज? कभी-कभी उन तस्वीरो की ओर देखती, आखें छलछला आती। एक बार केशर मा के पास बोली थी, "मरे भाग मे ही नही है कि आगे वश चले?'

'ऐसा क्या कहती है पगली ?" कशर मा ने प्यार से उसकी पीठ थप थपायी थी, "अभी तेरी उमर ही क्या है ? पैंतीस की होगी। औरत पचास तक मा बनती है। मरे पडोस मे एक औरत रहती थी—पूरे बीस साल बाद बच्चा हुआ था उसके ! बस, इतना ख्याल रखना कि जिस कमरे मे तू और रामप्रसाद रहते हा उसमे अच्छी अच्छी तसवीरें रह ! बडा असर हाता है री।"

सहोद्रा चुप हो जाती। पास के कमरे मे पढने के नाम पर शरतचद्र का 'चरित्रहीन' पढते हुए अजित मुस्करा पडता। तसवीर तो बेचारी ने कब की लगवा रखी है—फक यही है कि वे रामप्रसाद वाल कमरे म नही, श्रीपालसिंह वाले कमरे म हैं। रामप्रसाद के कमरे म शेर बीडी और पहलवान छाप बीडी के अलावा बीडी नम्बर २७ के पोस्टर लगे थे। किसी मे परी उतर आयी है, किसी मे शिव भगवान ताडव कर रह हैं किसी मे मयूरा से छपे फोटू मे दिलीपकुमार बीडी पी रहा है।

सुनहरी उसी तरह मादक मुस्कान म मुस्कराती, होठ काटती। मोठे बुआ कभी-कभी अजित को छेडता, "अरे यार पडित ! इस खीर म कब तक कीडे नही पडेंगे ?"

"जब तक सुकुल जमनाप्रमाद बटलाई बना रहगा।" बिलकुल न नाराज होकर अजित उत्तर दे देता।

मोठे बुआ को इससे ज्यादा मजाक करना नही आता था।

महाराजबाडे पर पहले की तरह कबूतरा के लिए जगह नही रही थी। वहा भारत पाक विभाजन के बाद भागकर आय बहुत से पजाबिया सिधियो ने पान के ठेले, गजक की दुकान चाय-नाश्ते के होटल और चाट की दुकानें खोल ली थीं। बूढे लोग अब टहलने के नाम पर वहा पहुचते और चुपचाप महाराजा की स्टेच्यूवाले पार्क मे जा बठते, जो मालिशियो, जेबकतरो, उठाईगीरा और चिलमबाजा की सल्तनत बन चुका था। या किसी जमाने मे महाराजा की निजी सम्पत्ति हाने के कारण बडा सजा-सवरा रहता था। लागो को भीतर घुमने और फूल तोडने की मनाही थी पर जब राजतत्र खत्म हो गया और जनतत्र आ गया तो पार्क के फूल ही नहीं पौधे उखाडना भी जनता का अधिकार बन गया। रगिया की खूबसूरत

जालिया निकालकर जन-राजाओ ने अपने घरो की गेलरिया सजा ली। खम्बो पर लगी खूबसूरत पीतलवाली लालटेनें गायब हो गयी। एक बार अजित ने सुना था कि ऐसी दो लालटेनें नये एम० एल० ए० साहब के मुख्यद्वार पर सजी हुई हैं।

दशहरे पर महाराजा अब भी निकलते थे, पर सरदारो की ड्रेसेज पर कलफ न हो, सिर्फ हाजिरी ही काफी मानी जाती थी। कभी की कलफ खायी पगडिया और उनके दमदमाते रग गायब हो चुके थे जैसे राजतत्र गायब हो चुका था। पगडी मौजूद थी, जैसे राजा मौजूद था।

बहरहाल इस नये युग की शुरुआत के साथ तीन सालो के भीतर-भीतर अजित ने विस्मयकारी परिवर्तन देखे थे।

कुर्सी पर बैठी नेहरू गाधी की काग्रेस से भाषण आते कि काम हो रहा है। होते होते होगा।

और कुर्सी पर न बैठे हुए राजनीतिक दलो के नेता भाषण करते कि काम नही हो रहा, सिर्फ भाषण हो रहे हैं। कुछ नही होगा।

सुबह टहलनेवाले लोग आधे रह गये थे। ज्यादातर को अब शाम के समय थैला लिए हुए हाफते कराहते, खासते-खगारते सब्जी वाले से झगडते देखा जाता, "क्यो भई, क्या अगले साल तक तोरई मिलना बन्द ही हो जायेगी ?"

दुकानदार हसते मुस्कराते जवाब देता। 'लेना हो तो लो बाबा वरना घर जाओ। रही अगले साल की बात सो अगले साल थैले मे नोट भर लाना, मैं तोरइया से थैला भरकर वापस कर दूगा। "

आस पास खडे जवाब मे कहते, "हा हा हा ! अरे अब अपनी सरकार है बाबा। तोरई नही, सतोष खाना सीखो।"

गरज यह कि सिर्फ तीन साल बीते, लगता था सब कुछ बीत गया।

अजीत कभी-कभी सोचता, 'क्यो पढने लगा अखबार ? न पढता तो शायद इतनी तकलीफ न होती।' इसके बावजूद पढता। न केवल पढता, बल्कि जो पढता लोगो को सुनता फिरता

कमान वाला कहता, 'भाव बतलाओ ?"

स्कूल मे बच्चे कहते, "देखो तो अजित, कौन सी पिक्चरें आयी नयी ?"

पेंशनर बूढे बडबडाने लगते, "इससे तो अगरेजी राज अच्छा था!"

महाराजबाडे पर भाषण हो रहे होते "देश को बनाना है। गुलामी के बाद नयी जागति पैदा करनी है। गरीबी हटानी है। बरोजगारा को काम देना है! बापू कहते थे नेहरू कहते हैं काग्रेस की नीति है" इत्यादि इत्यादि।

ससार चल रहा था। गली भी, महल्ला भी, सुरगो, सुनहरी, अजित, मास्टरजी, मोठे बुआ, सब चल रहे थे। कुछ चलने के लिए नये आ पहुचे थे—टोपनदास, खिल्लूमल, अजायबसिह, गुरबख्शसिह और बिल्लूमल

केशर मा बडबडाती, "शेषनाग ने जोर की सास ली होगी। पथ्वी पर पाप बढते है तो कहते हैं थककर सास ले पडते है शेषनाग। तभी तो सब कुछ हिल गया है—आदमी, धम, कम मान मर्यादा सब!"

शेषनाग की यह करवट नही हुई। उसकी प्रतीक्षा थी, पर सास लेने से बहुत कुछ हिल गया था मास्टरजी का गणित हिल गया था। सुनहरी, सहोद्रा, सुरगो, सबके आकडे लडखडा गये थे।

मिन्नी कहती, " क्या तुक है कि मैं आगे के लिए कुछ गणित लगाये रखू? क्या सबके लगाये गणित गलत नही हो जाते है?'

और अजित अगरेज, मैथमेटिक्स, हिस्ट्री की किताबें सामने रखे हुए पिता के समय की पुस्तको मे से शरत, रवीन्द्र, प्रेमचन्द की कोई पुस्तक पढते हुए सोचता—उसने भी तो अपना गणित लगा रखा है—लेखक बनेगा! लेखक बनने के लिए खब खूब पढना होगा फिर लिखना होगा।

मगर केशर मा का गणित? अजित तीसरी बार नाइथ मे फेल हुआ तो माथा पीट लिया था उन्होंने 'तुझ नासपीटे पर आशा टिकाये हुए मुझे किसलिए भगवान ने जिन्दा रखा है? क्या इसी दिन के लिए कि तुझे चपरासगिरी तक न मिले?

अजित ने परवाह नही की थी। क्या केशर मा के गणित से चलना होगा उसे? उसका अपना गणित कुछ नही है?

यह किसी भी बार नही सोचा कि केशर मा का अपना भी तो गणित है। अगर वह गलत हो सकता तो अजित का गणित क्यो नही? एक बार भूल से कुछ इसी तरह सोच गया था—तकलीफ हुई थी। बल्कि या कि

डर गया था ! आगे से उस तरह सोचना ही ब द कर दिया। सिफ अपने गणित पर सोचना होगा। पर सोचना ब द कर दिया जाये—यह सोच लेने-भर से क्या सचमुच सोचना ब द कर पाता है आदमी ?

उसे जो दिखते हैं, जो दिख रहे हैं या जिनको देख चुका है—उनके गणित को भी तो सोचना होगा ?

जया मौसी ? मिन्नी ? एक ने गणित किया था—एक ने नही। एक के गणित का क्या हुआ—मालूम नही, पर अजित के सामने मिन्नी थी। वह उसे देख रहा था उसे क्या समूचे का ही देख रहा था इसके बावजूद अपना गणित बटोरे हुए था।

अपने गणित की तलाश म अजित ने क्या कुछ नही कर डाला था ? केशर मा के बक्स से दिवाली की पूजावाले चादी के रुपये तक बेच दिये थे। एक रुपया स्वतत्रता के समय सवा रुपये मे बिकता था। सराफे मे जाओ —बेच आओ। अजित बेच आता था। होते होते खत्म हो गये। फिर क्रम आया, अगूठियो पर केशर मा हर बार सिर पीटकर रह जाती। किसी बार गभीर हो जाती। दो चार बार अजित को गालिया बक चुकी थी। मारने दौडी थी पर अजित भाग निकला। जाते जाते जवाब भी दे गया। उल्टे-सीधे जवाब !

मोठे बुआ ने पढाई ही छोड दी थी। कहते है, परिवारजनो ने छुडवा दी। कई कई बार सरदार मराठे के यहा से अचानक मोठे बुआ की गजना सुनाई पडती। उसके पिता 'काका' के चेहरे पर विषाद की एक लकीर मौजूद रहती। छोटे बुआ अक्सर चिन्तित दीखता। मोठे बुआ दो चार बार शराब पीकर गली मे लौटा था। उसके कपडे फटे होते किसी किसी बार चोट लगी होती। ऊची किस्म का दादा होता जा रहा था वह। गली से बाहर दूसरे बाजार मे भी उसे जाना जाने लगा था। सि धी टोपनदास को रास्ते मे पकड लेता और पाच रुपये लिये बिना न छोडता। एक दो बार टोपनदास ने काका से शिकायत की, परिणाम मे मोठे बुआ ने सरे भीड उसकी दूध भरी बाल्टिया उठाकर हवा मे उछाल दी। प द्रह रुपये का दूध और फैला दिया। आगे की घटनाओ के बारे मे टोपनदास ने शिकायतें ब द कर दी और दिया पैसा भैंसो की बीमारी या भूसे के खाते मे जाडने लगा।

मोठे बुआ झूमता हुआ गली से निकलता तो सुरगो सबसे बडी बटी चुन मुन को घर के भीतर धकिया देती, "जा। अब तू छोटी नहीं है कि गली-महल्ले में कूदती फिरे। "

मोठे बुआ के करीब आते ही सुरगो खिसियायी सी हस पडती। मोठे बुआ अपने भारी भरकम शरीर को हिलाता हुआ जवाब मे हसता, पूछता, 'क्यो भाभी, अब भी भइया को तकलीफ देती रहोगी ?"

सकपकाकर सुरगो कहती, "कैसी तकलीफ लाला ?"

मोठे बुआ अर्थपूर्ण ढग से सुरगो को देखता। कहता, "पूछती हो कैसी तकलीफ ? ये तो तकलीफें तो सामने दीख रही हैं ?'

सुरगो हस देती, 'हश्। कैसी कैसी बातें करते हो तुम !'

मोठे बुआ भी हसता। उसके भारी डील डौल पर तोद हिलती जैसे पानी मे लहरा पर रबर का बाल उछालें ले रहा हो। वैष्णवी जरा तेज थी। उम्र पैंतीस के करीब आ रही थी, पर बदन साचे मे ढला था। बाल बच्चा कोई नही। इठलाती हुई करीब आ जाती, कहती, 'बहुत रहम आ रहा है सुरगो भाभी पर ?

'नही, भइया पर !'

"तब क्या इरादा है ? '

"इरादा तो तुम्हारा भाभी—अपना क्या। अपुन तो जनता का राज है—जो चाहो मालिक बन जाओ।'

दोनो एक दूसरे को देखकर मुस्कराती, मजा लेती। वैष्णवी कहती, "आज दिन म ही चढा आये क्या ?"'

'चढा आते तो यहा होते ? गल्ली मे ?"

"तो ?" सुरगो रुचि से बात करती। यह उसका प्रिय विषय। अब से नही, जब पहली बेटी हुई थी तभी से।

"तुम्हारे साथ पाटीर मे पान खा रहे होते !" वह ही होकर हसता।

'अरे, चलो चलो। तुम जैसे कई आते हैं।' क्रमश वष्णवी और सुरगो अपने-अपने घरो म समा जाती।

मोठे बुआ अपनी राह।

अजित इस तरह की बातें सुनता तो कभी-कभी उलझ पडता मोठे बुआ

से। एकात पात ही कहता, "तुम क्या कुछ बकवास करत हो सुरगो, वैष्णवी, सुनहरी जाने किस-किस से ?"

"क्या, क्या हुआ ?" अक्खडपन से मोठे बुआ कहता।

"आखिर तुम्हे सोचता चाहिए मोठे वे सब अपने से बडी हैं। भाभी कहते हैं उनको।'

"भाभी कहन से कोई सचमुच भाभी हो जायेगी क्या ? " मोठे बुआ बडी विषैली मुस्कान मे हसता, "इन सालियो का जैसा सबक मिलना चाहिए वही देता हू। और किसीसे क्या नही बोलता वैसे ? बतला ? जो जैसा है, उस वैसा ही मिलना चाहिए।"

'क्या हुआ ? कसी हैं ये ?"

"अर ये कुतियाए हैं कुतियाए !" उसके केहरे पर घृणा होती।

"क्या बकते हो यार ! ' अजित गुर्रा पडता।

"बकता नही हू, ठीक कह रहा हू।' मोठे बुआ कहता, "बतला ये इसान हैं ? वह सुरगो एक बेटे क चक्कर मे नौ नौ पिल्लिया पैदा कर चुकी। वैसे ही तो मुल्क मे खाने को नही है और एक बार को मुल्क भी भाड में जाने दो—मैं पूछता हू उस कम्पाउण्डर शामलाल की तरफ भी तो देखे, जिसका हर पुरजा बाडी फाडकर बाहर आता लगता है। कितना कमायेगा स्साला ! "

अजित एक पल के लिए चुप रह जाता, वह इससे सहमत नही कि मोठे बुआ गलत कर रहा है। कहता, "फिर भी यार जिस तरह तुम बात करते हो, वह तरीका है इन्हे समझाने का ?"

'ये समझेंगी ? हिन्दी मे समझेंगी ?" मोठे बुआ के चेहरे पर ज्यादा ही नफरत बरसने लगती, "अरे, इन्हे समझाना है तो इन्हें इसी तरह ठीक करना होगा ! इन्हें बतलाना होगा कि तुम औरत नही हो कुतिया "

"हिश श ! "

मोठे बुआ हस पडता, "देख पण्डित, मैं सीधा सादा कानून जानता हू। तेरे मे, मेरे म बहुत फरक। तू अखबार पढता है, कानून छाटता है। मैं दारू पीता हू, डण्डा चलाता हू। यह अपनी भलमनसाहत की अगरेजी त और

छोटे ही चलाया करो। मुझे मेरी तरिया रहने दो !" मोठे बुआ आगे बढ जाता।

अजित स्तब्ध। मोठे बुआ भी कुछ सोचता है—यह मानते हुए भी किसी वार उसके इस अजीबोगरीब दर्शन से सहमत नहीं हो सका था। पर यह अपनी तरह का मोठे बुआ का गणित। एक वार बोला था, "इस स्साले टोपनदास को तो वह सवक दूगा किसी दिन कि जिन्दगी भर याद रखे।"

छोट उसे नापसन्द करने लगा था। मोठे बुआ के कारण लोग उसे भी तो बदमाश या दादा समझने लगे थे। पूछने लगा था, "क्या, बिसने तुम्हारा क्या विगाडा है ? '

"अरे बिसने क्या नहीं बिगाडा ? स्साला भैंसा का काइ एसी गोली खिलाता है कि दूध ज्यादा दे और मैंने देखा है कि ग्राहकों को ताजा दूध नापेगा—फेन समेत। फेन घर पर जाकर बैठ जायेगा और दूध कम हो गया। इधर साले ने नयी बदमाशी शुरू की है। मैंने देखा एक दिन इसका आदमी भैंस दुह रहा था तो बाल्टी मे पहले ही एक सेर पानी भर ले गया ! '

गरज यह कि अजब किस्म का गणित लगा रखा था मोठे बुआ ने। उसीके आकडे जोडता तोडता चला जा रहा था जुडकर भी सबसे अलग।

कुछ इसी तरह सब

अजित बधाई देने गया था मिन्नी को। बी० ए० का रिजल्ट आया था। खबर दी थी मोठे बुआ ने, "पंडित ! वह तेरी सहेली ने बी० ए० पास कर लिया ! '

' तुम्हे कैसे पता लगा ? मास्टरजी ने बतलाया ?"

'अब मास्टरजी उत्तर भी पाते हैं ऊपर से।" मोठे बुआ ने कहा, "मुझे बताया कुन्दन ने।"

फिर कुछ नहीं कहा था अजित ने। मिन्नी का सपना था बी० ए०। अब उसे ट्यूशन नहीं करनी होगी। दौडा-दौडा जा पहुचा था। बरामदे में पहुचते ही चिल्लाया था, बधाई हो मिन्नी ! '

और मिन्नी कमरे से निकली थी। जया मौसीवाला कमरा। चेहरा पिटा हुआ। उसने जैसे मुस्कराने की कोशिश की थी। कहा, "आओ बैठो।" फिर वह बरामदे मे ही पडी एक कुरसी की ओर ले गयी—सकेत किया।

अजित को उसके व्यवहार पर हैरत हुई। जिस उत्साह से पहुचा था, सहसा ही वह उत्साह पिघलकर फैल गया। मिन्नी के कमरे मे जया मौसी वाले पलग पर कोई युवक बैठा है अजित ने साफ साफ देखा था। फिर यह भी कि उसके पहुचने से मिन्नी को कोई खुशी नही हुई है। कुछ सकपकाकर कहा अजित ने, "मैं तुम्हे बधाई देने आया था। "

वह फिर मुसकरायी—वही फीकी, उदास, पिटी हुई मुस्कान। बधाई इस तरह स्वीकारी जाती है? थप्पड खाने की तरह?

मिन्नी पूछ रही थी, "क्या लोगे? चाय या काफी?"

"ह? कुछ नही। कुछ भी नही।" बुरी तरह उखड गया था अजित—उठते हुए बोला था, "बस, कहना ही था। तुमने तो बतलाया भी नही? क्या कोई रिलेटिव वगरा आये है तुम्हारे!"

मिन्नी मुडी, एक नजर अपने कमरे के द्वार पर डाली, सिर झुकाकर एक गहरी सास ली। कहा, "यही समझ लो वसे तुम इन्हें जानते होगे।"

"कौन?" अजित पूछ बैठा—याद है—चेहरा नही, एक आकार भर देख सका है वह।

"डाक्टर गोविल है। हिन्दी वाले हेड आफ द डिपार्टमेट।" मिन्नी ने बतलाया, "इन्ही की कृपा से बी० ए० कर सकी हू।" बोलते बोलते उसकी आवाज कुछ ज्यादा ही कमजोर हो गयी।

डा० गोविल! बहुत नाम सुना है इनका। पर जिस तरह सुना है, उस तरह इस पल याद न करना ही ठीक होगा। एक बार मिन्नी की ओर देखते हुए वह भी कुछ उखड सा गया है। उसकी नजरें अपने पर पाकर मिन्नी ने नजरें झुका ली हैं। अजित कहता है, "नही, मैंने नाम नही सुना। इत्तफाक है। यो समझ लो कि कालेज से तो अपना रिश्ता ही नही, सिर्फ गेट देखकर ही सन्तुष्ट हो लेते हैं। इसीलिए खैर, मैं फिर कभी आऊगा।'

मिन्नी कुछ कहे, इसके पहले ही जिस तेजी से अजित आया था, उसी से उतर गया। लग रहा था, जैसे सब समझ लिया है बेहद आसानी से। अजित नाइन्थ नही कर सका है। चार साल हो गये। पर इन चार सालो मे अजित ने वह सब पढा है, जो पुस्तको मे नही है—कॉलिजो मे है, दफ्तरो मे हैं, महाराजवाडे के भरे पार्क मे है, गली के घर घर मे है और राशनकार्डों की दुकानो पर है सब। और इस सबको पढने जानने के दौरान ही इन डाक्टर गोविल के बारे मे सुना-जाना है। पिछले चार पाच सालो मे न जाने कितनी लडकियो को बी०ए०, एम०ए० यहा तक कि डाक्टरेट करवा चुके हैं। बस, लडकी को दो चार माह की शामो रातो मे उनके साथ जुटकर पढना होता है। जिस पल जुटकर पढना शुरू हो जाता है, उसी पल तय हो चुकता है कि लडकी एम०ए० मे है तो निकल गयी। थीसिस लिख रही है तो डाक्टर हो चुकी कुछ ऐसे ही निश्चित विद्वान हैं डाक्टर गोविल।

मगर मिन्नी? क्या मिन्नी ने भी इसी तरह बी०ए० कर लिया है? और अनायास ही अजित को याद आ गया था। एक बार पेपर्स के दौरान मुलाकात मे मिन्नी बोली थी, "पेपर तो यू ही गये हैं, पर मैं निकल जाऊगी।"

अजित ने हैरत से पूछा था, "जब यू ही गये है तो कैसे निकलोगी?"

और अजित को याद है। अचानक मिन्नी उदास हो गयी थी, फिर जैसे सम्हलकर कहा था उसने, "पास मार्क्स के लायक तो पेपर किये ही हैं।"

सन्तुष्ट हो गया था अजित।

पर आज अजित असन्तुष्ट हो गया है। घृणा, चिढ और अपने ही भीतर एक सुनगन महसूस करता हुआ अजित लडखडाता सा घर की ओर लौट रहा है 'क्या यही है मिन्नी? भोली भाली, निश्छल, सरल मिन्नी। जिसे स्त्री-पुरुष भेदो को लेकर सामान्य सोच भी नही आते थे? यही मिन्नी छि!

जया मौसी घर से भागी अपने प्रेमी के साथ, पर इससे लाख दरजे अच्छी थी। लाख दरजे ईमानदार। अनायास ही अजित ने महसूस किया है जब उसके भीतर जया मौसी की एक तसवीर जाग आयी है। वही जया मौसी, जिस पर नानी नानी नाना का तानों मुक्त-फेंरने अजित ने दया

था—इस तसवीर के गिर्द आभा है । चरित्र और ईमानदारी की आभा !

और एक तसवीर है मिन्नी की । बी०ए० का काला चोगा पहने खडी मिन्नी । डिग्री का कागज हाथ मे । इस मिन्नी को लेकर लोग सराहेगे क्या लडकी है ! घर के हालात सघर्ष, गरीबी सब कुछ झेलकर भी बेचारी ने बी०ए० पास किया । मा-बाप को सहारा दिया । खुद के लिए सहारा पैदा किया । इज्जत कमायी !

थू ! अजित ने घृणा से ढेर सा थूक दिया एक ओर ।

गली मे उसी तरह पत्थरो का फर्श बिछा है । कुछ दिन पहले काग्रेस अध्यक्ष आये थे । सारे बाजार गली का मुआयना करते हुए बोले थे, "यह सब बदलवाना होगा । रियासतो के जमाने मे इन सामन्तो को अपने भोग विलास से ही फुरसत नही थी—जन समस्याए कौन देखता समझता ।"

सारा मोहल्ला उनके इर्द गिर्द हाथ जोडे हुए था । सब खुश । छोटी छोटी बातें देखते हुए कुछ न कुछ कहते गये थे वह, "यह जो कचरा जगह जगह पडता है इसके लिए भी कोई स्थायी समाधान देखना चाहिए ! "

उनके साथ चल रहे थे एक अफसर । तुरत विनीत भाव से आगे बढ आये थे "आप ठीक कहते है । मेरा खयाल है कि इसी साल के बजट मे म्युनिसिपालिटी की तरफ से हर गली मे एक एक सीमेंट ड्रम रखवा देना ठीक रहेगा ।"

"हा हा, ठीक है । आप नोट कर लीजिए "नेताजी आगे बढते गये थे, "इस पत्थरो के फर्श के बजाय अगर यहा पत्थर जमा दिये जायें—कान्क्रीट पर, तो कैसा रहेगा ?"

"बढिया—एकदम बढिया हो जायेगा साहब ! " श्रीपाल ड्राइवर ने विनीत होकर सिर झुकाया था, "कभी-कभी रात को इन पत्थरो मे आदमी को ठोकर लग जाय तो गिर पडता है साहब । और कई-कई बार तो मैं खुद भी गिरा हू । अगरेज सरकार के वक्त बडी दरखास्तें दी अफसरा को, पर "

"अब दरखास्तो की क्या जरूरत ? कोई बात हो तो हम किसलिए हैं ? आपके यहा से काग्रेस जीतेगी ? "

'जरूर जीतेगी। जरूर जीतेगी। गाधी बाबा की पार्टी है—कैसे नही जीतेगी ? "

"तो बस, आप अपने महल्ले में जो पापदजी आयें, उनसे कह दीजिये। उन्हे बुलाकर सब दिखा दीजिये अब परेशानी की जरूरत नही।'

"वाह-वाह ! धन्न हो साहब !" कई लोग बोल पड़े थे।

तब से गाधी बाबा की पार्टी भी जीत गयी। नेताजी भी जीत गये। फर्श नही बदला। वे ड्रमो की बात तो लोग भूल ही चुके हैं सब कहते हैं कि अगली बार वोट मागने आयेंगे, तब बात की जायेगी। ऐसे कोई हसी खेल है कि अपन ही गौरमिण्ट हो और अपनी ही मिट्टी पलीद होती रहे !

आज मिन्नी की हरकत ने बहुत आहत कर डाला है अजित को। उसने तय किया है कि अवसर पाते ही बुरी तरह दुत्कारेगा मिन्नी को। खूब ! यह सब करके क्या मिल गया उसे ? एक डिग्री ! छि !

गली मे प्रवेश के साथ ही अजित बुरी तरह उखड गया। सुरगो की देहरी पर खासी भीड जमा थी क्या हुआ ? घबराया हुआ वह भी जल्दी जल्दी जा पहुचा।

सुरगो चिन्तित, परेशान खडी हुई थी—दरवाजे से टिकी। उसके गिर्द वैष्णवी, मनपुरीवाली, रेशमा, वामन पुढरीकर की घरवाली अनसूयाबाई। सब चिन्तित।

' क्या हुआ भाभी ?" रेशमा से पूछ लिया था अजित ने।

' बैठे ठाले की विपदा। ' रेशमा बडबडायी थी, "कम्पाउण्डर लाला का तबादला हो गया।"

' कहा ? अजित ने पूछने के लिए पूछा था—पर तबादला हुआ—यह कोई ऐसी बात नही थी कि इतनी परेशानी और घबराहट चिन्ता फैल जाय।

' यह तो कालापानी देना है एक तरिया ! " वैष्णवी बडबडायी थी, "इस राड अपनी सरकार को यह नही दीखता कि इम भर पूरे घर को लेके एक बेचारा कम्पाउडर कहा महू में जाके फासी चढेगा !'

"महू ?' परेशान अजित भी हुआ। पूरे पाच सौ मील का फासला है ! एक बार आने-जाने म ही शामलाल कम्पाउण्डर की तनखाह बीडी का धुआ

वनकर उड जायेगी। सचमुच चिन्ता की बात। पर यह तो होना ही था—रियासतें थी, तब की बात और थी। तब तबादने हाते ही न थे। हुए भी तो ऐसे जैसे नाक से अगुली फिराकर आदमी ने कान छुआ हो पर ग्वालियर से महू—इसी तरह जसे वही आदमी नाक से अचानक झुककर बायें पैर का अगूठा खुजलाये। पूरा वदन दोहरा! अच्छी खासी वर्जिश!

और शामलाल को कुछ इसी तरह की वर्जिश करनी होगी। बच्चे यहा, शामलाल वहा। दो चूल्हे जलेंगे, दोहरा खच! सुरगो ने सुना था तो लगा कि एक बेटी और हो गयी है—दसवी!

सुरगी वडबडायी थी, "इस साल सोचा था महेश की मा! बरसात मे पाटौर वदलवायेंगे। पूर डेढ सौ वचा रखे थे, पर अब चुनमुन के दादा जायेंगे तो खाली हाथ जाने से रहे! "

"पर यह हुआ कैसे?" महेश की मा यानी मैनपुरीवाली ने सवाल किया था। वह अपने पति का जिक्र करने लगी थी, "टिरासफर तो पोस्ट-मास्टर साहब के भी होते हैं पर ऐसे नही होते। काले कोसो! यह किधर को हुआ महू?"

"होयगा कही! मरा हमारे लिए तो परेत हो गया। सब खून पी लिया। कैसे-कैसे पाटौर वदलवाने की सोची थी पर "

"*भाभी, तुम लोग तो वेकार ही परेशान हो रही हो।" अजित बोल* पडा, "अब देश हो गया बडा आदमियो को नौकरी-कारोबार मे तो दूर-दूर जाना-जाना ही होगा।"

"वैसे होता तो कोई वात नही थी लाला, कि कानून से हुआ है, न्याव से। पर चुनमुन के दादा के साथ हुआ है अधरम!" सुरगो ने कहा। नौवी वच्ची, पहली वच्ची चुनमुन की गोद चढी थी—रिरियाकर रो पडी। सुरगा ने दस गालिया दी, "पटक आ भीतर इस अभागन को!"

'अधरम कैसे हुआ?" अजित न सवाल किया।

"कहते ह एक मरा और कम्पोडर है चुनमुन के दादा के साथ। उसके कोई नाते रिस्ते का आदमी कोई नेताजी है ये ई गाधी वावा की पारटी मे। वस, उसीको ग्वालियर आना था—सो उसकी जगह चुनमुन के दादा को भेड दिया है! अब जानो हमारा तो कोई हैती-नातेदार है ही नही

कांग्रेस पार्टी में। लटक गये! बोलो, अधरम हुआ कि नहीं।"

अजित की बोलती बन्द हो गयी है। सच ही तो यह सरासर ज्यादती हुई। अजित गरदन झुकाये हुए अपने घर में समा गया था—क्या अंतर पड़ा रियासतें जाने और अंगरेजों से मुक्ति में? पहले भी सरदार मराठे से कहकर कोई भी नौकरी पा सकता था। अब सरदार मराठे न होकर कोई नेताजी हो गया है। उसका रिश्तेदार होने से खुद का तबादला अपने घर में करवा लो, दूसरे का अण्डमान निकोबार में करवा दो। बड़े राजा, फिर छोटे छोटे राजा यही कुछ तो हुआ।

और अगले ही दिन सुबह चुनमुन के दादा यानी कम्पाउण्डर शामलाल ने विदा ली थी गली महल्ले वालों से। जाने के पूर्व बेशर मां के पैर छूने आया था वह, बोला था, 'काकी, जा रहा हूं। ये सब तुम लोगों के भरोसे हैं—सम्हालना। अब नहीं लगता कि साल भर आ पाऊंगा।" उसकी आवाज भर्रायी हुई थी। फिर पैर छूकर वह चला गया था।

सुरगो अकेली हो गयी चेहरा उखड़ गया था। वैसे ही जैसे पाटौर उधड़ी पड़ी थी। अजित जब-जब निकलता—यह पाटौर कसकर उसके भीतर समा जाती है। सुरगो के शब्द, " पाटौर बदलने के लिए कस करके डेढ़ सौ जोड़े थे" एक गणित लगाया था सुरगो और शामलाल ने—पल भर में चौपट हो लिया। एक यही गणित क्यों, सुरगो का बेटे वाला गणित भी तो चौपट हो चुका। नौ बेटियां सारी उम्र पर फूटी पाटौर की तरह ही खिलखिलाती हुई नजर आ रही हैं।

कुछ इसी तरह गणित लगाकर मिन्नी ने बी० ए० किया है।

अजित भूल नहीं पाता। कभी कभी अपने भीतर उबल भी पड़ता है—क्यों नहीं भूलता? उसे भूल जाना चाहिए! मिन्नी से उसका रिश्ता ही क्या है? सिवाय इसके कि वह अजित के उन अध्यापक की बेटी है, जिन्होंने उसे पढ़ाया है। सिवाय इसके कि वह और मिन्नी साथ खेला

करते थे, साथ पढा करते थे बस !

बाकी क्या है अजित और मिन्नी के बीच ? वह कायस्थ, अजित ब्राह्मण ! ना गोत, न नाता, न बैर, न दोस्ती। फिर, क्या है ?

और यह क्या है जो सुरगो की पार्टी और शामलाल के तबादले को लेकर दिमाग मे आ जाता है ? वह है क्या जो सुनहरी को लेकर अजित के भीतर उबलता है ? आखिर क्या रिश्ता है सुरगो और सुनहरी से ?

अजीब बात यही है कि कोई ऐसा रिश्ता है जो बयान नहीं किया जा सकता, पर महसूस होता है। तबादले, अखबार, खबरो और प्रधानमत्री के भाषणो से भी क्या रिश्ता बनाता है—पर यह रिश्ता होता है। अजित सोचना छोड नही सकता। इस महसूस होते अजान रिश्ते के साथ किसी पर क्रोध करने को जी चाहता है, किसी के दद मे रोने को और किसी को गले लगा लेने को।

इसलिए मिन्नी अजित के सोच मे है। उससे जानना होगा कि इस तरह बी० ए० कर लेने से क्या पा लिया है उसने ? ऐसे एम० ए० करके, डाक्टरेट करके भी क्या पा जायेगी मिन्नी ?

अजित उसे धिक्कारेगा ! शब्दो के थप्पडो से बुरी तरह आहत कर डालेगा ! वह उसके प्रति क्रूर हो जायेगा। उसे उसीकी बात याद दिलाकर सवाल करेगा उससे उसने ऐसा क्यो किया है ? सहज हसी की निर्दोषिता से दाम चुकाकर वह डिग्री खरीद रही है ?

कहती थी, "क्या हुक है कि मैं आगे के लिए कुछ गणित लगा रखू ? "

यह गणित नही था, तो क्या था ? वह डाक्टर गोविल ! एकदम गणित !

केशर मा रसोईघर म बैठी जोर से चीख पडती हैं, "अजित ? "

अजित दौडा हुआ पहुचता है।

केशर मा कहती हैं, "नीचे चन्दन के यहा से आलू तो उठा ला रे। वह गाव से सस्ते लाया था। मैंने भी कह दिया था—एक सेर के लिए।"

अजित को अच्छा नही लगता। कहता है "चन्दनसहाय के इतने अहसान लेने की क्या जरूरत है मा ?

केशर मा जैसे कौंधकर देखने लगती हैं उसे—फिर तड़पकर कहती हैं, "दूसरों के अहसान-कृपा लेने का दिन कौन दिखा रहा है—सोचा तूने ? ऊंची ऊंची बातें करने और सिनमा देखने से रोटी तो मिलेगी नहीं ? रोटी मिलेगी—मैट्रिक पास करने से। और जब तक तू इसी तरह पढ़ता रहेगा, जब तक यों ही दूसरों की कृपा पर जीती रहूंगी अपमान पीती रहूंगी।"

अजित निरुत्तर—पर झुंझला जरूर जाता है। यह चन्दनसहाय ही कान भरता रहता है केशर मा के। और फिर लगता है कि कौन नहीं है जो कान भरता हो ? एक दिन पोस्टमास्टर ने केशर मा को खबर दी थी—"आज मैंने कुछ आवारा लड़कों के साथ अजित को इन्दरगंज में कचौड़िया खाते देखा था।" श्रीपाल ड्राइवर ने तो खुद ही उसे टोक दिया था। कम्पू से रोडवेज की बस डिपो पहुंचाकर लौटा था वह। अजित अचानक उसके सामने पड़ गया था। हाथ में सिगरेट और चाल में इठलाहट। श्रीपाल को देखकर बुरी तरह घबराया। सिगरेट फेंक दी। श्रीपाल बोला था, "नहीं नहीं, पीओ अजित कुमारजी—खूब पियो। इसी तरह तो पण्डितजी का नाम काम ऊंचा कराओगे ?" और अजित जवाब में चुप। फिर श्रीपाल के साथ ही घर लौटना पड़ा था। लाकर केशर मा के सामने खड़ा कर दिया था उसने, "इसे सम्हालकर रखो चाची। यह सारे शहर में सिगरेटें पीता, सीटियां बजाता घूमता है। हीरो की दुम।"

और केशर मा लगी बड़बड़ाने रोने, "क्या करूं भइया। यह औलाद नहीं है—कलंक है। ऐसी औलाद से तो बेऔलाद ही भली थी मैं। पता होता कि बड़ा होकर सहारा बनने की बजाय अपनी विधवा मा को आठ आठ आंसू रुलायेगा, तो इस मरे सत्यानाशी का गला घोटकर मार देती।"

अजित उस पल तो चुप ही रहा था, पर बाद में बहुत भुनभुनाया। उसने श्रीपालसिंह को गालियां बकी थीं, कमीना बूढ़ा। वह झूठ बोलता है।'

"क्या तूने सिगरेट नहीं पी ? सीटी नहीं बजायी ? कमीना, गुण्डों की तरह।'

अजित ने चीखकर जवाब दिया था, 'मैंने सिगरेट पी, मगर सीटी नहीं बजायी। ये साला दो कौड़ी का ड्राइवर अपनी तरफ से नमक मिर्च

लगा गया है।" अजित सुख, लाल चेहरा करके चीख पडा था।

"वह झूठ बोल रहा है ? तुमसे वैर है न उसका ? तूने उसकी जमीन दबा ली है ना ? " केशर मा बडबडाती ही चली गयी थी, उन्होने माथा पीट लिया था, "मेरे तो करम फूट गये ! बूडो को झूठा कहता है, तेरे मुह मे कीडे ! अच्छी तरह समझ ले । " और इसके बाद वह न जाने कितनी गालिया, कितने विशेषण बोलती ही चली गयी थी। अजित भुनभुनाता रहा था। बीच-बीच मे चिल्लाकर कहता भी कि उसके साथ अन्याय हो रहा है। बूढे झूठ बोल रहे हैं इत्यादि, पर केशर मा की आदत है। जब रोती हैं तो रोती चीखती ही चली जाती हैं। न सुनती हैं, न ठीक तरह अपनी बात सुना पाती हैं। आवेश, दुख, क्रोध का कुछ ऐसा गुत्थमगुत्था होता है कि ठीक तरह से कोई रस अभिव्यक्त नही हो पाता। बस, एक ही रस अभिव्यक्त होता है—कलह रस !

तिस पर ये कमीना चन्दनसहाय ! इसकी षडयन्त्र प्रतिभा से बुरी तरह परशान है अजित । अब एक सेर आलू लाकर केशर मा को खुश कर दिया है, फिर कोई न कोई चक्कर उलझाकर एकदम सौ दो सौ निकलवा लेगा।

अजित भुनभुनाता हुआ सीढिया उतर रहा है। उधर भीतरी आगन मे पहुचने वाली सीढिया—नीचे की मजिल मे सभी किरायेदार है। चन्दनसहाय के पास सबसे बडा हिस्सा। सबसे कम किराया। असल मे केशर मा थूक दें तो हथेली पर ले ऐसा खुशामदी। जानता है कि पण्डित गगाप्रसाद की तिजोरी मे बहुत कुछ था—बाहर भी जमीन जायदाद। और केशर मा हैं भावुक मूख। अब भी उसी समय मे जी रही हैं। वही जमीदारी का जमाना। पण्डितजी की तारीफ करके और केशर मा के सामने हां मे हा मिलाकर मिरासिया की तरह काई भी इनाम पा जाये। रुपये, पाच रुपये, पचास रुपये। कानून का चक्कर दिखाये तो केशर मा दन् से सन्दूक खोल-कर हजार रुपये फेंक दें, 'बात रहनी चाहिए ! तुम तो जानत हो हा भइया, इस देहरी स बाहर पैर नही रखा मैंने। लडका अयोग्य निकला भइया अब एक आस के सहारे जी रही हू—किसी दिन चार रोटी कमाने लायक हो गया तो समझूगी, बडे भाग ! '

और अजित प्रतिपल अपना अपमान, अपनी अवहेलना अपनी ही मा के मुह से सुनता है। यही नही, यह भी देखता है कि केशर मा को सिलसिले से कितने ही लोग है जो मूख बना-बनाकर ठग रहे हैं। घर मे आते ही किसी किसीको सामने बिठाये हुए केशर मा अजित को लेकर अपने दुर्भाग्य और प्रतिष्ठा के डूब जाने का गाना रोना सुनाती हुई दीखती है। उस दिन सहोद्रा को बिठाते हुए ही बडबडा रही थी, "अब देख तो सहोद्रा। एक औलाद है, सो भी लगता है सराबी कबाबी हो जायेगी। किसके भरोसे जिऊ ? एक-एक कर चारो अगूठिया ठिकाने लगाकर सिनेमा देख आया कि गाजा पी आया, पता नही। "

सहोद्रा सहानुभूति स केशर मा को देख रही थी। वह लेटी थी और सहोद्रा उनके पैर दबा रही थी। अक्सर महल्ले की कोई न कोई स्त्री इसी तरह पैर दबाती या मालिश करती कभी अपनी बात कहती रहती और कभी केशर मा की सुनती रहती थी। यही कुछ केशर मा की दिनचर्या। सहोद्रा ने कहा था, "भगवान पर भरोसा रखो जीजी, अजित सम्हल जायेगा।

'क्या सम्हलेगा। " केशर मा ने एक गहरी सास ली थी, "चार छह जेवर और बचे हैं सो वे भी ऐसे ही गल जायेंगे। हो गया अपनी ही आखा इसे इसी गली म लुढ़कते गिरते देखूगी। लगता है यही लिखा है भाग मे "

"अरे नही-नही जीजी। ठीक हो जाएगा सब।"

"खाक ठीक होगा। " केशर मा पर कभी विनम्रता, पीड़ा और कभी आवेश उत्तेजना के दौरे पडते रहत थे, "चार साल से नाइन्य में पडा है। मुझे तो मट्रिक करना भी कठिन लग रहा है सोचती थी कि चार छह हजार खच करके कुछ डाक्टर अफसर बना लेती सो क्लिरक बनाना भी कठिन ! '

"इससे तो अच्छा है जीजी, उसे कोई दुकान कारोबार का काम ही दिया ना दो।" सहोद्रा ने सुझाव दिया था। शायद उसे मालूम नहीं था कि अजित अपने कमरे म बैठा हुआ उपन्यास पढ रहा है—वरना ऐसा न कहती। अजित सुलगकर रह गया था। पापी औरत ! एक नयी सूझ

केशर मा के दिमाग मे बिठाय जा रही है ।

ऐसा ही कुछ कहता रहता है चन्दनसहाय। और तभी अजित न सुना कि केशर मा तम्बाकू खाने बैठीं, वैसे ही सहोद्रा बोली थी, "एक काम से आयी हू, जीजी।"

"क्या है ?"

घिघियायी-सी आवाज मे सहोद्रा न कहा था, "मुझे दस रुपये चाहिए तुम्ह तो मालूम ही है जब से मुकुल जमना ने किनारा किया है, सब कुछ लूट-खसोटकर भिखारी बना डाला । अब तुम्हारे अलावा है कौन जिसके पास जाऊगी ? जरा काम जम जाये तो सब ठीक हो जायेगा "

"ठीक है।" केशर मा ने कहा था, "उठा ले "फिर पानदान से चाबिया निकालकर फेंक दी थीं। सहोद्रा उठी, केशर मा के सन्दूक का ताला खोला और दस रुपये निकालकर ताला बन्द किया । चाबिया केशर मा के पास रखकर चल पडी थी, "तुमने बडी रच्छा कर ली जीजी। "

"अच्छा अच्छा ! " केशर मा ने लापरवाही से कहा था, तम्बाकू फाकने लगी।

अजित कुढता सुलगता रह गया था सिर्फ सहोद्रा के मामले मे ही क्यो चन्दनसहाय, सुरगो, अनसूयाबाई पुढरीकर कितनी तो थी, जो इस तरह, बिलकुल एक ही तरह केशर मा को ठगती रहती थी और केशर मा अजित की निन्दा करती हुई निरतर उनसे सहानुभूति पाती रहती। अजित झल्लाने लगा था। यह झल्लाहट क्रोध मे बदली थी। क्रोध से मा बेटे मे जोर जोर से लडाइया होने लगी थी, फिर अजित दिन दिन भर गायब रहने लगा था घर मे आने को मन नही करता था उसका।

अजित ने अपनी कमजोरी समझी है। वह खुद भी समझ चुका है कि अब मैट्रिक करना सभव नही तब सभव क्या है ? यह अजित को सहज से कुछ भी नही लगता। जब जब सोचना चाहता है, तब-तब केशर मा का क्रोध, निन्दा, महल्ले की उपहास भरी दृष्टिया अजित बुझने लगा है साथ-साथ विद्रोही भी हो रहा है।

थैले मे पूरे आठ दिना की सब्जी भरे हुए। एक दिन केशर मा से बोला था, "क्या करू माजी, ऐसे न चलाऊ तो कहा से चले ? जवान बहिन ब्याहने को सिर पर बैठी है, फिर भगवान की कृपा से आपकी बहू है, बच्चे हैं कचहरी की तनखाह म मिलता ही क्या है ? '

"इसमे कितना फक पड जाता होगा चन्दन ?" केशर मा न पूछा था।

"दो ढाई रुपये हफ्ते का फक तो साग भाजी से पड ही जाता है।' चन्दनसहाय विनम्र भाव से देहरी पर खडे हुए बतलाया था, "अब देखो, पिछले साल इन्ही सरदियो मे चार आने सेर बिक रही थी भिण्डी। इस साल आठ आने है। बतलाओ कहा स कैसे गुजारा होगा हम जसे कारकूना का ?' वह एसा मुह बना लेता जैसे उसके मुह मे काडलीवर आयल चला गया हो।

और केशर मा कहती, "ठीक कहता है चन्दन। अब वह जमान कहा रह ? अब यही देख ना—पाच साल पहले खरीदा य मकान कुल चार हजार म लिया था अजित के पिता ने अब क्या भाव होगा इसका ?"

'आठ ! पूरे आठ जानो—माजी।'

केशर मा खुश हो जाती। पर व्यक्त नही करती। जिक्र तोड देती। "ठीक है, भाई। यही ससार है। बच्चे पढ लिख जायें, काबिल हो जाये तो समझना सुरग मिल लिया !"

अभी तो नरक ही भोगना है माजी।" चन्दनसहाय देहरी छोडता, "पहले इस बटनिया का बोझ उतार दू। वह चला जाता।

बटनियाँ—यानी चन्दनसहाय की बहिन। छोटी थी, पर बटा जसी नही। आँखें गोल थी, रग गुलाबी। बदन भरा हुआ। सुगठित। चलती तो कमर पर इसक दर स लचका देती जसे सगम पर इधर की लहर और उधर की लहर। बीच मे बिजली-सी कौंधती रहती। सीना भरे भरे। अजित की हमउम्र। अजित का दिल करता था कि किसी बार चन्दनसहाय को जूता मारे, हरामी धूर्त, छुपा रुस्तम ठग—सारे मोहल्ले म उसका भाईचारा नहा पर बटनियाँ का देखता और दिल मसोस लेता। चन्दनसहाय इस पर आ गया तो बटनियाँ कहाँ जायेगी।

वटनिया का नाम था—वेनवती। पर सुनते हैं उसकी गोल गो
पुतलिया बचपन मे बटन जसी लगती थी। बस, प्यार मे मा-बाप बटनि
कहने लगे। बेनवती नाम लगभग धुल पुछ गया। भर जवानी मे
बटनिया ही चल रही थी।

सब्जी लेने के लिए सीढ़िया उतरते हुए अचानक ही वटनिया
ध्यान हो आया था अजित के मन म। सारी कडवाहट धुल गयी थी। चन्द
सहाय से कोई शिकायत नही।

नीचे पहुचा। चन्दनसहाय कचहरी जा चुका था। उसके छोटे छो
बच्चे आगन म खेल रहे थे। बटनिया रसोई मे थी। चन्दनसहाय
घरवाली बडदत्तो स्नान घर मे। अजित दनदनाता हुआ रसोईघर मे
पहुचा था—वटनिया सामने। उसे देखकर मुस्करा दी। अजित पिघ
कर रह गया। निगाहें बटनिया के शरीर मे लगभग घुसाते हुए बोल
"क्यो बटनिया, आलू कहा हैं हमारे ?"

बटनिया बोली, "बैठ। देती हू। जरा छौंक लगा दू ?" फिर
पतीली मे कारवाई करने लगी।

अजित वही पटा खीचकर वैठ रहा। बटनिया को देखता हुआ
लडकी है? मालूम नही किसके भाग मे है औरत ? पर जिसके भाग
भी हो—बिजली बनकर गिरेगी। बटनिया जरा मुस्कराती और कप
ज्यादा गुलाबी हो उठते पर जब जब उसके करीब चन्दनसहाय का चे
उगा दीखता—उसका भाई जायका एकाएक बिगड जाता। कुछ
तरह जैसे नये जूतेवाला पाव अचानक ही नाली में जा धसा हो।

अजित उसे घूरता रहा। मुडकर बाहर भी देख लेता। बडदत्तो
बच्चे तो नहीं आ पहुचे इधर ? मजा खराब हो जायेगा सारा। बट
ने सब्जी म बधार दिया, फिर उठी। अजित को लगा कि एक लहर से
गया है। सिहरन ही सिहरन !

बटनिया ने कहा, "आ, दूसर कमरे मे है। फिर वह आगे चल प
धीमे धीमे, पर वही सगम वाली लहरा की टकराहट लिय हिचको
खाती हुई। अजित न हसकर कहा, "एक बात पूछू बटनिया ?"

खूब पहचानता है इन निगाहो को। य भले सुनहरी के चेहरे पर जडी हो, या बटनिया के—बोलती एक ही बात हैं।

वे दूसरे कमरे म आ गये थे। अजित खडा हुआ उसे मुग्ध भाव से देखता जा रहा था। बटनिया बार-बार अपने आचल को सम्हालती हुई, थल स आलू निकालकर तोल रही थी, "एक सेर है ना ?"

'हा।'

तू कुछ कह रहा था ?" बटनिया ने बाट तराजू पर चढाये, दूसरे पल्ले मे आलू।

"हा ? हा हा।" अजित को याद आया, कह रहा था, पर बटनिया के वदन ने ऐसा मोहा कि भूल गया। बोला, "मैं पूछ रहा था, ऐसे झकोने खाती चाल लेकर तू महाराजबाडे तक का रास्ता कित्ती देर म तय कर सकती है ?"

'हट्ट ! ' वह बोली—फिर वही आखें। इस बार इजाफा यह कि बटनिया ने हौले स सुख गुलाबी होठ भी दबाया, आचल सम्हाल लिया। बोली, "यह ले एक सेर ! "

थैला उठाकर उसका मुह दोनो हाथो से फैलाकर अजित उसके करीब, एकदम सामने बैठ गया। निगाहें बटनिया पर ठहरी थीं। उसने भी कनखियो से देख लिया। मुस्कराती रही।

अजित बोला, ' जिससे ब्याह होगा तेरा, वह तो सारी उमर तुझे अपने घर ले जाने मे ही लगा देगा ? "

"कैसी बातें करता है तू ?" बटनिया और गुलाबी हो गयी। आलू थैले मे समा चुके थे पर बटनिया उठी रही। शेष आलू दूसरे थले म भरने लगी। बीच बीच मे अजित को देखती भी जाती। अजित ने पलटकर देखा—कोई नही है। कहा, ' सच कहता हू, ऐसे बल खाती हुई अगर किसी मे उसके साथ गयी तो सौ कोस दूर के गाव पहुचने मे भी उसे कभी हैदराबाद और कभी इलाहाबाद घूमते जाना पडेगा। '

' क्यो ? '

"तेरी कमर को लेकर कह रहा हू।" अजित फुसफुसाया "भगवान की कसम, किसी पल हैदराबाद जाती है, किसी पल इलाहाबाद"। इस

समालते हुए ही तो ले जायेगा बचारा !"

बटनिया हसी, "हट्ट ! ज्यादा तग किया करेगा तो केशर मा से कहूगी।"

"क्या कहूगी ?" ढीठ हो गया अजित।

'यही कि तू "फि र उसने चेहरा झुका लिया, "हट्ट !" वह लजाकर एकदम सुख ही हो गयी।

अजित ज्यादा ही रस मे डूब गया।

बटनिया ने शरारत से कह दिया, "मैं उत्ती दूर व्याह ही क्यो करूगी—जो वह इलाहाबाद, हैदराबाद भटके ?"

"तब कहा करेगी ?" अजित ने और दबी आवाज मे पूछा।

"यही कही कर लूगी पास।" वह फुसफुसायी।

"एक सलाह दू।'

"क्या ?" बटनिया ने उसे देखा।

"ये ऊपरवाली मजिल क्या बुरी है ?"

'हि हि-हि ' करके वह धीमी सी हसी मे हसी और फिर 'ह कहकर एकदम उठ पडी। अजित कुछ कहता, पर तभी उसने देखा, बडद स्नानघर से बाहर उछन आयी थी आगन मे—पेटीकोट और ऊपर से सा लपेटी हुई, सर्दी के मारे दात किटकिटा रहे थे उसके, "हरे राम ह्-ह्म रा आश् ह्,हम। हरे, ऐ ऐ "

अजित और बटनिया बाहर आ गये। अजित थैला लेकर सीढियो तरफ लपका। लग रहा था थोडी देर के लिए जी हलका हो गया है च दनसहाय की बडबडाहट को बटनिया ही थी जो धो दिया करती।

असल मे बटनिया बहुत से आकषणो का केन्द्र थी अजित क लि मादक, सुदर शरीर, मीठी गुनगुनाती हुई-सी आवाज। लहराती च और सरल स्वभाव। वह पढी लिखी नही थी। शायद चन्दनसहाय ने जानबूझकर नही पढाया था उसे। यह भी ठीक से मालूम नही, बट दस्तखत कर सकती थी या नहीं, पर घर के कामकाज में कुशल थी। दी गयी थी। मा बाप बहुत छोटी छोडकर मरे थे। पालन पोषण इक भाई च दनसहाय ने ही किया था। च दनसहाय था—ज मजात घूतत

बेमिसाल नमूना। अजब-सी चीज था वह। मुहल्ले में उसे सरलता और विनम्रता के अतिरिक्त गरीबी और सहानुभूति का पात्र समझा जाता। एक पुरानी, टूटी चीक्ह सायकिल पर चन्दनसहाय सवार होता। इस सायकिल में घन्टी नहीं थी, ब्रेक नहीं थे। चन्दनसहाय लम्बे कद से ब्रेक का काम लेता। 'भैयाजी ऐ-य भाई साहब' कहकर सारे रास्ते घन्टी का काम निकालता। उसकी कमीज पाजामे प्रतिदिन बटनिया या बड़दत्तो घर में धो दिया करतीं। बिना क्रीज उन्हें पहनता। जब कहीं खास तौर पर जाना होता तो रात तकिये के नीचे तह बनाकर दबा लेता, सुबह तक काफी कुछ सिकुड़नें मिट चुकी होतीं। मुहल्ले में सबसे ज्यादा जोर से और देर तक भगवान की पूजा करता। मंगलवार को हनुमान मंदिर में, शनिवार को शनि मंदिर में, सोमवार को सनातन धर्म मंदिर में—हर शाम किसी न किसी मंदिर में जाता। प्रसाद लाता। आते में नमस्कार, जाते में नमस्कार। छोटा-बड़ा कोई मिले, बात इस तरह करता जैसे अभी गिरकर पैर पकड़ लेगा और आंसुओं से धो डालेगा।

सारा मुहल्ला कहता— इसे कहते हैं, जनम से कायथ, करम से ब्राह्मण। गिरहस्ती की तपस्या कर रहा है बेचारा! जवान बहिन ब्याहनी है, तीन बिटिया हैं सबको ठिकाने लगाना होगा। कैसी-कैसी विपदा झेल रहा है।"

सुननेवाले 'च च' करने लगते।

चन्दनसहाय का यह सौजन्य और शालीनता विनम्रता पता नहीं किस स्रोत से उसके पूरे घर में ही समा गयी थी। तीनों लड़कियां निकलतीं तो ठीक चन्दन की ही तरह मिमियायी हुई। बेटा किसी हमउम्र बच्चे की धमकी से कांपता हुआ तुलसीघर के पीछे समा जाता। पत्नी गाली देने से लेकर प्यार करने तक बछिया की तरह हर सामने वाले से लिपटी सी लगती। बटनिया भी कुछ कुछ ऐसी ही थी, अन्तर यह था कि वह महीनों बाद किसी बार गली में देखी जाती—वरना उसकी सारी दुनिया, रसोई से लेकर कमरों तक। अजित के घर का सारा आंगन बटनिया का लीला-केन्द्र। चन्दनसहाय की पत्नी किसी न किसी बात को लेकर बटनिया को सबक ही देती रहती, 'अरे बहिना, घर चलाना है तुझे। तेरे भइया की

कमर दोहरी हो गयी करते करते। बाप मरे तो कर्ज छोड गये थे। पैसे कैसे तो सब पार लगाया है, अब ससार-सागर मे डूब रहे हैं। आखिर हमे भी तो उनकी खातिर कुछ बोझ हल्का करना चाहिये।"

और बटनिया जुटी रहती, जुटी रहती, जुटी रहती।

कभी चन्दनसहाय और कभी उसकी पत्नी बटनिया को लेकर वर की खोज पर अजित की मा से बात करते, विवरण बतलाते कितने-कितने घर, लडके नही देख चुका था चन्दनसहाय। कही दान दहेज की बात उठती, कही बटनिया की अशिक्षा का लेकर बात अटक जाती और कही कायस्थ कुलो की ऊचाई नीचाई के पैमानो को लेकर एक बार बिसन माथुर के बाप किसी लडके को लेकर बतियाने आये थे। पढा लिखा था, योग्य था। पी० डब्ल्यू० डी० मे काम कर रहा था। ऊपर की कमाई इफरात। पर था सक्सेना। चन्दनसहाय को पहली बार जरा ऊचा बोलते सुना था अजित ने। आगन म चारपाई डाले, अडरवीयर-बनियान पहने हुए चन्दनसहाय न कहा था, "आखिर आप समझते क्या हैं माथुर साहब! हम गरीब हैं, पर यह नही भूलेगे कि श्रीवास्तव हैं। हम सक्सेनाओ मे बेटी नही देंगे।"

"क्यो?" माथुर साहब पुलिस के रिटायर्ड दीवान। ऊची आवाज सुनने की आदत नहीं। हैं तो दरोगा और चन्दनसहाय ना-कुछ कचहरी का अदना हाकिम—उसकी य मजाल कि आगन मे बैठकर चिल्लाये—? वह भी कुछ गुरगुरा उठे थे।

"इसलिए कि ये सक्सेनाओ ने ही कायस्थ बदनाम किये हैं!" चन्दन-सहाय ने कहा था, "इन्ही को लेकर लोग कहते हैं—कायथ बच्चा, कभी न सच्चा और सच्चा तो "

'अरे लोग क्या कहते हैं वह छोडो। खोट बताओ सक्सेनाओ का! बस!" माथुर साहब चिहुकते गये।

"ये चालाक, बेईमान, बदमाश " बकता ही चला गया था चन्दन। "कायथो के असल खोट सिरफ इनमे है! हा! हम बेटी इनके यहा नही देंगे।'

"अरे छोडो!" माथुर साहब उठ पडे, "अक्ल की बात करो। बेईमानी सिरफ सक्सेनाओ-कायस्थो की बपौती नहीं है। सब करते हैं। जी

खोलकर करते हैं। ये खोट नही हुआ ! असलियत हुई और तुम जरा अपने को भी तो देख लो। तुम कौन स भगवान चित्रगुप्त हो। ईमान धरम के खातेदार ! सवेरे से शाम तक दो दो रुपल्ली लेते हो। तो श्रीवास्तव ही कौन से ईमानदार हो गये ! " माथुर साहब बडबडाते हुए चले गये थे।

चन्दनसहाय चुप। एक ओर कमरे की देहरी पर घूघट लिय चन्दन सहाय की पत्नी बैठी थी। माथुर के जाते ही दनाक से जसे परदा खीच मारा हो, उसने घूघट उलट दिया था। कहा, "तुम भी हद ही करते हो वटनिया के भइया। अच्छा भला लडका मिल रहा था "

"तुम नही समझती वटनिया की भौजी। ये जात बिरादरी, कानून कायदे की बातें हैं।" फिर चन्दनसहाय उठा और बिना क्रीज की, बिना बटनोवाली कमीज गले मे डाली, पाजामा कमर पर अटकाया और साइकिल लेकर बाहर निकल पडा।

पिछले चार साल से यही चल रहा था वटनिया १६ की हो गयी। उसकी कमर का सगम बढ गया, निगाहें ज्यादा बोलने लगी, होठ काटती मुसकान उम्र के आकाश पर ज्यादा ही इन्द्रधनुष खिला उठी पर चन्दन सहाय निरतर लडका खोज रहा था, खोजे ही जा रहा था

और वटनिया आगन मे घूम रही थी—घूम ही जा रही थी

अजित खाना खाकर फिर से अपने कमरे मे आ धसा था। खाने के दौरान केशर मा वडवन्ाती रही थी, इत्ता इत्ता तो पढता है, फिर पास क्यो नही होता तू ?"

अजित ने हसकर अचार दातो स काटते हुए जवाब दिया था, "दिक्कत तो यही है कि जो कुछ पढता हू, वह इम्तिहान म आता ही नही।"

ये मरे आजकल के मास्टर लोग भी ऐसे ही हैं। लडके पढें कुछ, ये पूछें कुछ ! ' *केशर मा वडबडायी थी।*

अजित चला आया था। कमरे मे आकर याद आया—शाम को 'साहित्य सगम' की सभा है। चुनाव हूगे। अजित मम्बर नही हुआ अब तक। *मेम्बर न हुआ तो भोपाल नही जा पायेगा। वहा सम्मेलन है। मेम्बर बनना* जरूरी। मेम्बरी के लिए पाच रुपय जरूरी। केशर मा का खाना खाते वक्त

पटका दिया था उसने, "मा, पाच रुपये चाहिए।"

चौंक गयी थी वह, "किसलिए ?"

अजित को मालूम है—वह सब समझा नही सकेगा, जो है, अत बोला था, ' इतिहास की एक कुजी आयी है। वह खरीदने से लडके बिलकुल पास होते हैं, वही खरीदूगा। '

केशर मा ने कहा था, "ठीक है—खरीद लेना। कल चन्दन से कह दूगी, दिलवा लायेगा।"

"चन्दन से क्या कहागी ?' अजित बिगड पडा था एकदम, "मैं नहीं खरीद सकता क्या ?"

"खरीद तो सकता है, पर बडा साथ हो तो '

"मा ! " लगभग चीख पडा था अजित, "तुम्हे मुझ पर अविश्वास है ? जब अविश्वास है तो मुझे खरीदना ही नही है ! "

वह चुप थी— गभीर।

अजित बडबडाता रहा था, "अपनी औलाद पर भरोसा नही, चन्दन सहाय, अन्दनसहाय चोरो को लपका रखा है वे साले मेरे पहरेदार बनकर मेरे साथ किताब खरीदेंगे ! खूब इज्जत की है तुमने !"

केशर मा भी बडबडाने लगी थी। बात खत्म हो ली।

अब पाच रुपये समस्या।

केशर मा का सन्दूक सामने है—अजित चाहे तो पाच सौ निकाल ले। नकद नही होंगे तो कोई न कोई छोटा मोटा जेवर निकल आयगा, पर वह फिर कभी। केशर मा बडा मजबूत ताला लगा रखती है पेटी मे। पेटीवाला कमरा ज्यादातर खुला छोडती नही। अजित पर इस तरह पहरेदारी है जैसे घर मे दुनिया का सबसे बडा चोर रह रहा हो। अजित क्रोध से भर उठता है

तब कहा से होगे पाच रुपये ? वे होने ही हैं। अजित का भोपाल जाना जरूरी। भोपाल मे पण्डितजी आ रहे हैं। पहली बार अजित बहुत करीब से देख सकेगा उन्हें। जवाहरलाल नेहरू। उद्घाटन करेंगे वह। फिर और भी कई लोग होगे। कई लेखक। रामधारीसिंह दिनकर भी होंगे, शिवमगलसिंह सुमन भी। इन सबको देखना है। इनसे मिलना है। अजित

की दो कहानिया छपी हैं लोकल अखबारो मे। अजित लेखक !

पर पाच रुपये के बिना लेखक होकर भी अजित लेखक नहीं !

कोस की एक भी पुस्तक नही है, जिसे बेचा जा सके। जो हैं, उनसे पाच रुपये नही मिलेंग। अजित बेचैन होने लगा है। अजित की निगाहें उस अलमारी पर जा अटकी हैं जिसमे अजित के पिता की ढेर ढेर किताबें रखी हैं—तुलसीकृत रामायण, वाल्मीकि रामायण, चाद का मारवाडी अक, फासी अक, चतुरसेन की पुस्तकें, प्रेमचद, शरत वे पढने के बहुत शौकीन थे। अजित इन सभी को पढ चुका है। कई कई बार। क्या इनमे से किसी किताब को ठिकान लगाकर पाच रुपय जुटाये जा सकत है ? वह सोचने लगा था।

जुटाये जा सकते है, मगर यह मालूम नही कि बाजार मे इनका कोई भाव है या नही ? कास की होती तो शायद दाम मिलते।

पर और काई राह नही। अजित ने चाद और कल्याण के दो अक उठाये—बाहर आ गया। केशर मा रसोई म ही थी। अजित जल्दी से चप्पल पहनकर गली मे उतर आया। मोड पर मुडने को ही था कि बुरी तरह चौंक गया, "लाला !"

वह मुडा। रेशमा ने पुकारा था।

"एक मिलट को इधर आना।" वह दबी आवाज मे उसे भीतर बुला रही है।

अजित को जल्दी है। ये अक रद्दी मे बेचने होगे। तम्बाकूवाले के यहा या किसी गजकवाले के यहा। भाव-ताव करके ठीक से पटा लेगा। पर रेशमा का आमत्रण अस्वीकारना भी ठीक न लगा। दुखी औरत है, तिस पर इन शरारती औरतो जैसी नही। कभी किसी अखाडे, पचायत म उस चहकते बहकते नही देखा है अजित ने। अजब-सी श्रद्धा होती है उसके प्रति।

अजित बरामदे मे पहुचा, 'बोलो भाभी !'

"तुम्हें टैम है पाच सात मिनट का ?"

"हा-हा, बोलो ! क्या काम है ?

'तो, आओ। वह उस अपन साथ ल गयी—भीतरी कमरे म।

साफ सफाई पस द रेशमा का रहन सहन वही है, सिफ शृगार की वैधव्य—वस, और परिवतन कुछ नही।

एक चारपाई पर बैठ गया अजित। रेशमा धरती पर। आचल सम्हालती हुई बोली थी, "लाला, अब तुम लोग छोटे नहीं हो। बडे हो चुके हो यही सोचकर तुमसे कह रही हू। औरत, मरद, इज्जत आबरू सब समझते हो तुम इसीलिए " वह बोलते बोलते रुक गयी थी। धरती की ओर देखने लगी।

अजित कुछ सकपका गया। इस तरह बडो से जुडकर गभीर बातें करन का अवसर कभी नही आया। अनायास ही अपने आपको किसी भारी जिम्मेदारी म दबा महसूस करने लगा। पूछा, "क्या बात है भाभी? बोलो तो? हम लागो से कोई शिकायत हुई तुम्हें? मुझसे, छोटे से, मोटे से, उस महश क बच्चे से किसीने कुछ कहा तुम्हें?"

"नही नही, भइया! वह बात नही है। तुम सब मेरे लिए बच्चा जैसे हो पर अब बडे हो गये हो, इसीलिए मदद चाहती हू। इस गली मे रह रही हू। औरत जात। अकेली पुकेली। इत्ता बडा घर। कोई हेती-नातदार, न सगा सम्बन्धी। एक था, भले ही इस नरक के लिए खरीदकर लाया था मुझे—पर छत्रछाया तो थी उसकी। अब वह भी नही " बोलते बोलते रुआसी हो गयी थी रेशमा। अजित का दिल सहानुभूति से भर आया था। रेशमा कभी इस तरह नही बोलती, इतना कमजोर और टूटा हुआ कभी नही देखा है उस। जरूर काई बडी बात हुई होगी।

रेशमा कहे जा रही थी, "अब तुम्ही लागो के सहारे बैठी हू "

अजित ने एकदम कहा था, "तुम बोलो तो भाभी, हुआ क्या? किस स्साले न क्या कहा है तुम्हें?"

"अब तुमसे क्या छिपाऊ लाला, जिसे बेटा मानकर सहारा समझकर घर मे बसाया है, वही " रेशमा फफक फफककर रोन लगी

अजित हडबडा गया जरूर वह भरोसे को लकर कुछ कह रही है। उस दारूबाज न कोई शरारत की होगी। जरूर की होगी। घरवाली, बाल-बच्चा, शादी विवाह कुछ तो है नही उसका। जान कहा से दूरदराज का रिश्ता पालकर इस घर दौलत के लिए कूद आया है गली म। रशमा

की लुनाई और भरे वदन को देखकर ईमान विगडा होगा और यह बेचारी उस तरह जीना तो दूर, उसके लिए वैसा एक शब्द भी अजित के सामने बोल पाना कठिन अपने को ही अपमानित कर डालने वाला इस रुलायी ने पल भर मे सब कुछ कह दिया है। आधे शब्द एकदम पूरे कर दिये हैं। अजित ने कठोर आवाज म कहा, "चिन्ता मत करो, भाभी! उस हरामजादे को हम ठीक किये देते हैं जब तक मैं इस गली म हू, तब तक कभी मत समझना कि तुम्हारे बेटा नही है!"

वह आसुओ से भरा अपना चेहरा उठाकर अजित को स्तब्ध होकर देखने लगी—जैसे विश्वास करना चाहती हो कि वह बटे वाली है। अजित की आख भी भावुकता म छलछला आयी।

बस, लाला। मैं जी गयी! भगवान तुम्हे बहुत दे, खूब उमर, खूब तरक्की! ' वह बडबडाये जा रही थी। अजित उठ पडा। कहा, "आज ही सब ठीक कर लेगे भाभी—डरा मत। अब चिन्ता मत करना।" फिर वह क्रोध से भरा हुआ जल्दी जल्दी रेशमा के घर से निकलकर गली का मोड काटता हुआ बाजार म आ गया।

सारी राह सोचता रहा था कैसे-कैसे लोग हैं और क्या कुछ होता है ससार मे! रेशमा ने इस भरोमे का स्वागत ऐसे किया था, जसे उसके अपनी कोख का जाया बेटा हो पर

अजित को याद है—आने के तीसरे या चौथे दिन ही भरोसे को लेकर रेशमा गली मे बातें कर रही थी। सुरगो ने पूछा था, ' फिर लडकी तो देख आयी है तू—पहले ये तो सोच ले रेशमा, कही ऐसा न हो कि ये तेरे घर का सारा मालमत्ता बटोरकर चलता हो या फिर ब्याह होत ही तुझे धकियाकर निकाल फेंक।"

"अरे नही-नही बहिना! कसी बातें करती हो? आखिर को अश है 'उनका। इसके मइया-बाप बचपन मे ही मर गय। मरे कोई औलाद नही। समझूगी मुझे बेटा मिल गया और इसे मा। यही निभाव हो जायगा। फिर अब मुये तो य सब सिर पर उठाकर ले जाना ही नहीं है। सब उसी का रहगा। चार रोटिया खाऊगी और राम भजन करूगी आधी बीत गयी— आधी बीत जायगी!"

और वही आदमी इतना नीच ? अजित का मन घृणा और क्रोध से भर आया था—एक औरत न जिस आदमी मे बेटा खोजा, उसने उसम औरत देखी ? छि ! ऐसे आदमी को तो गली मे टिकने ही नही देना है

पर इसी तरह अगर फैसला करेगा अजित, तब किस किसको टिकने देगा ? सुनहरी, सहोद्रा, वैष्णवी श्रीपाल, पोस्टमास्टर, मोठे बुआ, चन्दनसहाय कितनी ही औरतें, कितने ही मद ! क्या अजित गली ही खाली करवा सकता है ? और क्या एक ही गली है शहर मे ? और क्या एक ही शहर है देश मे ?

अजित माधोगज पहुचकर तम्बाकू की दुकान से सौदा करने लगा था। "ये दो अक हैं। तोला तो सही !" उसने अक दुकानदार के सामने रख दिय थे। कटे हुए कनस्तरो मे तरह तरह की तम्बाकुए भरी थी। अजब सी झनझना देनी वाली महक नथुनो म भरी हुई थी।

दुकानदार ने दोना अक तोले। बोला, "छह सेर !"

'कित्ते के हुए ?"

'आठ आन सेर स तीन रुपय के।' दुकानदार न रुपये निकाले।

"रहन दो, रहने दो।" अजित बोला, 'लाओ, मुझे दो। कभी रद्दी खरीदी है तुमने ?"

'देख लो बाजार मे—अगर इससे ज्यादा मिलें तो यहा दे जाना।' उसने दानो विशेषाक धडाम से अजित के सामने पटक दिय। अजित उन्हे लेने झुका, पर चौक गया। उसस पहले एक चूडियो वाले हाथ ने उन्हें उठा लिया था। अजित ने देखा—मिनी थी। मुसकराते हुए उसन पूछा था, "क्या बात है, रद्दी बेच रह हो ?"

अजित क चेहरे का सारा पानी उतर गया। सकपकाकर कहा, "हा।"

"ऐसी क्या जरूरत आ पडी ?" वह बोली, फिर दुकानदार की ओर एक का नोट फेंका, "छटाक भर खान का तम्बाकू देना।"

अजित न तय कर लिया था लज्जा म पडकर झूठ नही बोलगा। कहा, "साहित्य सगम का चन्दा देना है। पाच रुपये। और तुम्हें तो मालूम ही है कि मा मुझे कौडी नही देनी ! इसीलिए सोचा कि यो

"आओ मेरे साथ—चुपचाप।" वह उसे लगभग खीचते हुए बाजार से अलग एक साइड मे ले गयी थी।

"मिन्नी तुम तुम ऐसा कर सकती हो—यही मेरे लिए हैरत मे डालनेवाली बात है, पर उससे भी ज्यादा यह कि तुम इतनी समझदार हो चुकी हो?" अजित बडबडा उठा था।

मिन्नी ने सहसा गभीर होकर उत्तर दे दिया था, "तुम्हे पता ही नही कि मैं किस कदर समझदार हो चुकी हू।" उसने अतिम शब्द इस तरह बोले थे, जसे बुदबुदायी हो। अचानक उसने अपना पस खोला—पाच का नोट निकालकर अजित की ओर बढा दिया था, "यह लो और काम चला लो, पर इन अको को मत निकालो। शायद किसी दिन काम आ जायें!"

अजित को अच्छा नही लगा। उसके नोट और उसे हिकारत से देखता हुआ बोल पडा था, "तुम क्या समझती हो कि तुम्हारी खैरात तुम्हें दोस्तो से मिलने वाला आदर दिलवा देती, जिस तुम एक एक डिग्री के लिए बेच रही हो?"

"अजित! " उसका मुह खुला रह गया था, "तुम तुम यह सब बोल रहे हो?"

"ये फिल्मी अदाज छोडो। अपना रास्ता लो।" अजित ने ज्यादा ही चिढ के साथ कहा था, "आई हट यू!" और इसके पहले कि मिन्नी कुछ कह सके, वह तेजी से भीड मे गुम हो गया था। मुडकर भी उस ओर नही दखा था उसने। दिल मे अजब-सी शाति महसूस की थी—मिन्नी के चेहरे पर थप्पड जड दिया है उसने। कुछ न कहकर भी सब कुछ कह डाला है। वाह! किस पौरुष का काम किया अजित ने? उसने अपने ही भीतर गौरव महसूस किया था। गजकवाले की दुकान पर पहुचा। बहुत सौदे भाव के बावजूद साढे तीन रुपय पा सका था। कुछ आशा और निराशा के बीच झूलता हुआ अजित 'साहित्य सगम' के कार्यालय की ओर चल पडा था। हो सकता है—डाक्टर जैसिंह मिल जायें। उनसे मागेगा डढ रुपया। डाक्टर जैसिंह सस्था की राजनीति मे किसी न किसी पद के चक्कर मे रहते हैं। अजित को मेम्बर बनाने का वोट जरूर लेना चाहेगे।

पैसा देंगे। वह न मिले तो विसेसरदयाल होंगे। वह लेखक नही हैं, पर लेखकों के बीच रहकर ही राजनीति पकाते रहे है, उन्हें भी पद के चक्कर मे वोट चाहिए होते हैं और मेम्बर बनकर अजित वोटर होगा। कोई न कोई मिल ही जायेगा।

और यही हुआ था। विसेसरदयाल मिल गये थे। अजित ने कहा तो बोले थे, 'तुम भी हद करते हो यार ! अपने साढे तीन भी अपने ही पास रखो। मैं तुम्हारा और गौतम का चन्दा जमा कर दूगा।"

अजित लौट आया था। एक ही अफसोस था। वे अक न भी होते तो चन्दा जमा हो गया होता। साहित्य हो या राजनीति विसेसरदयाल और डाक्टर जैसिंह किस्म के मान न मान मैं तेरा मेहमान बहुत से होते हैं उनका सदुपयोग सही।

बाजार की ओर मुडते ही मोठे बुआ पर नजर जा पडी। वह बिसन माथुर के साथ खडा हुआ था। न जाने क्या कह रहा है ? अजित ने सोचा था। फिर याद हो आया। मोठे बुआ के अलावा रेशमा की उलझन हल करने की कोई राह नही। रेशमा ने भी यही सोचकर अजित से कहा होगा। अजित जानता है, रेशमा सीधे मोठे बुआ का कोई अहसान नही लेना चाहती होगी।

वह मोठे बुआ के पास जा पहुचा था। बिसन से जाकर सब कुछ कह सुनाया। बोला, 'सोचो तो मोठे, क्या हम लोगों के गली मे रहते वह बेआसरा औरत बेइज्जत होगी ? अगर ऐसा हुआ तो डूब मरना चाहिए !"

मोठे बुआ जबडे कसे हुए खडा था। बोला, "चल, मेरे साथ।" फिर बिसन से कहा था उसने "तू भी आ बिसने !

'किधर बुआ ? मुझे जरा "

'तेरी तो ! ' बुआ ने गरजकर कहा था, "सारा जुगराफिया यही से पूछेगा—चुपचाप आ !' और फिर वह चल पडा। अजित और बिसन पीछे पीछे। सहसा अजित को ध्यान आया था—कहीं कुछ ज्यादा न कर बैठे मोठे बुआ। जल्दी से कान के पास आकर फुसफुसाया था, "मोठे, यार

ऐसा कुछ मत कर डालना कि पुलिस केस बन जाये !''

''अरे पुलिस की तो देगची मे छेद। '' मोठे बडबडाया, ''पुलिस इस देश मे होती तो वह स्साला ऐसा कर सकता ? चल, मरे साथ।''

वे गली से मुडे। अजित न सीना उभार लिया—अब रेशमा भाभी का क्लेश मिट जायगा। कितनी रोयी थी बेचारी !

मोठे बुआ ने कहा, ''यार पडित, एक आवाज तो लगा उस छत्तीसिए को !'

इतने जोर से कहा था कि शायद आवाज भीतर जा पहुची। बरामदे मे ही भरोसे बैठा रहा होगा। उछलकर बाहर आ गया, ''राम राम, दादा ! ''

मोठे बुआ ने जवाब न देकर एक पल उसे अपनी उन नजरो से घूरा, जो उसके आक्रमण की घोषणा हुआ करती थी। भरोसे काप उठा। मोठे बुआ पुन गराजा, ''पडित ! जरा रेशमी भाभी किधर है—विसको भी तो बुला।''

अजित जोर जोर से पुकारने लगा, ''भाभी ! रेशमा भाभी। ''

दरवाजा खटका—रेशमा बाहर आ गयी। पर्दा करके एक ओर खडी हो रही।

मुहल्ले के कई लोग आ जुटे थे। सुरगो, सुनहरी सहोद्रा, वामन पुढरीकर, अनसूयाबाई, यहा तक कि महेश और गली पार के लडके भी एकत्र हो गय। मोठे बुआ की आवाज, गरजन, सभी कुछ जतला रहे थे—कुछ जोरदार मसालेदार घटने वाला है।

''क्यो भाभी—'' मोठे बुआ ने सवाल किया, ''इस कुत्ते ने पत्तल तोडने की कोशिश की है ना ? '

रेशमा यह प्रतीकात्मक भाषा शायद समझ नही सकी। हक्बकायी, घबरायी सी खडी रह गयी। समझ वह भी चुकी थी कि अजित से कहने का प्रताप है सब। यही उम्मीद भी की थी उसने।

अजित ने भनभनाकर कहा, ''तुम भी हद करते हो मोठे, वह सब क्या कोई भली औरत मुह से कहेगी ? लगाओ स्साले म जूते, अभी यही बोल पडेगा।''

मोठे बुआ न एक पल अजित की ओर देखा। लगा कि बात सही ही कही गयी है। भला कोई औरत इस तरह छिछोरी बात जबान पर कैसे लायेगी? लपककर भरोसी को चबूतरे से नीचे खीच लिया। भीड सिटपिटा-कर कापती हुई पीछे और पीछे हटती चली गयी। मोठे बुआ ने एक शब्द भी नही कहा—पहले ही झटके म भरोसी की कमीज चीर डाली, फिर मुह, जबडे, पसलियो पर लगातार मुक्के जडता चला गया। सबके मुह से अरे रे रे निकलने लगी, पर मोठे बुआ नि शब्द था। शब्द थे सिर्फ प्रहार और शेष शब्द भरोसी के, "दादा! दा आ दा! मुझे म्मुझे छोड दो! मैं तुम्हारे हाथ आह्!" भरोसी आखिरी मुक्के पर धरती पर बिछ गया। मोठे बुआ ने अपनी भारी भारी लातें लगातार जमानी शुरू कर दी। दर्शको के रोम खडे हो गये। अजित चिल्लाया, "बस करो, मोठे। बहुत हुआ। इस पाजी को इतना सबक ही बहुत है। बस! अब मइयो को मइया, बहिन को बहिन ही समझा करेगा। झाई उतर गयी स्साले की आखो से—बस!" अजित ने लपककर मोठे बुआ की बाह पकड ली।

भरोसी के मुह से लहू की धार बह पडी थी। शायद मुक्के ने होठ फाड दिया था। वह सिर्फ कराह रहा था रो रहा था और कापता जा रहा था।

अजित ने मोठे बुआ को थामा, तो सारे महल्ले से ही स्त्री पुरुष स्वर उठने लग थे, "छोड दो भइया। बहुत हुआ। मरे ने कोई बदमासी करी होगी। इत्ता ही सबक खूब है! बस, बस, मर जायेगा!"

'कल सबेरे तू इस मुहल्ले मे नही दिखेगा, कुत्ते। "मोठे बुआ गरजा, उसकी सास धौंकनी की तरह चल रही थी, "अगर दिखा तो समझ लेना कि तू इस जहान मे नही है। समझा!' मोठे बुआ गरजा—फिर बोला, "चल अजित!" मुडते मुडते उसे बिसन माथुर का ध्यान हो आया "वह बिसना किधर है?"

इस सारे कोहराम के दौरान बिसन माथुर कब कहा खिसक लिया था—किसी को पता नही।

मोठे बुआ ने सब तरफ खोज लिया। अजित ने कहा, "वह तो यार दिखता नही।'

फिर से जवड कसकर मोठे वुआ वडबडाया, "वह हरामी मौका देख कर निकल गया। पर उसकी तो तीन पुश्तो ने आज पौवा न पिलाया तो कहना! " वह वापस होने को हुआ, फिर जैसे कुछ याद हो आया उसे। रेशमा काप रही थी। मोठे बुआ उसके पास पहुचा बोला, "भाभी, तू मेरी मा जैसी है। अगर कोई हरामी तेरी तरफ आख उठा के देखेगा तो शीतला की कसम, पुतलियो की जगह गडढे बना डालूगा। आराम से रह! " फिर वह झूमता-सा, सबकी ओर लापरवाह नजर घुमाता हुआ वापस लौट गया।

अजित खडा हुआ था। रेशमा उसी तरह स्तब्ध। गली मे नाली के किनारे उकडू टिका हुआ भरोसी एकदम रो पडा था, "क्या समझता है स्साला गुडा। मैं थाने मे जाऊगा, उसकी तो ऐसी की तैसी कर दूगा! अति मूत रखी है साले ने!"

अजित न भुनभुनाकर देखा। दुबला-पतला है, पर लगता है, मोठे बुआ पास खडा है। हर पल उसके हाथ मे चाकू या डडा। अजित का रक्षा-कवच। लपककर गिरहवान जा पकडा भरोसी का, "क्या कहा मखनचू की औलाद! तू मोठे के खिलाफ पुलिस मे जायेगा? कानून छाटेगा हरामी? ले!" अजित ने पागलो की तरह बदहवास होकर एक लात जडी। वह फिर से धरती पर बिछ गया। अजित ने फिर एक लात मारी, "हरामजादे! तू मोठे के खिलाफ कानून बतायेगा हमे? ऐं?'

सहसा औरतें चिल्ला पडी थी, "अरे नहीं-नही लाला! मरने दो मरे को! " वैष्णवी ने तो लपककर अजित के हाथ ही थाम लिये थे, फिर भरोसी पर उखड पडी थी, 'तुझे छुरा ही खाना है क्या? कि तेरी मौत आ गयी है? हरामी, एक तो गलती करता है—ऊपर से मुहल्ले के भले लडको को पुलिस कानून बताता है? " फिर वैष्णवी उसे सम्हालते हुए उसके घर ले आयी थी, "सबर करो लाला! उसे बहुत सबक मिल गया। पर हुआ क्या था?" अतिम शब्द उसने बहुत धीमे और रहस्य पूण स्वर मे पूछे।

"कुछ नही।" कहकर अजित अपनी सीढ़िया चढने लगा।

केशर मा आतकित-सी छज्जे पर मौन बैठी गुन रही थीं। बटनिया, उसकी भाभी, बच्चे सभी आगन की सीढ़िया चढकर केशर मा के छज्जे पर

आ पहुचे थे। वे जब-जब मुहल्ले मे कोई गतिविधि होती थी—इसी तरह दशक भाव से आ खडे होते।

अजित बैठक म आया। केशर मा लपकी हुई आयी, "क्या हुआ था रे? क्या बात थी? किसलिए मारपीट कर रहा था तू और वह मरा मोठे?"

"कुछ खास नही, मा!" कहकर अजित बैठ गया। बटनिया, उसकी भाभी और चन्दन के छोटे छोटे बच्चे भयभीत, आतकित स अजित को देख रहे थे।

केशर मा बडबडाने लगी थी, "अब यही कसर रह गयी थी, सो पूरी कर दी तूने! गली मुहल्ले पीटन पिटाने, गुण्डागर्दी करने को ही बच गया था। इस मरे मोठे की सगत मे वह भी सीख लिया। किसी दिन हवालात म बन्द होगा तो सारे खानदान को कीर्ति लग जायेगी। वाह! पण्डितजी का बेटा हवालात म पडा है—आहा हा!"

अजित झुझलाकर चिल्ला पडा, "तुम समझती तो हो नही। टाय टाय टाय! कभी चैन से भी तो रहो! जीना हराम कर दिया मेरा!"

"क्या कहा? मैंने तेरा जीना हराम कर दिया! अरे, मरे! तेरे मुह मे कीडे पडें! सत्यानाशी! मैंने तेरा जीना हराम कर दिया कि तूने?—" सहसा वे बिफरती हुई, रुआसी हो गयी थी, "देख तो चन्दन की बहू, मरा कह रहा है कि मैंने जीना हराम किया! य औलाद है मेरी! कुल-कलक। न पढेगा लिखेगा, न काम धन्धे की सोचेगा। घर की पूजी कुछ भाई-बन्द खा गये, कुछ ये मुआ बरबाद किये डाल रहा है! मालूम नही किस दोष का दड दिया विधाता ने! देखो तो "

"अम्मा! तुम समझती नही हो। भरोसी बदमाश है। उसने काम ही ऐसा किया था कि उसमे जूते '

"हा हा, वह बदमास है—तू सरीफ है! तेरा वह सरात्री साड दोस्त मोठे सरीफ है! " केशर मा गरजी।

अजित न झुझलाकर माथा पीट लिया, "अब तुमसे क्या कहू? बिना बात समझे तुम्हारे इस कलही स्वभाव न दादाजी की जान ले ली और अब मैं "

"मैंने ? मैंने उनकी जान ली ? ठठरी बधे । आग लगे । "

मामला बिगडता ही जा रहा था । चन्दनसहाय की पत्नी करीब आ गयी । बोली, "तुम तुम उस कमरे मे चलो—लाला । चलो ।" उसने बाह पकड ली । फिर अजित भी उठ खडा हुआ ।

"हा हा, ले जा इसे । चन्दन की बहू, इस कलकी को ले जा । इस मरे का मुह देखने से पाप लगता है । ये औलाद नही, साप है । साप । ' वह जोर जोर से रोने लगी ।

चन्दनसहाय की पत्नी अजित को थामे हुए घर के एकदम कोने वाले कमरे म ले गयी । बोली, "तुम यहा आराम करो लाला । "

केशर मा की बडबडाहट, गालिया यहा तक आ रही थी

"तुम तुम देख रही हो भाभी—कित्ती बुरी-बुरी गालिया दे रही है ?" अजित कुछ दुखी, प्रताडित स्वर म बुदबुदाया था ।

"वह मा ही हैं लाला । उनकी गालिया कौन सी लगन वाली हैं । समझो कि यही उनका असीस है तुम पर । बैठो शान्ति से । " अजित बैठ रहा । वह वापस केशर मा के कमरे की ओर चली गयी ।

भुनभुनाया हुआ अजित, सोच समझ से खाली होकर बैठ रहा । इतनी ऊब, इतनी बेचनी और बबसी ?

केशर मा के कमर से घोषणायें आ रही थी—अक्सर उनके इस तरह बिगडने पर आती थी । यह कुछ भी तो नया नहीं रह गया था अजित के लिए हमेशा, हमेशा कभी मतलब से, कभी बमतलब—इसी तरह उखडती रहती थी वह । शायद चन्दन की पत्नी कुछ समझा-बुझा रही होगी

"नही नही, रहने दे । मर गया वह । समझूगी मैं निपूती हू । बस । पर अब उससे कह दे, इधर शकल न दिखावे । रोटी-पानी कुछ नहीं । मरा किसी कुए मे डूब मरे । ऐसे कपूत के लिए इस घर में कोई जगह नही । जा ।"

अजित जबडे भींच रहा था । जी रोने को हो आता । कभी रोया भी करता था, पर य रोज का क्रम है । न क्यों है क्रम ?

बस, सब कहते हैं, इनका स्वभाव है । पिता के जब से [illegible]

किया करती थीं। बडी बहिन भी तो केशर मा के बारे में यही कुछ कहती हैं, ऐसा ही   यह कलह ही केशर मा का सुख। अजित और और चिढता जाता।

चन्दन की घरवाली, बच्चे और बटनिया आ पहुचे थे, "लाला ! तुम आराम करो।   " फिर वह बटनिया की ओर मुडी थी, "बटनिया, तू लाला का बिस्तर, किताबें ला दे इस कमरे मे। उधर मत जाने देना। बहुत गुस्से म है वह।   'फिर चन्दन की बहू सीढिया उतरकर चली गयी थी। बच्चे भी।

बटनिया वापस केशर मा की तरफ। फिर वह एक एक करके बिस्तर, तकिये, चारपाई ला लाकर अजित के कमरे मे रखने लगी थी। अजित बुत बना बैठा था   दिन डूबन लगा था

बटनिया ने बिस्तरे लगाये, पानी की सुराही ला रखी, फिर सारी किताबें ले आयी

अजित और उसमे कोई बातचीत नही हुई। न बटनिया के शरीर ने उसे मोहा, न उसकी चाल ने न रग ने।

बटनिया ने अन्त मे एक लालटेन जलाकर ला रखी। थोडी देर अजित को देखती रही थी   अजित उसे न देखकर पुस्तक पढने लगा था।

बटनिया चली   जाते जाते कह गयी थी, "कोई चीज तुझे चाहिए तो केशर मा के कमरे मे मत जाना—मुझे बुला लेना।" फिर वह जल्दी जल्दी सीढिया उतरकर गायब हो गयी।

पुस्तक के वर्क पलटते हुए भी अजित का मन नही लगा था   आखिर केशर मा अजित से यह दुर्व्यवहार क्या करती हैं ?   इसलिए न कि अजित कमाता नही है ? इसलिए कि अजित मैट्रिक पास नही कर पा रहा है ? इसलिए कि अजित उनकी झूठी खुशामद नही कर सकता, जिस तरह कि और लोग करते रहते हैं ? अजित की मा को इस खुशामद की आदत है। तब से जब अजित के पिता जीवित थे। बडी बहिन कमला बतलाती है, 'बीस बीस नौकर रहते थे। मा तो बस, पलग पर बैठी हुकम दिया करती थी। जमीदारी का जमाना, बेगारी, सेवक, कारिंदे कितन ही लोग। पटिया की पेटिया फल आया करते। जी होता तो एकाध खाती, नही तो

नौकरो को बटवा देती । सब हा म हा करते ।"

अजित को लगता है, यही कारण है। वह सब बीत गया। जमीदारिया भी चली गयी। उससे पहले ही अजित के पिता को घाटा होने लगा था। दो बसें ले डाली थी उन्होने। कहते हैं कि उन्हे किसीने सलाह दी थी कि कागरेस का राज जरूर आयगा और जब वह आ जायेगा तो ये जमीदारिया, ठाठ-ठप्पे सब इन्द्र की महक की तरह उड जायेंगे। फाको की नौबत आ जायेगी। राजे रईस स्वभाव तो बदल नही पाते। वह इफरात कमान और खराब करने की आदत रहती है। इसी समय कोई धन्धा कर लोगे तो ठीक रहेगा और धन्धा उन्हे बसो का सूझा था। सुझाया था अजित के चचेरे भाइयो और चाचा न ही। कहते हैं, सारी जमा-पूजी उसी मे लगा बैठे। बसें सम्हालने का काम दौड धूप का। अजित के पिता ठहरे *नाजुक मिजाज रईस। मेहनत-मशक्कत नही, दिमाग से कमाया था हमेशा।* होते होते चाचाजा, भाइया और फिर बाद मे मामा ने रहा सहा सत्यानाश कर दिया। बसो ने वह घाटे दिये कि सब चौपट हो गया। जीजी कहती हैं—"घाटा बस न थोडे ही दिया था अजित! घाटा दिया भाई बन्दा ने, अपने ही लहू ने। सब खा-पी गये। अपना घर बनाया, दादाजी को बरबाद कर दिया। नतीजा यह "

और वह नतीजा अजित ने देखा है। धुधली धुधली याद बचपन के ठाठ ठप्पा की है। फिर यह सब तो आखो के आगे ही घट रहा है। कमला जीजी कहती हैं—"अब ये जो कलेसी स्वभाव देख रहा है ना मा का? यह रुपये मे तो चार आने तो पहले से ही था, पर पैसो ने काफी कुछ सम्हाल रखा था अब जो तकलीफो से घिर गयी है—ये मिजाज पूरे सोलह आने हो गया है! बाकी तू गडबड किये डाल रहा है। पढ लिख ले, यह चिन्ता भी उन्हें है।'

अजित मा से हुए हर झगडे पर यह सब सोचता है। उसे तकलीफ भी होती है, पर वह कर्कश स्वभाव, चाटुकारी की आदत, अजित पर अविश्वास सब मिलाकर किसी भी बार अजित के मन मे केशर मा के प्रति सन्तोष नही जनम पाता। वह बिगडती हैं, अजित भी व्यग्र होना चला जाता है

आज भी यही हुआ है

पहल भी होता रहा है, आगे भी शायद होता रहे लगता है, जैस अब इस चिरतन क्रम म अन्तर पडने वाला नहीं। जीजी की भी यही राय है। दो एक बार वह चुकी हैं—"तू क्या समझता है, बुढापे मे आदमी बदलेगा! अब, जब कि स्वभाव जमकर सीमेंट की तरह पुख्ता हो चुका! अब तो टूटने पर ही बदलेंगी केशर मा!"

पर यही तो नही—अजित ने अपन आप पर भी सोचा है। जीजी ने, छोटे बुआ न, कितने ही लोगो न कहा है—"अजित! जानता है ना कि कुछ ही दिनो मे कितना कुछ बदल गया है? सब बदलता ही जा रहा है और तू फिर भी पढ नही रहा। सोच तो, क्या करेगा? कैसे चलेगा आगे?"

अजित चुप हो जाता है। एक पल के लिए चिन्ता काटती है, फिर इस चिन्ता को चाबुक से पीट डालता है वह। बेकार है सब! अजित लेखक बनेगा। वह लिख सकता है।

पर लिखने से रोटी तो नही मिलेगी? मैं लिख लेता हू। कहानिया, उपन्यास लिखता हू। यह कह देने से नौकरी भी नही देगा कोई? अफसर पूछेगा—"वह सब तो ठीक है। कुछ मिडिल मट्रिक किया है तुमने? उसी का सर्टीफिकेट दो।' और अजित का नाइन्थ मे चार साल हो चुके। यह पाचवा साल। इस साल भी इम्तिहान नही दे सकेगा। प्रायवट इम्तहान देना है—यह कहकर अजित ने केशर मा से साठ रुपय ले लिये थे। कहा था, फीस जमा कर रहा हू। ऐक्जाम फीस। फिर उन रुपयो से फिल्मे देखीं, अखबार खरीदे दो उपन्यास ले आया। पैसे खतम। अब करना यह होगा कि इम्तिहान के दिनो म कही से टाइम टेबल पता करके दवात कलम के साथ घर से निकला करेगा उसी तरह लौट भी आया करगा। केशर मा समझेंगी, लडका मैट्रिक कर रहा है।

पर इस सबसे रोटी नौकरी का सपना पूरा कैसे होगा? और केशर मा अजित के उसी सपने से जुडी बैठी हैं।

नही नही, अजित को कुछ सोचना होगा। अजित ने पुस्तक रख दी। इस पुस्तक मे कृश्न चन्दर की कहानियां हैं। अजित को बहुत पसन्द हैं। ऐसी

कहानिया वह लिख सकेगा कभी ?

जरूर लिखेगा ! क्यो नही लिख सकेगा ? कितनी कितनी कहानिया तो घटती रहती है मुहल्ले मे ? इन सबको लिखेगा किसी दिन।

अचानक बुरी तरह चौंक गया था अजित। सुनहरी चीखी थी बहुत जोर से। अजित दौडता हुआ केशर मा के कमरे म जा पहुचा। भूल गया कि यहा आना नही है। पर केशर मा भी सब कुछ भूल चुकी थी। छज्जे पर खडी थी।

पडोस की गैलरी म जोर जोर से छाती पीटती सुनहरी चीख रही थी, 'अरे, मै बरबाद हो गयी ! तबाह हो गयी ! ' वह गैलरी मे इधर से उधर बदहवास दौड दौडकर मुहल्ले वालो से कह रही थी, "सब लुट गया ! सब ! उस मर का नाश हो। उसके हती नातेदार मरें ! बुआ ! अरे ओ माई, सहोद्रा माई ! देख ता कस लूटा है मुझे ! "

उसने गैलरी म सिर पीटना शुरू कर दिया था। कपडे अस्त व्यस्त, पसीने से सराबोर

मुहल्लेवाले क्या हुआ, क्या हुआ कहते हुए एक एक करके उसकी तरफ भागे जा रहे थे। अजित भी छज्जे से गैलरी मे कूद गया सीधा। सुनहरी को माथा पीटने से रोका, "क्या करती हो जीजी ? दिमाग खराब हो गया तुम्हारा ?"

"अरे रे, भइया ! मैं क्या करू ? मैं क्या करू ? अर कोई पुलिस मे जाओ ! उस मेरे नामरद सुकुल को बुलाओ कोई ! हम लुट गय !"

किसी की समझ म कुछ नही आया था। सुनहरी के कमरे म कई लोग आ पहुचे थे। अजित जसे तसे सहारा देकर सुनहरी को कमरे मे ले आया था।

"क्या हुआ ? " सवाल बरस रहे थे।

सुनहरी का माथा लहू से भरा हुआ था। यह सब कुछ इतना आकस्मिक, विचित्र, अनसमझा और घबरा देनेवाला था कि गली पार तक के आदमी मुहल्ले मे आ जुटे।

सुनहरी ने माथा पीटते, धरती पर पसरते हुए अपना मृत सा हाथ अपन सदूक की ओर दिखाया था, 'देखो ! देखो इसमे ! पाच रुपल्ली

नही बची ! वह मरा सब ले गया। उसके पीछे पड़ें ! बाजूबन्द, हसली, करधनी, अगूठिया, घडी कडे रामद तीन हजार हाय हाय ! "
वह धरती पर लेट गयी थी अचेत-सी। बुदबुदाती हुई, "पुलिस को ले आओ भइया कोई जल्दी !"

"पर कौन ले गया ? कैसे ले गया ?" श्रीपालसिंह चीखता-भन्नाता भीड चीरकर आगे आया।

"महसरी ! अरे, वही मुछेडा बनिया मरा ! " सुनहरी बेसुध हो गयी थी।

"इसे पलग पर लिटाओ। पानी वानी डालो ! ' कोई बोला। औरत मर्द मिलकर सुनहरी को लगभग घसीटते हुए पलग पर ले गये। सहोद्रा पानी के छीटे डालने लगी।

सुरगो चिल्लायी थी, 'मरे को बुलाती तो यही थी ! अब ले गया तो यह राड रोना काहे को कर रही है ?"

"और सुकुल कहा है ? " एक आवाज आयी।

' होगा कही भाग गाजे के ठेके पे। और कहा ?"

"चलो कोतवाली। कौन कौन चल रहा है मेरे साथ ?" श्रीपालसिंह ने भीड मे नजरें घुमायी। फिर बोला, 'पोस्टमास्टर साहब, आप आइये, मेरे साथ।"

"कित्ते का माल गया होगा ? "

"यही होगा कोई आठ-दस हजार का। "

' जैसा इसने इकट्ठा किया था, वैसा ही गया ! अब रोती क्यो है ?" काई बोला।

"और जिस महसरी पर दोस लगा रही है, उसी ने तो दिया था बहुत कुछ। निकाल ले गया ब्याज समेत। "

कुछ हसे।

' शर्म आनी चाहिये तुम लोगो को ! बकवास बन्द करो।" किसी ने डपटा।

अजित स्तब्ध खडा देख रहा था। सुनहरी का सब कुछ लुट गया। सब ! वह अगूठी भी जो कभी महेसरी ने ही बनवाकर दी थी। चार

आने भर की। और वे तमाम जेवर भी, जो सुनहरी ने इसी तरह कुछ कुछ लोगों को अपना शरीर बेचकर कमाये थे।

उसे याद आया। एक बार सुनहरी से उसने साफ साफ कह दिया था, "तुम तो बिलकुल ही गिर चुकी हो।"

सुनहरी जवाब मे हस दी थी, "ठीक है। मैं गिर चुकी हू, पर तुम जैसे बिना गिरो स तो नही कह रही कि हाथ उठाकर जरा मुझे उठा देना। तुम बडी-बडी आबरू वाले अपनी तरह रहो, मैं अपनी तरह! मैं जानती हू कि अब इस पेटी के सिवाय मेरा आसरा नहीं है कोई। यही साथ देगी मेरा ये बदन तो गल जाने वाला है रे!"

'छि!' घृणा से अजित चला आया था। बहुत नफरत होती थी सुनहरी से।

और आज सुनहरी का सब लुट गया! वह पेटी खाली पडी है। महेसरी ही लूट ले गया सब। अजित ने एक गहरी सास ली—अपने घर चला आया। ध्यान नही रहा था—केशर मा के पास वाले अपने कमरे मे आ पहुचा था। चुपचाप कुर्सी म धस रहा। सुनहरी के मकान और गली बाहर से अब भी तेज तेज फुसफुसाहटें आ रही थी। केशर मा और चन्दन सहाय की घरवाली वडदत्तो इस नयी तमाशबीनी के लिए बैठक में हाजिर हो चुकी थी और बातें कर रही थी।

"अब नही मिलने का।" चन्दनसहाय की घरवाली कह रही थी, "जैसा बटोर रही थी, वैसा ही गया! अपने आदमी की इज्जत नही की कभी, दो घडी चैन नही दिया। इसी जन्म मे सब देखने को मिल रहा है।"

"सही कहती है बहू। यही सुरग है, यही नरक!" केशर मा वडवडायी थी।

अजित जैसे राख कुछ मे अर्थ खोजने की कोशिश कर रहा था किस गलीज तरीके से सुनहरी पैसे, सोना चादी जोडे जा रही थी, वही सब दुख भी हुआ था उसे। सहसा अजित ने ऊबकर टेबल पर हाथ रखा। कलमदान नीचे जा गिरा। केशर मा एकदम चिल्लायीं, 'इस कमरे मे कौन है?'

"मैं हू।"

"तू इधर कैसे घुसा ? अपने कमरे मे जा ! निकल यहा से ! "

"जाता तो हू ।" कहता हुआ अजित बाहर आया । चिढा हुआ । किस तरह कहती हैं, जैसे कुत्ते को दुत्कार रही हो । अजित हर बार आहत हो उठा है। केशर मा बडबडाने लगी थी, "खबरदार ! जो इधर आया । मेरी किसी चीज से हाथ लगाया ! "

"हा हा, नही लगाऊगा !" अजित भी जवाब देता गया ।

"ऐसा नाकवाला है तो रोटी भी मत खाना इस घर मे—हा !"

'हा, हा, नहीं खाऊगा ।" अजित कोन वाले कमरे म जा पहुचा था । जाकर लेट रहा । मन हुआ घर से भाग जाये, पर अजित कोरी भावुकता म नही पडगा । जानता है—दो दिन नही चल सकगा इस तरह । कहती हैं—उनकी चीज से हाथ मत लगाओ—क्या अजित का हक नही है इस घर पर ? उसने अपने भीतर तक खोजा और निश्चि त हो गया कि सब ठीक है । बीच मे अजित का मन हुआ कि लिखे । कोई कहानी लिखे, पर मूड खराब हो गया ह । नही लिखेगा । आज सिफ सोयेगा । उसने पलकें मूद ली थीं, फिर कब नीद न उसे निगला—पता ही नही ।

"च दन की बहू ! ऐए् च दन की बहू !" केशर मा की आवाज थी ।

अजित ने चौंककर पलकें खोली—लालटेन उसी तरह जल रही है । अ धेरा बढ गया । स नाटा भी । शायद दस ग्यारह बजे होग ।

"क्या है चाची ?" नीचे से आवाज आयी ।

' जरा बटनिया को भेज ।

"अच्छा । ' नीचे से आवाज आयी ।

अजित चारपाई पर उठकर बैठ गया । किसलिए बुलाया है बटनिया को ? पर ज्यादा देर बटनिया के बारे म सोच नही सका—याद हो आया कि भूखा है । एक गिलास पानी भर लिया ।

बटनिया आगनवाली सीढिया स आकर केशर मा के कमरे म पहुच चुकी थी । अजित ने होठो से गिलास लगाया । बटनिया दरवाजे पर आ खडी हुइ । मुस्करा रही थी, फिर धीमे से हसी—एस जसे जलतरग बजी हो ।

"हसती क्या है ?' अजित कुछ चिढ सा उठा।

वह उसी तरह हसते हुए ही बोली, "पानी पी-पीकर पेट भर रहा है ना ?" फिर वह उसके सामने रखे सदूक पर बठ गयी।

अजित ज्यादा ही चिढ गया, "भर रहा हू ता तुझे क्या ?" अजित ने गिलास फिर होठो से लगाया, पर बटनिया ने एकदम थाम लिया—चूडिया झनझनाकर अजित को ज्यादा ही चौंका गयी, "क्या करती है बटनिया ?"

उसन गिलास छीन लिया। कहा, "मैं रोटी लाती हू, फिर पानी पीना। केशर मा कह रही हैं, सबरे भी तूने नही खाया था खाली पेट पानी पियेगा तो तबीयत बिगड जायेगी।"

"तो तुझ क्या और केशर मा को क्या ? मेरी तबीयत—बिगडती है तो बिगडन दो !" अजित भूख और गुस्से के मारे रुआसा हो गया था। उसने गिलास ले लिया, 'लो ! ' फिर गटागट पी गया।

वह देखती ही रह गयी। बोली, "खाना खायेगा क्या ?'

"नही।"

"मैं नीचे से लाती हू ' बटनिया ने कहा "तेरा मन हो तो हा, ऊपर वाला खाना मत खा ! '

अजित का मन हुआ था कह दे—ले आ ! पर नही कहा। ठीक नही होगा। भला कुछ अच्छा लगता है कि अजित बटनिया से खाना मगवाय ? कोई भिखारी है अजित ? जिन पण्डितजी की कृपा पर बटनिया और उसका भाई चन्दनसहाय पनते रहे हैं, उन्ही का बेटा अजित, चन्दनसहाय की कृपा का भोजन करे ? कहा, 'बिलकुल नही। मुझे भूख नही है।"

"सच ?" बटनिया फिर मुसकरायी—एसे जैसे वह अजित के कष्ट का मजा ले रही हो।

"हा !" अजित लेट गया पर अचानक क्या हुआ कि जार स उबकाई ली पलग स उछला और मोरी की तरफ भाग खडा हुआ—सारा पानी उगल दिया। आखो स आसू छलक आय। बटनिया पीछे स उसकी पीठ सहलाने लगी, "कुछ नही—कुछ नही, खाली पट की वजह से हुई है। कोई बात नही।"

और अजित न ओ ओ करते हुए दो-तीन कुल्ले पानी और उगल दिया

बाहर। आसू पलको से उतरकर गालो पर ढुलक आये। बटनिया ने जल्दी से एक लोटा पानी दिया, 'ले, मुह धो।"

केशर मा की आवाज आयी थी पीछे से, "कलेसी है ना! अपना जी खराब किया, मेरा भी!"

अजित बौखलाकर एकदम चिल्लाया था, "तुम जाओ मा! मैं तुमसे बात नही करना चाहता! जाओ!"

"अरे मर! मैं तो तबीयत के मारे भागी आयी और वह गधे जैसा रेंक रहा है। मरना ही है तो मर! फिर वह चली गयी। पता नहीं क्या कुछ बडबडाती हुइ।

बटनिया तौलिया ले आयी थी। अजित ने कुल्ला किया, मुह पोछा। ढीला सा आकर बिस्तर पर लेट गया। अब बटनिया गभीर थी। गई और थोडी देर बाद लौटी। बताशा हाथ म था। अमृतधारा भी। बाली, "एक बूद ले ले। जी हलका हो जायगा।" फिर बताशे में अमृतधारा की बूद गिरायी और एक गिलास पानी दिया। अजित न बताशा खाया, पानी पिया, लेट रहा।

"सिर दबा दू तेरा?" बटनिया ने पूछा।

आखें मूद हुए अजित बोला, "हा, दबा दे।"

वह नम, मुलायम हथेलियो स अजित का सिर दबाने लगी। अजित आखें मूदे लेटा रहा। उधर केशर मा चन्नसहाय की बहू से कह रही थी, "बटनिया सवेरे आयगी। तुम लोग सो जाओ। जरा अजित की तबीयत गडबड है—और वह मुझसे गुस्सा हो गया है।'

"अच्छा-अच्छा!"

फिर केशर मा दोबारा आ पहुची, बोली, "इससे कह द बटनिया, रोटी खा ले। नहीं तो तबीयत बिगड जायेगी ज्यादा। दुष्ट कही का! इत्ता जी दुखाया मेरा।'

अजित एकदम चिल्लाया 'तुम जाओ मा! मैं रोटी बोटी कुछ नहीं खाऊगा।'

पर केशर मा उसके पास ही आ गयीं। बटनिया स बोलीं, "जरा हट तो बटा!" फिर उसकी जगह बैठ गयीं। अजित का माथा दुलराने लगीं,

"खा ले ना !"

"मा ! मैंने कहा ना कि मैं "

"तो नही खायेगा तू ?" केशर मा एकदम बिगडीं।

"हा, नहीं खाऊगा !" अजित ने जोरदार आवाज मे जवाब दिया। भूख नही है !"

"तो खा मेरी सौगध ! कि भख नही है ?"

अजित सिटपिटा गया। केशर मा की झूठी सौगध नही खा सकता। लडती, झगडती कुछ भी करती हो, पर केशर मा ही तो हैं उसकी—और कौन है ? अजित चुप हो गया।

"ला बटनिया, मैं थाली लगाकर देती हू—खिला दे ! " केशर मा बोली—सहसा रो पडी, "मरा न खुद खाने देता है न खाता है। अपना जी भी क्लेस मे डाला, मेरा भी। आ !"

वह बाहर निकल गयी—पीछे पीछे बटनिया। अजित भौचक्का-सा रह गया। मुश्किल यह है कि इन बूढी केशर मा को कभी नही समझ पाता अजित। दिन मे कम से कम दो बार अजित से लड न लें, तब तक इन्हें चैन नही पडता, फिर अक्सर यही सब करती ह।

बटनिया रोटी की थाली लगा लायी थी। थाली अजित के सामने रख कर बोली, "अब लेटी हैं जाकर तू कितना तग करता है अजित। बेचारी कह रही थीं कि पलक नही लगती, अगर तू कुछ बिना खाये पिये सो जाता।"

"हुह, नाटकबाजी है सब ! ' अजित ने खाना शुरू किया।

"तू इसे नाटकबाजी कहता है ?"

"और क्या है यह सब ?" अजित जल्दी जल्दी खाता हुआ बडबडाता जा रहा था।

बटनिया उसे लगातार देखती रही, सहसा उसने एक गहरी सास ली, 'तेरे मा है इसीलिए तू ऐसा कह रहा है न होती तब समझता।"

"क्या समझता ? ' अजित ने उसे देखा। फिर वह कुछ सकपका गया—बटनिया की निगाहें कुछ पनीली हो आयी थी। कह रही थी, "बडी बडी किताबें पढकर भी तू नही समझा कि मा क्या होती है ? '

अजित ने जवाब नही दिया।

बटनिया बाली, "मै जानती हू कि मा क्या हाती है " फिर उसकी आवाज कुछ भारी हो गयी—वह रोने लगी थी शायद।

अजित ने घबराकर उसे देखा, "तुझे क्या हुआ—तू क्या रो रही है ?'

"ऐसे ही मुझे अपनी मा याद हो आयी।' बटनिया आसू पोछने लगी—नाक को जोर से सुढका खींचा।

अजित उसे स्तब्ध देखता रह गया। बटनिया रोती भी है ? हमेशा मुसकरानेवाली बटनिया को पहली बार रोते देखा है अजित ने। सहानुभूति से दिल भर उठा अजित का। कैसी कैसी अजीब बातें है दुनिया मे ! दुख के भी कैसे कैसे चेहरे ! सुनहरी रो रही है कि उसके जेवर चले गये ! रेशमा रोती है कि उसका पातिव्रत्य सकट म है ? जब पति जीवित था इसलिए रोती थी कि शभू उसका पति है ? सहोद्रा रो रही है कि बेटा नही है उसके। चाहिये पर खूबसूरत चाहिए ! सुरगो ने डेढ सौ रुपय जोडे थे पाटोर बदलने के लिए, कम्पाउडर का तबादला दूरदराज हो गया, रो रही है नौ लडकिया के बाद भी बेटे की साध लगाये रो रही है ! और और य बटनिया इस दुख से रो रही है कि उसके मा नही है—केशर मा को देखकर उसे अपनी मा याद हो आयी है। बेचारी !

बटनिया आसू पोछकर अजित के लिए रोटी ले आयी थी। थाली म रोटी रखकर उसके सामन बैठ रही। आखें अब भी सुख।

अजित ने कौर तोडते हुए कहा था, "बटनिया, माए हमेशा थोडे ही बैठी रहती हैं बस, इतना ही अखरता है कि किसी किसी की मौत जल्दी हो जाती है। तू तो जानती ही है कि हमारे दादाजी का कितना कितना इलाज हुआ, पर वह नही बचे। मुझे भी कभी कभी उनकी बहुत याद आती है। बहुत ! और बोलते बोलते अजित को लगा कि उसकी अपनी आवाज भर्रा गयी है। मगर मरदो को रोना नही चाहिये—अजित न अपने को कठोरता से दबा लिया।

पर पर लडकी की मा होना बहुत जरूरी होता है अजित।' बटनिया बोल पडी थी। आसू फिर छलछला आये।

"क्या ?"

"लडकी के मा बाप ना हो तो फिर फिर " बटनिया बोलते-बोलते थम गयी।

"क्या हुआ—बोल ना ?"

"तू रोटी खा। साग लाऊ ?" बटनिया उठने को हुई।

"नही नही। अब कुछ नही चाहिये।" अजित ने कहा, "तू बता ना, कुछ कहने वाली थी ? क्या कह रही थी ?"

"अरे, वह तो यो ही " वह साफ साफ कतरा रही थी। अजित बटनिया और उस जैसी बहुत सी लडकियो को जानता है—वे कुछ भी नही छिपा सकती—जो उनके भीतर होता है।

"तुझे मरी सौगध ! बता ना !" अजित पीछे ही पड गया।

"मैं तो ऐसे ही कह रही थी।" वह बोली। अजित ने पानी पिया। उसका मुह देखने लगा। वह कहे गयी, "मैं कह रही थी कि अगर किसी लडकी की मा हो ना तो वह उसके लिए सब तरह सोचती है उसके ब्याह के वखत, उसके आगे भी सब तरह।"

'तो तेरी क्या उलझन है ?" अजित ने उसे कुरेदती नजरो से देखा। "बोल !"

"अब जैसे मुझे देख—मैं पढ लिख नही पायी, पर मैं मैं बदसूरत तो नही हू अजित।" बटनिया की आवाज एकदम भर्रा गयी और फिर आसू गालो पर लुढक आये—यह क्या हो गया बटनिया को ? आज तो बहुत रोने के मूड म है। अजित ने सोचा, लगा जैसे बटनिया किसी मामले मे बहुत परेशान है। पूछा, "क्या बात है, तू ऐसे क्यो पूछ रही है ? तू तो बहुत सुदर है। तेरी जैसी चाल केशर मा कहती हैं, ऐसी चाल वाली औरत, औरत लगती है कौन स्साला कहता है कि तू बदसूरत है ? किसने कहा—बोल !"

"नही नही, किसी ने कहा नही है, पर पर मैं तो सोच रही हू।"

"तू पागलो-जैसी बातें सोचती है क्या ?"

"नही, मगर मगर आज चन्दन भइया के साथ वह जो जोतिसरूप

अजित ने जवाब नही दिया।

बटनिया बोली, "मैं जानती हू कि मा क्या होती है " फिर उसकी आवाज कुछ भारी हो गयी—वह रोने लगी थी शायद।

अजित ने घबराकर उसे देखा, "तुझे क्या हुआ—तू क्यो रो रही है ?'

"ऐसे ही मुझे अपनी मा याद हो आयी।" बटनिया आसू पोंछने लगी—नाक का जोर से सुढका खीचा।

अजित उसे स्तब्ध देखता रह गया। बटनिया रोती भी है ? हमेशा मुसकरानवाली बटनिया को पहली बार रोते देखा है अजित न। सहानुभूति से न्लि भर उठा अजित का। कैसी-कैसी अजीब बातें है दुनिया मे ! दुग्‍ के भी कसे कैसे चेहरे ! सुनहरी रो रही है कि उसके जेवर चले गये ! रेशमा रोती है कि उसका पातिव्रत्य सकट म है ? जब पति जीवित इसलिए रोती थी कि शभू उसका पति है ? सहोद्रा रो रही है कि नही है उसके। चाहिय पर खूबसूरत चाहिए ! सुरगो न डेढ सौ रुपय थे पाटीर बदलने के लिए, कम्पाउडर का तबादला दूरदराज हो ग रही है नौ लडकिया के बाद भी बटे की साध लगाये रो रही है !

और ये बटनिया इस दुख से रो रही है कि उसके मा नही है मा को देखकर उसे अपनी मा याद हो आयी है। बेचारी !

बटनिया आसू पोछकर अजित के लिए रोटी ले आयी थ रोटी रखकर उसके सामन बैठ रही। आखें अब भी सुख।

अजित ने कौर तोडते हुए कहा था, "बटनिया, माए बैठी रहती हैं बस, इतना ही अखरता है कि किसी किसी हो जाती है। तू तो जानती ही है कि हमारे दादाजी क इलाज हुआ, पर वह नही बचे। मुझे भी कभी कभ आती है। बहुत !" और बोलते बोलते अजित को त आवाज भरा गयी है। मगर मरदा को रोना नही चा को कठोरता स दबा लिया।

'पर पर लडकी की मा होना बहुत जरूर बटनिया बोल पडी थी। आसू फिर छलछला आय।

बटनिया ने सदिग्ध निगाहो से उसे देखा। अजित मुसकरा पडा, "डर मत, मैं बदमाश नही हू।"

बटनिया लजा गयी। पूछा, "अब क्या बात है?"

"कुछ खास नही, पर बात करनी है—बैठ!"

वह उसके सामने सन्दूक पर बैठ रही।

"लडका आया भी था तो तू ऐसा क्यो सोचती है कि सब पक्का ही हो गया है?" अजित ने कहा।

"पर सोच तो—ऐसा लडका मेरे लिए लाये ही क्या?" बटनिया ने सवाल पर सवाल जड दिया। डबडबायी सी आवाज मे कहा, "अगर मेरी मा होती, तो भइया ऐसा करते?"

"पगली है तू! कोई भाई ऐसा करता है?" अजित ने कहा, "वह तो बेचारे बहुत दिन से खोज रहे हैं—इसीलिए लाये होगे पर इसका मतलब यह तो नही कि सब पक्का हो गया!"

बटनिया फिर रो पडी। अजित कुछ कहे इसके पहले ही वह तेजी से सीढियो की ओर बढी—अजित ने पुकारा भी था, "ऐ बटनिया जरा सुन!" पर उसने कुछ नही सुना। चली गयी।

उस दिन पहली बार अजित को लगा कि बटनिया—जिसे वह आगन मे हमेशा मुसकराते, काम करते देखता है—उस तरह लापरवाह नहीं है। वह अपने बारे म सब कुछ जानती है। सुदर है, मादक है, उसमे वे सभी गुण मौजूद हैं जो किसी घर की अच्छी गृहिणी मे होने चाहिये उसने भी एक गणित लगा रखा है—अपने लिए। एक वर की कल्पना है उसकी। अपनी ही तरह। वैसा ही शालीन, खूबसूरत और गोरा भूरा वर

पर चदनसहाय का भी गणित है—न होता तो इस तरह बटनिया के वर का चुनाव करता? उस पल तो अजित ने यही सोचा था कि बटनिया का गणित अगर वर के बारे में कुछ है, तो उससे बहुत अलग चदनसहाय का गणित नहीं होगा—पर अगले कुछ महीनो म ही साबित हो गया था कि चदनसहाय ने कुछ अलग हिसाब जोड रखा है

बाद मे यह भी समझ आया कि ये हिसाब जुडाना ही है। अजित ने पहले ही क्यो न समझा? क्यो न उसे मिन्नी की बात याद आयी। वह कहती थी—

देख रही थी। अजित उसकी आदत जानता है—अब नजर नही मिलायगी।

"कौन जोतिसरूप बाबू ? कौन-सा लडका ?"

"था एक—हरदोई का है। हरदोई है ना—गोडा के पास। वहीं का। मास्टर है स्कूल मे। भइया लडका देख रहे हैं ना मेरे लिए।"

"तो उसने कहा क्या ?" अजित ने पूछा।

"नही, उसने तो नही कहा, पर "

अजित झल्लाकर उठ पडा, "अजब है तू !" हाथ धोय और चारपाई पर लेटता हुआ बोला, "उस लडके ने कहा नही, किसी और न कहा नही—तो तू कैसे बहकन लगी, दुखी होने लगी कि तू बदसूरत है ?"

बटनिया बुरी तरह सिटपिटा गयी। बोली, 'तू मेरी बात समझ ही नही रहा है।'

"खाक समझूगा तेरी बात ! जैसे मटक मटककर चलती है तू, वैसी ही मटकती फटकती बातें करती है ! सीधे सीधे बात कर तो कुछ समझू भी।"

बटनिया को जसे गुस्सा आ गया। कहा, "वह लडका काला है तवे जैसा—मुह पर बडी माता के बडे-बडे दाग, दुबला पतला, तिस पर गजा। मुझसे उमर मे नौ साल बडा है। पहली मर गयी उसकी।'

अजित सकपकाया हुआ बटनिया का चेहरा देखने लगा। वह तमतमा उठी थी "मैं क्या कोई बदसूरत हू, काली हू, कानी हू या लगडी हू—? क्या अवगुन है मुझम ? फिर भी भइया " वह फिर रुआसी हो गयी। थाली उठाकर रसोई की तरफ चली गयी। अजित हतप्रभ बैठा रह गया। लगा जैस बटनिया की तकलीफ सही है। सच ही तो जैसा उसन बतलाया है, अगर वैसा ही लडका ढूढा चन्दनसहाय ने—तो बडा अन्याय होगा बटनिया के साथ। वह पढ़ी लिखी नही है—इसीलिए उसके जीवन मे जहर घोला जायेगा ?

बटनिया आयी। कहा, "अब जाऊ ?'

'केशर मा सो गयी ?"

'हा—खर्राटे ले रही हैं।"

'तो तू बैठ।" अजित बोला।

बटनिया ने सदिग्ध निगाहो से उसे देखा। अजित मुसक्रा पड़ा, "डर मत, मैं बदमाश नही हू।"

बटनिया लजा गयी। पूछा, "अब क्या बात है?"

"कुछ खास नही, पर बात करनी है—बैठ! "

वह उसके सामने सन्दूक पर बैठ रही।

"लडका आया भी था तो तू ऐसा क्यो सोचती है कि सब पक्का ही हो गया है?" अजित ने कहा।

"पर सोच तो—ऐसा लडका मेरे लिए लाये ही क्यो?" बटनिया ने सवाल पर सवाल जड दिया। डबडबायी सी आवाज मे कहा, "अगर मेरी मा होती, तो भइया ऐसा करते?"

"पगली है तू! कोई भाई ऐसा करता है?" अजित ने कहा, "वह तो बेचारे बहुत दिन से खोज रहे हैं—इसीलिए लाये होगे पर इसका मतलब यह तो नही कि सब पक्का हो गया!"

बटनिया फिर रो पडी। अजित कुछ कहे, इसके पहले ही वह तेजी से सीढियो की ओर बढी—अजित ने पुकारा भी था, "ऐ बटनिया जरा सुन!" पर उसने कुछ नही सुना। चली गयी।

उस दिन पहली बार अजित को लगा कि बटनिया—जिसे वह आगन मे हमेशा मुसकराते, काम करते देखता है—उस तरह लापरवाह नही है। वह अपने बारे म सब कुछ जानती है। सुन्दर है, मादक है, उसमे वे सभी गुण मौजूद हैं जो किसी घर की अच्छी गृहिणी मे होने चाहिये उसने भी एक गणित लगा रखा है—अपने लिए। एक वर की कल्पना है उसकी। अपनी ही तरह। वैसा ही शालीन, खूबसूरत और गोरा भूरा वर

पर चन्दनसहाय का भी गणित है—न होता तो इस तरह बटनिया के वर का चुनाव करता? उस पल तो अजित ने यही सोचा था कि बटनिया का गणित अगर वर के बारे में कुछ है, तो उससे बहुत अलग चन्दनसहाय का गणित नही होगा—पर अगले कुछ महीनो मे ही साबित हो गया था कि चन्दनसहाय ने कुछ अलग हिसाब जोड रखा है

बाद मे यह भी समझ आया कि ये हिसाब जुडाना ही है। अजित ने पहले ही क्यो न समझा? क्या न उसे मिन्नी की बात याद आयी। वह कहती थी—

' खूब कह रहे हो ? इस तरह, जैसे आदमी स्थितिया से अलग जो सोचे, उस पर स्थितिया चलती हैं ! हो सकता है कि तुम उतने बडे महापुरुष हो, पर मैं उतनी महान महिला नही हू ! '

और बटनिया शायद दूसरी मिन्नी ही थी केवल बटनिया ही क्या— अपनी-अपनी तरह, कितनी कितनी मिनिया, कितनी कितनी जयाए और ऐसे ही कई और खुद चन्दनसहाय भी उनसे अलग कहा था ?

इस तरह एक हिसाब था चन्दनसहाय का, जो बटनिया का भाई था और बटनिया के लिए वर खोज रहा था

और एक हिसाब था बटनिया का, जो अजित की हमउम्र थी— उसने अपने घर का गणित सोच रखा था

ये गणित ऐसा विषय है, जो हो सकता है कि सवाल के साथ दूसरी ही सख्या पर गलत हो जाये और हो सकता है चार, छह या दस सख्याओ के हिसाब के बाद गडबडी पैदा कर बैठे और पूरा सवाल गलत कर द !

सुरगो की कहानी, सुनहरी की कहानी और वे कई कहानिया—जो अभी गणित म ही थी। कुछ के गणित खत्म हो लिये। सवाल गलत हो गया। पर कुछ के जारी

मिन्नी का गणित जारी था फिर वह भी गलत हो गया था—मगर वह सब बाद की बात। उस समय तो अजित मुड मुडकर जया मौसी पर ही सोचने लगता है।

वह क्या उदित हुई हैं, सारी कहानिया यादो के आसमान पर उग आयी हैं। नजर सितारा पर घूम फिरकर हर बार जया मौसी की कहानी स जुड जाती है।

मिन्नी से ग्वालियर म मिली थीं जया मौसी ! और शाम को उनके यहा जाकर अजित को बहुत सी बातें पता करनी होगी। ऐसी ही बहुत सी बातें।

सौदा जो किया है। अजित उन्हें बतलायेगा कि मिन्नी के साथ हादसा कैसे हुआ? क्यों? तब जया मौसी को भी बतलाना पड़ेगा कि सुरेश जोशी कहाँ है और नैनीताल में उस बच्ची तुली के पास पिता की जगह जो फोटो है, वह सुरेश जोशी की क्यों नहीं है?

अगर मिन्नी चाहती तो शायद उस हादसे से बच सकती थी। केवल मिन्नी ही क्यों? जया मौसी, सहोद्रा, वटनिया, सभी चाहते तो अपने-अपने हादसों—गणित की पहले, तीसरे या चौथे क्रम की भूल में—बच सकते थे।

पर वैसा हुआ नहीं था। सब अपनी अपनी तरह, अपने-अपने गणित के शिकार हुए। कोई पहली बार में ही, कोई आगे चलकर और कोई काफी आगे चलकर। मिन्नी काफी देर बाद अपने गणित में भूली थी। या यों कि भूल सुधार हुआ था। समझ में आया था कि अमुक जगह जोड़, बाकी या भाग देना शेष रह गया—इसीलिए उत्तर गलत।

जया मौसी के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ होगा। सुरेश को लेकर या अलग करके।

कितना कितनों के साथ यही सब नहीं हुआ? सहोद्रा ने बच्चे को लेकर जो कल्पना की थी, उसमें केशर मा ने निर्जीव कैलेंडरों के आकड़े बिठा दिये थे। ये कैलेंडर श्रीपालसिंह के कमरे में टागकर सहोद्रा क्रमश देखती अशोककुमार, कृष्ण-गोपाल, प्रह्लाद, भक्त ध्रुव, विवेकानन्द और जवाहरलाल नेहरू इनमें से किसी एक का चेहरा मिल जाये—

पर उस समय चेहरा मिला सहोद्रा को। एक रात गली में आधी रात के बाद शोर बरपा हुआ था। श्रीपाल का बेटा बदनसिंह कभी क्रोध नहीं करता था। सब कहते थे कि लड़का गौ है। वही गौ अचानक उग्र होकर बाघिन की तरह टूट पड़ी थी सहोद्रा पर।

गली के हर घर से उछलकर चेहरे बाहर आ गये थे।

सहोद्रा गली में खड़ी रो रही थी। सिसकियां भर-भरकर। काला, आबनूसी रामप्रसाद बदनसिंह को जो अंडरवीयर-बनियाइन पहने हुए अपनी देहरी पर खड़ा क्रोध के मारे कांप रहा था और चीख रहा था समझाने में लगा था, "बदना! बेटा, मैं तेरे बाप के बराबर हूँ सहोद्रा

भी कोई तेरी हमउमर नहीं है। सोच-समझकर बात करनी चाहिये। "

"हां—जानता हूं।' बदनसिंह चिल्लाया था, "तुम मेरे बाप के बराबर हो या न हो, पर ये जरूर मेरी मां है। नहीं है तो बन गयी है। पर ऐसी टेम्परेली माएं मुझे नहीं चाहिये! दादा का दिमाग तो बुढ़ापे में खराब हुआ है—क्या कहूं! पर यह तो समझती है सब, फिर भी जान बूझकर '

बदनसिंह की बहू को मुहल्ले में कभी किसी ने जोर से बोलते नहीं देखा था, पर उस दिन वह भी बड़ी विकराल हो उठी थी। बदनसिंह की आवाज जब जब कमजोर पड़ती, तब तब वह उसके पीछे खड़ी होकर चीखने लगती, "रहने दो! रहने दो! तुम नहीं समझोगे, काका! (वह रामप्रसाद को काका ही कहती थी) तुम तो सवेरे से ही दुकान चले जाते हो, लौटे तो रात डेढ़ बजे! तुम्हें क्या पता कि यहां क्या हो रहा है! "

'तू चुप रह!' बदनसिंह ने गरजकर पत्नी को डपटा था, "मैं समझ लूंगा सब! " फिर वह रामप्रसाद की ओर मुड़ा था, "मैंने बहुत धीरज धरा। अब नहीं सहूंगा। कहे देता हूं कि आठ दिन में बोरिया विस्तर नहीं नापा तो '

सहोद्रा सिसकियों के बीच ही चिंघाड़ उठी थी, "क्या करेगा तू? बोल तो—क्या कर लेगा तू?" अचानक वह अपनी ही जगह से मुड़ी थी, फिर आंधी की तरह बदनसिंह की ओर लपकी थी। बीच में आ गया था रामप्रसाद। हक्का बक्का घबराया हुआ अपनी एक आंख से उस पूरे दृश्य को समेटने की चेष्टा कर रहा था। सहोद्रा ने एक झटके में रामप्रसाद की कलाई पकड़कर उसे दूर उछाल दिया था फिर बदनसिंह के एकदम सामने जा पड़ी, 'क्या कर लेगा? कर! कर! करके तो बता!"

बदनसिंह बुरी तरह सिटपिटा गया था, पर धीरज रखकर बोला था, देख काकी तू हट जा मेरे सामने से! हट जा! मेरा गुस्सा खराब है।"

"अरे, ऐसे गुस्सेवाले मैंने बहुत देखे!" सहोद्रा उसी तरह गरजी थी, "हर महीने नाक पर आठ रुपये मारती हूं। फोकट नहीं रहती—समझा! सब रसीदें रखी हैं मेरे पास। '

रामप्रसाद घबराता, कांपता हुआ पत्नी को सम्हालने लगा था, "तू

भी हद कर रही है क्या फायदा इसके मुह लगने से? कोई मकान मालिक है ये? मकान मालिक हैं ठाकुर श्रीपालसिंह। उनसे बात करेंगे—इससे क्या करना?"

"क्या कहा—मैं मकान मालिक नही हू?" बदनसिंह तडपा।

'नही नही, मकान तो इन रडी-बेडनियो का है।" बदनसिंह की पत्नी घूघट फाडकर उसके पीछे से चीखी, "औलाद का मकान थोडे ही होगा, ये जो पाल रखी हैं तुम्हारे बाप ने—मकान मालिक तो वही हुइ। हम पराये।'

पोस्टमास्टर आगे बढ आये थे। वैष्णवी के पति पाडेजी पर रहा नही गया। दो कदम आगे बढकर कहा था "सब्र करो भाई, इस तरह मुहल्ले मे तमाशा दिखाने से फायदा? घर मे बैठकर फैसला कर लो!"

"क्या करें साहब!' बदनसिंह चिल्लाया था, "यह तो सुना था कि बाप माथा ठोकते हैं—बेटा बिगड गया। अब हम किससे कहने जायें—हमारा तो बाप ही बिगड गया!'

अनायास ही दृश्य परिवतन हो गया। एक थैला हाथ मे लिये, सिर पर बालोदार टोपी रखे सरकारी ड्रेस पहने हुए ड्रायवर श्रीपालसिह ने गली मे प्रवेश किया था। अपने घर के सामने देहरी पर भीड पाकर एकदम बड-बडाने लगा था, "क्या बात है? क्या हुआ? किसलिए ये भीड"

और सहोद्रा उसे देखते ही रो पडी थी, "देखो तो श्रीपाल भइया! आज तुम्हारी औलाद ने ही कैसी कसी बातें करके भरी गली आवरू उतार ली है मेरी। "और फिर सहोद्रा ने वह वह बातें सुनायी थी कि सुनने वाले भी हक्के-बक्के हो गये थे। सभी मुह देखने लगे थे—एक दूसरे का। बदन सिंह ने इतना तो नही कहा था, जितना सहोद्रा बतला रही थी और सुन-सुनकर श्रीपालसिह के नथुने फूल रहे थे, क्रोध के मारे वह काप रहा था बदनसिंह की पत्नी सिमटकर घर के भीतर जा घुसी थी। बदनसिंह पिटा हुआ-सा खडा था। बार बार ढीली हो गयी अडरवीयर सम्हालता। बात सिर्फ सहोद्रा के अपमान की नही थी बदनसिंह—श्रीपाल के अपने बेटे—ने उसकी इज्जत दो कौडी की कर दी! अचानक सहोद्रा की सिसकिया दबाता हुआ श्रीपाल चीख पडा था, "क्यो बे हरामी! जोरू के

गुलाम ! तेरी ये हिम्मत ! मरे जीते जी ही मुझ पर थूक रहा है ! मरी जायदाद पर काबिज हो रहा है—कुत्ते !"

"पर दादा, सुनो तो सही !" बदनसिह कापकर गिडगिडाया था, "जरा मेरी भी तो सुन लो—तुम नही जानते इस सहोद्रा बुआ ने क्या क्या कह डाला है तुम्हारी बहू को वह बेचारी "

सारी गली श्रीपालसिह के उठे मशलसवाले हाथ पैरो और लटठ दिमाग को जानती थी। सभी चुप हो गये थे। पाडेजी लाग सम्हालते हुए अपनी देहरी पर ! पोस्टमास्टर साहब कमर मे चले गये—अब खिडकी से बीडी पीते हुए घूर रहे थे। सरकारी बिजली के खम्भे के नीचे दश्य एक फिल्म की तरह चल रहा था अचानक फिर परिवतन हुआ। भीतर से जोर की चीख उठी फिर आवाजें आयी—'हू ऊ-हा हा ! एक एक को जला डालगी ! भसम कर दूगी ! नाश होगा सबका ! हू-हू हा आऽ !"

सब उछल पडे। पाडेजी चिल्लाये—"देवी ! शीतला ! "

सुनहरी वष्णवी, सुरगो, मैनपुरीवाली, अनमूया सभी के चेहरे भय से सफेद हो गये। श्रीपालसिह ने क्रोध छोडा, बदनसिह को धक्का देता हुआ भीतर घर मे घुम गया। वैष्णवी ने चिल्लाकर कहा, "बदना ! खडा क्यो है—जा बहू के पास ! जब देवी आयी हैं तो उनका क्रोध शात कर ! जा जल्दी !"

और अजित को याद है—सारे मुहल्ले ने—बदनसिह श्रीपालसिह, सहोद्रा और रामप्रसाद ने जसे-तसे हाथ पैर जोडकर शात किया था शीतला को। *वह बदनसिह की घर वाली की देह मे आ जाती थी। जब आतीं,* पूरी देह पत्ते की माफिक काप उठती, बाल बिखर जाते, सिर चकरघिनी होकर साय-साय पूरब-पच्छिम घूमने लगता कहते हैं कि उस दिन देवी ने नारियल फोडते ही *बहुत से सवालों के उत्तर दे दिये थे मुहल्लवालों को।* चन्दनसहाय को बतला दिया था कि बटनिया के लिए जो वर इन दिनो सामने आया है—वही योग्य है। सुरगो को उसके पति का ट्रासफर बतलाया था

बैठक मे शीतला मइया आ रही थी। आलथी-पालथी मारकर बैठ गयी थी वह। अजित भी भागा हुआ जा पहुचा था। उनके चारो ओर लोग

एकत्र थे। सरदियो के बावजूद 'शीतला का शरीर' पसीने से नहाया हुआ था। बाल खुले हुए थे। आखें सुर्ख। श्रीपाल, पाडेजी, और-और मुहल्ले वालो की उम्र का अब खयाल नही था बदनसिंह की बहू को। वह औरत, जिसका नख नजर न आता था, आज विकराल रूप से कपडे फेंकती हुई जोर-जोर से सिर हिलाती 'हू अहा हाऽ ' कहती हुई गरजना कर रही थी। बदनसिंह धूप दे रहा था, रामप्रसाद आरती उतार रहा था और श्रीपाल सिंह घुटनो के बल बैठा धरती पर सिर झुकाये, हाथ जोडे बडबडा रहा था, "मइया की जै हो! कोप शात करो देवी! हम तुम्हारे बच्चे हैं। '

देखनेवाले सिहर रहे थे। देवी ने अपना बदन कई जगह से नोच खसोट लिया था। खून छलछला आया था। बडा लोमहर्षक दृश्य था।

सुरगो ने नौवी बेटी को कधे पर उछाला फिर जल्दी से घुटना के बल झुककर प्रणाम किया, 'मइया! जगततारिणी! मेरा कल्याण करो देवी मा!'

"शामलाल का 'टिरासफर' चाहती है ना? कँओ?' देवी हुडुआती हुई पूछती।

"हा, मइया! ये नौ दुर्गाए घर मे ह। इह पार लगाना है देवी।' घिघियाती हुई सुरगो चिल्लायी थी, 'फिर मइया, सही बात तो ये है कि " सुरगो इधर उधर देखने लगी थी—सब ओर मद खडे थे। मुहल्ले के बूढे-बडे जवान और बच्चे।

श्रीपालसिंह चिल्लाया था, "बाहर चलो। भाई आदमी लोग बाहर चलो!"

धकियाकर सब बाहर चले आये। खुद श्रीपालसिंह भी। अजित उत्सुकता और कौतूहलवश अगले कमरे मे धस गया—अधेरा था, इस बैठक से उजाले का दृश्य, सवाद खूब देखे-सुने जा सकते हैं यहा से। कुछ आनन्द भी आ रहा था कुछ डर भी लग रहा था। पर देखना तो होगा ही। केशर मा कहती हैं— बोलने के बजाय देखा कर, आखिर ससार म रहना है, तो उसे समझना तो होगा ही।'

सुरगो ने रहस्य खोल दिया मन का, "मइया! इन बहिना का भाई मिल जाता तो तरे नाम का दिया जलाती, तीरथ जाती, गगा नहाती।

पाच बाम्हन खिलाती।"

"अरे मूरख! अभी क्या आसा टूट गयी है? तेरे पुत्र होगा। जरूल जरूल से होगा!"

सुरगो खुशी से भरकर रो ही पडी।

अचानक बदना की बहू—यानी शीतला मइया—एक बार फिर गुगुआकर 'हू हा हू हुप्ऽऽ' कर उठी, फिर उसने कौंधती निगाहें सभी स्त्रियो पर दौडाइ। चीखकर कहा, "यहा कौन पापिन घुस आई है? कौन?" वह कापती हुई जोर जोर से उछलने-कूदने लगी। बाल ज्यादा बिखर गये।

महिलाए त्राहिमाम् करती भयभीत होकर धरती पर लोट-सी गयीं। सबके हाथ जुडे हुए थे।

'कौन? जल्दी बोलो! कौन है जिसने राखी का बधन झूठा कर दिया! कौन है वह अपवित्तर आत्मा! वह निकल जाये—कमरे से। जल्दी! मैं भसम कर दूगी! आग लगा दूगी तुम सबमे।"

सहोद्रा एकदम से रोती हुई अगले कमरे मे भाग गयी।

देवी उसी तरह हुकारती हुई बोली, "जाने से पहले अब मैं एक बहुत जरूरी बात बतला जाती हू तुम सबको! सुनो, अगर वैसा नही किया तो समझना कि सबका नाश होगा! सब मिट जायेगा। बाल-बच्चे सकट मे आ जायेंगे!"

"बोलो—बोलो मा! बोल मइया—हुकम कर!' सभी स्त्रिया एक साथ चिल्लायी, और बदना की बहू ने हुकारते हुए आदेश दिया, "स से जिसका नाम शुरू होता है और जा इसी घर मे रहती है—उसे मुहल्ले से निकाल बाहर करो नही तो बडा अनरथ हागा। बडा अधरम। और फिर मइया जोर स उछली—धरती पर एकदम गिरी—बहोश हो गयी।

'स' से—सहोद्रा! यही घर—! एकसाथ कई स्त्रिया न बडबडा कर कहा, "अरे निकालो पापिन को। अब कुछ झूठ हुआ क्या? मइया का हुकम! सब मुहल्ला डूब जायगा"

"हा-हा, बाई। सभी बाल बच्चेवाली हैं। सहोद्रा से साफ साफ कह दो!"

और अजित ने यह दृश्य भी देखा है—उसी तरह रात फिर गभीर मीटिंग की थी मुहल्ले वालो ने। श्रीपालसिंह को हुकम सुनाया था, "सहोद्रा को कल से छुट्टी दो।"

और न श्रीपाल ही कुछ कह सका था, न रामप्रसाद और न सहोद्रा। अगले दिन शाम तक सहोद्रा गली के ठीक सामनेवाली गली म एक कमरा देख आयी थी। किराया—दस रुपये।

वे कलन्डर श्रीपालसिंह के कमरे मे ही टगे रह गये। अब श्रीपालसिंह चुपचाप बैठक मे खाना खाता रहता है कैलेन्डरो की ओर देखता रहता

शायद सहोद्रा भी याद करती होगी व कैलेन्डर सब गणित बिगड गया था। गणित बैठा लिया था बदनसिंह की बहू ने। अजित को याद है—चन्दनसहाय की घरवाली न केशर मा से कहा था, "कमाल की औरत है ये बदना की लुगाई। देखो तो किस तरकीब से सहोद्रा का फद काटा।"

"अरे नहीं नही।" केशर मा बडबडायी थी, "देवी खुद बोली—बदना की लुगाई क्या करती? तू तो चन्दन की बहू, कभी कभी बडी ऍडी-बेंडी बातें करती है।"

"अरे तुम कुछ नही जानती, चाची। सब योजना बनाके नाइ किया था बदना की औरत ने।"

"और न किया होगा तो तू कैसे कह सकती है?" केशर मा ने सवाल किया था।

"बटनिया के भइया से साच्छात् बात हुई थी—बदनसिंह की। बोला था, 'भइयाजी, अगर य दाव न होता तो वह राड हमे तबाह बरबाद करके निकलती।' चन्दनसहाय की घरवाली ने कहा था।"

"तो समझ ले, अगर देवी के नाम पर बदना की बहू ने दुश्मनी निकाली तो उसका भी भला न होगा देवी देवताओ को किसलिए लाते हैं बीच मे। मरे पापी।"

बहरहाल गली स पार हो गयी थी सहोद्रा। अब सिर्फ उसके चर्चे थे। यदाकदा बाजार मे मिलती थी अजित को। मुस्कराती पर बात न होती। कभी कभार गली मे आती तो सुरगा या वैष्णवी से बातें कर जाती। केशर मा के पैर छू जाया करती। सामने पडती तो सब मुसकराकर मिलत,

रामप्रसाद का हाल पूछते और दुकान के भविष्य की जानकारी करते। जवाब म सहोद्रा भी उनसे इसी तरह की बातें करती। निश्चित, शान्त भाव से वदनसिंह आफिस जाता। ड्रायवर श्रीपालसिंह एक दिन फूलो से लदा हुआ गली मे लौटा। सबने उसे देखा। वह मुसकरा रहा था और खुश था। उसके पीछे पीछे उसके कई साथी, कई ड्रायवर, कण्डक्टर थे। सब खुश। एक ड्रायवर थले मे काफी कुछ सामान लिये हुए था। फिर छत पर बैठकर सारे ड्रायवर कण्डक्टरो ने दारू पी। आधी रात तक 'हो हो हा हा' की—विदा हुए।

उसी दिन गली को खबर हो गयी। पूरे तैंतीस साल रोडवेज की सेवा करके श्रीपालसिंह रिटायर हो गया है। पेंशन मिलेगी उसे। घर मे किरायेदार थे बेटा कमा रहा था। दो नाती, एक नातिन हो चुकी थी। वदन सिंह की पत्नी को एक बार देवी आयी थी। बहुत हुल्लड हुआ। उसने भी बहुत से रहस्य बतलाये, जब गयी तो श्रीपाल को सूचना दे गयी थी—"अपनी भानजी को ज्यादा घर मे मत घुसाओ, उसका पैर शुभ नही है।" कहते हैं कि श्रीपालसिंह भानजी को बहुत प्यार करता था। उसकी शादी की थी। हमेशा खच करता था। धीरे धीरे देवी के आदेश से ये खच भी टल गया।

पर श्रीपाल का दारू पीना नही टला। उसी तरह हर रोज पीता—कैलेण्डर देखना। कभी कभी घण्टो चुपचाप बैठा रहता शान्त। श्रीपाल सिंह के उजड्ड दिमाग मे अचानक ही सरस्वती की गभीरता और शान्ति आ बैठी थी।

सब कहते—बढ़िया जिन्दगी रही। और क्या चाहिए आदमी को? खूब कमाया, खूब खाया, खूब उडाया और खूब जमाया! श्रीपालसिंह सत्यनारायण की कथा भी करता।

अजित से कभी कभी बात होती और समझाता, "अजित, पण्डितजी महाराज की बडी इज्जत थी। अब वह इज्जत तुम्हें ही लौटा लानी है भइया! और इज्जत होती है चार पैसा से!"

अजित उसे आदर देता था। चुपचाप उसकी बात सुनता। श्रीपाल खुश हो जाता। फिर दब मुदे शब्दों म बतला देता, 'पसे के बिना कुछ भी

काम नही आता, अजित ! अब मुझे ही लो, अगर चाबी न दबाये रहता तो य स्साला बदना और उसकी बहू मुझे रोटी दते ? अरे, ये तो मुझे टुकड़े-टुकड़े के लिए तरसा देते !" सही भी था। यह समथन किसी-न किसी रूप म सभी ने किया था।

अजित का जी होता—बतला दे—"यह महज तुम्हारा खयाल है, ठाकुर काका ! पैसे से कभी-कभी लोग जान के गाहक भी बन जाते हैं। प्यार, दोस्ती, सब कुछ झूठा ही मिलन लगता है !" पर नही कहता। अभी वह खुद भी तो इस नतीजे पर कहा पहुच सका था ?

पर पैसे से हमेशा ही चिढ रही अजित को। पसे से या अजित से ही पसे को हमेशा चिढ रही ?

किसको, किससे चिढ—यह अजित आज तक तय नही कर पाया। एक बार कहीं पढ लिया था—'जहा सरस्वती का वास होगा, लक्ष्मी नही आयगी ! सदा ही रूठी रहेगी ! आयगी तो थमेगी नही। दोना बहनें हैं, पर शत्रु हैं।'

तब क्या इसीलिए पण्डितजी यानी अजित के पिता के पास लक्ष्मी नही रुकी ? और क्या इसीलिए अजित भी केशर मा के सदूक से नकद रुपये और जेवर चुराकर बेच देने के बावजूद नगा रहता है ? जब देखो, तब कडका ! किसी पल निश्चिन्त नही।

किसी से यह भी सुना है अजित ने—लक्ष्मी क्लेश की जड है ! रहगी तो अशाति, अविवेक और चिन्ता ही रहगी। शक्ति नही।

और सरस्वती की उपस्थिति ही अजित का साध्य, लक्ष्य और कामना इसी कामना, लक्ष्य ने तो अजित को चिन्ता मे निश्चिन्तता सिखायी है। यही भाव उसे लेखक बनायगा।

उसे लक्ष्मी स विरक्ति, अरुचि या उपेक्षा नही है—केवल सरस्वती के प्रति कामना साधना है। अगर कामना साधना से चिढकर लक्ष्मी जाती है तो जाये ! तब अजित चिन्ता नही करेगा।

पर अजित के चिन्ता न करन से कुछ भी नही बनता बिगडता। कितनो को तो चिन्ता है लक्ष्मी की और उसस भी पहले अजित की। रिश्तेदार, बहन-बहनोई, मुहल्ले पडोसवाले, तथाकथित शुभचिन्तक सब अजित

व्यवहार ! आखिर इस हालत म कैसे पैदा हुए होंगे प्रेमचन्द, शरत् और जैनेन्द्र ? यहा वहा गोष्ठिया मे मूक भाव से सुनता है लोगो की बातें। कहते है, सबके साथ यही हुआ है। फिर ये देश तो बहुत बडा। एक-एक प्रान्त, एक एक इगलड !

सन्तोष से काम लेना होगा, मगर केशर मा को सन्तोष नही है। सन्तोष होता तो उस तरह निमम होकर अजित का लिखा जला डाला होता उन्हाने ! रिश्तेदार आकर यह कह गये होते कि मूख है ! मुहल्ले आस पडोस मे अजित का लेकर केशर मा के दुर्भाग्य पर आठ-आठ आसू रोया जाता ?

अक्सर अजित को घर से बाहर ही रहना होता है। रिश्तेदारो से अलग, सहानुभूति दिखानेवालो से भयभीत और केशर मा से परे पर हमेशा तो रहा नही जा सकता ? आखिर कितनी देर मिन्नी के यहा रहेगा ? कितनी देर चन्दनसहाय के घर मे ?

कागज, कलम, सोने की जगह और खाना सभी कुछ तो घर मे है। और घर मे इसके साथ प्रतिपल निराशा भरे शब्द जुडे हैं, निरतर यह अहसास जुडा है कि अजित नाकारा और अयोग्य ही नही—आवारा, मूख और असभ्य है !

मन तो होता है कि मिन्नी के यहा भी न जाये—पर जाना पडता है। उसके अपने साथ जो भी हो, पर अजित को वह अपनी ही तरह सहारा देती है। चिढकर भी उससे बातें करने को जी चाहता है। उससे जुडकर अजित अगर उसकी तकलीफ को लेकर उस पर झुझलाता है तो एकमात्र वही है, जो अजित की तकलीफ को सहलाती भी है।

पर डर लगता है उससे। कई कई बार महसूस होता है जैसे वह अजित के प्रति जो कुछ कहती है—झूठ है। सच केवल मिन्नी का अपने साथ किया जाने वाला निष्ठुर व्यवहार है। ऐसा न हो तो भला मिन्नी वह सब क्यो करे, करती ही जाये जो अजित की नजर मे बुरा है ? गलत ?

मगर सही गलत का भेद कर पाना क्या अजित को आ गया है ?

हा, आ ही गया है। न आया होता तो क्या वह यह समझ नही पाता कि जिस तरह मिन्नी ने डा० गावित की 'कृपा मे' बी० ए० किया है वह

घिनौना है ?

पर मिन्नी बोली थी, "तुम्हारी मा तुमसे नाराज हैं। सब कहते हैं कि तुम गलत हो—पर मुझे तो लगता है कि तुम ही ठीक हो। तब तुम यह कैसे कह सकते हो कि मैं गलत हू ? क्या तुम्हारे गलत कहने से ही मैं गलत हो जाऊगी ?"

और अजित चुप हो गया था। बात उठी थी—स्कूल इन्स्पेक्टर सक्सेना के साथ फिल्म देखने पर। अजित को मोठे बुआ ने बतलाया था कि मिन्नी को उसने सक्सेना साहब के साथ सिनेमा मे देखा था। और अवसर पाते ही फिर से उलझ गया था अजित। उस दिन केशर मा से ढेर ढेर धिक्कार सुनकर उखडे मन से मिन्नी के यहा जा पहुचा था। वह जसे ही सामने आयी थी, लगा था कि सक्सेना के साथ सकिन्ड शो देख रही है एकदम पूछ लिया था, 'तुम इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स के साथ सैकिन्ड शो देखने गयी थी ?"

और मिन्नी ने लापरवाही से जवाब दिया था, "हा।'

"तुम्हे मालूम है ना कि वह किस कदर बदनाम आदमी है ?' अजित चिढकर बोला था, मिन्नी ! कभी कभी मुझे विश्वास नही होता कि तुम वही मिन्नी हो।'

जोर से हस पडी थी वह, "और और मुझे भी कभी कभी विश्वास नही होता कि तुम वही अजित हो जो पढने म बहुत तज थे। कुन्दन से झूठ बोलने के लिए दी गयी रिश्वत एक झटके मे फेंक आये थे ।

"क्यो, अब क्या हो गया मुझे ?" कौंधकर अजित ने पूछा।

"पूछो कि क्या नही हुआ।' मिन्नी उसी तरह सहज ढग से उत्तर दिय गयी थी, ' नाइन्थ तुम पास नही कर सके पल पल तुम झूठ बोलने लगे। बोलो—क्या तुम ही वह अजित हो ?'

"इस तरह मुझ पर बात पलटकर तुम बच नही सकतीं। यह मेरी बात का जवाब नही है"

"जवाब है। जरा गहरे उतरना सीखो। मैं कहना चाहती हू कि सब कुछ हालातो से होता है। तुम नाइन्थ क्या पास नही कर सके हो—इसका कारण तुम्हें ही मालूम है। क्या नही करना चाहते हो यह भी तुम ही

जानते होग। रही झूठ की बात, सो उसके बार मे कह सकती हू कि तुम्हारी दिक्कतें, स्थितिया, लाचारिया एसी होगी कि तुम झूठे बनो!'

अजित स्तब्ध। ये तो कभी-कभी फलसफा ही झाडती है?

मिन्नी ने कहा, "असल मे अजित, हर झूठ के पीछे भी उसका एक सच होता है। उस सच को समझे बिना—कोई दूसरा आदमी तुम्हारे झूठ का निर्णय करे तो बहुत सतही हो जायगा।"

"यानी सक्सेना के साथ सिनेमा देखने के पीछे का सच मैं जानता नही हू। इसीलिए कह रहा हू—यही कहना चाहती हो ना तुम?"

"हो सकता है कि तुम जानते हो?"

"हो नही सकता—मैं जानता ही हू।" अजित बौखलाया था, "क्या य सच नही है कि गोविल की कृपा से तुमने डिग्री ले ली है और अब सक्सेना की कृपा से टीचरी के चक्कर मे हो?"

हस पडी थी मिन्नी, 'हो सकता है कि सच सिर्फ यही न हो"

"तो और क्या है?"

"बहुत कुछ हो सकता है।" वह आराम से लेट गयी। अपने सीने के उभार उसने लापरवाही से अजित के सामने उभरने दिये। कहा, "तुम भी कहा के चक्कर मे पड जात हो। तुम्हारी अपनी उलझनें क्या कम हैं?"

"मिन्नी! मैं मैं कहता हू, तुम कुछ भूखी नही मर रही हो!" दात किटकिटाने लगा था अजित। फिर लगा—व्यर्थ ही। मिन्नी से क्या लेना देना है उसका! अगर मिन्नी कह दे—'तुम होते कौन हो'—तब क्या कहेगा वह? पर कह तो गया ही है वह

मगर मिन्नी ने वैसा कुछ नही कहा था—बिना उत्तेजित हुए बोली थी, "और क्या पहले हम भूखे मर रहे थे? तब, जब कुन्दन को ब्लाउजो के नाप दिये जात थे? या जब मौसी सुरेश जोशी के साथ भागी थी भूखे तो तब भी नही मर रहे थे अजित! और, पेट उस समय भी नहीं भरा हुआ था। बहरहाल! हम लोग बिना बहस किये हुए भी दोस्त रह सकते हैं—क्या खयाल है?"

अजित उठ पडा था। तमतमाया चेहरा।

वह उसे फिर छेडने लगी थी, "बैठो ना!"

"नही—जाऊगा।" वह सीढिया तक पहुचा था।

मिन्नी पीछे उठ आयी। सीढियो के करीब आकर पूछा था, "सुनो!"

वह थमा।

मिन्नी ने मुस्कराते हुए पूछा, "बतलाओगे नही—हाल मे कहा से कहानी लौटी?"

'ओ यू शटअप! " वह उतर गया। मिन्नी की हसी उसने आखिरी सीढी तक सुनी। बुरी तरह ऊबता हुआ चला आया।

फिर वही गली, घर और केशर मा

चबूतरे के फौरन बाद हैं सीढिया। इन सीढियो को चढकर ही अजित घर म पहुचता है।

अजित सीढिया तक पहुचा, पर हट जाना पडा। ऊपर से भगौनी उठाये बटनिया चली आ रही थी। जब करीब आयी तो अजित ने भगौनी पर निगाह डाली। बुरी तरह परेशान हो उठा। एकदम चौखकर पूछा, 'ये ये किसने किया है सब?"

बटनिया डर गयी थी।

'बोल ना?' अजित चिल्लाया।

"माजी ने।" वह बोली, फिर आगे बढ गयी।

अजित का दिल हुआ, माथा नोच ले—उफ! उसकी सास जोरो से चलने लगी। उस तरफ लपका, जिधर भगौनी लेकर बटनिया गयी थी। बटनिया न भगौनी घूरे पर उलट दी। अजित रुआसा-सा घूरे से कहानियो के बचे खुचे लिखे पेज बटोरने लगा सब अधजले—कुछेक अकडकर रह गये हैं—अक्षरा के घुधले से अवस काल पन्नो पर। बाकी कुछ नही।

बटनिया खडी हुई थी। अजित को अजब सी बेबस नजरो स देखती हुई। अजित रो पडा था, ये ये किया उन्हाने? वह मेरी जान लेन पर क्या उतारू हैं? लगभग कराहता हुआ वह सीढिया चढ गया था। ऊपर पहुचा। केशर मा कमर म बैठी तम्बाकू रगड रही थी। अजित को देखा, फिर चुपचाप तम्बाकू रगडने लगी।

अजित दात भीचता हुआ चिल्लाया, "वह सब तुमन जलाया है मा?"

'हा।" केशर मा जैसे सन्तुष्ट आवाज मे बोली।

"क्या ?" अजित और चीखा—आवाज भर्रा गयी। वटनिया ने भगौनी दरवाजे के बाहर ला रखी। सहमी-सी खडी रही।

"इसलिए कि मेरे यहा रद्दी-कचरा रखने की जगह नही है।"

"तुम्हें य ये कहानी रद्दी-कचरा लगती हैं! तुम अपढ हो, गवार! "

"तुझ जैसे समझदार को तो जनम दे दिया है इस अपढ गवार ने!" केशर मा न बडे शात स्वर मे उत्तर दिया—वह असामान्य रूप से निश्चिन्त और लापरवाह नजर आ रही थी, जैसे अजित के पढे लिखे को जलाकर उन्हे बहुत सन्तोष और शान्ति मिली हो।

"आह! अब मैं इस नरक में एक पल भी नही रहूगा। यह घर ही छोड दूगा। तुम जसे जल्लाद के साथ रहने का कोई मतलब नही। तुम कागज जलाते हो? विद्या? सरस्वती? पागल हो तुम! तुमने मरी सारी मेहनत पर पानी फेर दिया! मुझे ही जला डाला तुमने! "

वह भडकता-बहकता ही चला गया था।

केशर मा ने उत्तर नही दिया। अजित पैर पटकता, लगभग रुआसा होता हुआ कोनेवाले कमरे मे जा बैठा। देर तक बैठा रहा कभी मन होता कि रोये कभी दिल करता—अपने बाल नोच ले! किस कदर तमाशा बनाया गया है उसे!

नही नही, अब इस घर में रहना नही हो सकेगा। किसी भी तरह नही। किसी कीमत पर नही। अपमान, अवहेलना, तिरस्कार की कोई सीमा है। ठीक कहते हैं लोग। ब्राह्मण के घर जनमने भर से सस्कार मिलता है क्या? सस्कार मिला होता तो लेखन, पुस्तक और पाडुलिपि का यह अपमान होता है? छि छि!

पर जायेगा कहा? अजित को मालूम है कि हर कदम पर पैसा लगता है। ये पैसा ही है जो आदमी को तीर्थ करवाता है, पुण्य दिलाता है, सुख सन्तोष देता है। और अजित ने तो सदा लक्ष्मी को अकिंचन ही समझा। अब कोई साधन नही। अगर लक्ष्मी को महत्त्व देता तो इस तरह उसका लिखा जलाया जाता? इस तरह उसे वटनिया के सामने मजाक बनाया

गया होता ? मिनी वह सब कहती, जो कहती है ! हमउमर होकर भी अजित को उपदेश दे लेती है ! जतला देती है कि अजित ही कुछ नहीं समझता !

सबकी जड यह धन !

और धन के विना अजित से अजित ही बेमतलब !

मगर अजित ने हमेशा ही राह निकाली है। इस बार भी निकालेगा। एक बार केशर मा को एसा सवक देना होगा कि वह अजित को भले ही कुछ कह लें—उसकी मेहनत भावना और साधना से यह मजाक न करें ! केशर मा के अलावा अजित को किसी साले की कोई परवाह नहीं। बस, उसे केशर मा को ही सभालना होगा। पर किस तरह सभलेंगी ? कसे अजित का महत्त्व समझेंगी ? अजित कितनी ही बार समझा चुका है, "तुम नहीं जानती मा, यह लिखना कितनी बडी बात है ! इसके सामने सब व्यथ ! शांति, कीर्ति और सुख सभी कुछ मिल जाता है इससे।'

तम्बाकू फाककर केशर मा ने उत्तर दिया था, "रहने दे—रहने दे ! खूब जानती हू। य जो तूने कागज काले कर रखे हैं, इनसे रोटी खा लेगा तू ? वैंगन भी चार आन सेर आता है और य कागज चार पैसे म भी नहीं बिकेंगे ? कमला की तीन बेटिया हैं—चार बटे। इनका भात दे लेगा तू ? य रद्दी लेकर पहुचेगा बहन के दरवाजे ? मैं बीमार हुई तो दवा खरीद लायेगा इससे—एँ ? अभागे, मूखता छोड ! अब भी कुछ नहीं बिगडा।"

और अजित माथा पीटकर उठ आया था उनके सामने से, "क्या कहू तुमसे ! इस खानदान म तो जैसे लिखन-पढने से कोई सरोकार ही नहीं रहा है। भूल से एक दादाजी पढ़नेवाले पैदा हुए थे, सो तुम लोगों ने क्लेश कर करके मार डाला !"

और फिर केशर मा की गालिया शुरू हो गयी थीं

इस तरह अजित समझ चुका था—बेकार है कोशिश। उन्हें नहीं समझाया जा सकेगा।

समझाने का एक ही तरीका। अजित का कुछ दिन बटे का विछोह देना पड़ेगा उन्हें। तब मालूम होगा कि अजित का क्या महत्त्व है। बेशर्मों की

तरह बार बार घर आ जाता है तो समझती है कि मूख है। स्वाभिमान-हीन।

केशर मा ने घर मे बिजली फिटिंग करवा ली है। शाम के साथ ही मुहल्ले के गिने चुन घरो मे सबसे ज्यादा चमक उठता है ये घर। अजित एक टेबल लैम्प ले आया है अक्सर इसे जलाकर कहानी लिखता है। अच्छा लगता है।

पर अजित का मन नही हुआ था कि रोशनी करे। ऊबता हुआ अधेरे मे ही बैठा रहा अलमारी मे पुस्तको के पीछे एक सिगरेट की डिब्बी छिपा रखता था। जब पैसे होते, सिगरेट लाता। पैसे कम पड जाते—बीडी। इसी तरह धुआ उगलने से शान्ति मिलती है।

धुधलका हो गया था। अजित उठता है, बीडी निकालेगा। रसोई मे है केशर मा। उधर से माचिस नही लायी जा सकेगी पर याद आता है—बटनिया भी तो है उधर। उसी से कहेगा। अजित बाहर निकल आया। बटनिया भगौना साफ कर रही थी। अजित उसके पास पहुचा। हौले से फुसफुसाया, "बटनिया, रसोई मे से धीरे से माचिस तो निकाल ला।"

"क्यो, बीडी पियेगा ?" वह मुसकरायी।

"शिश क्या बकती है ? धीरे "

"लाती हू। तू अपने कमरे में जा।" बटनिया ने फुसफुसाकर कहा।

अजित कमर की ओर मुडा। अभी दो कदम ही चल पाया होगा कि गली के शोर से चौंक गया कुछ अजब-अजब बदहवास आवाजें आ रही थी। कोई अजित के आगन मे आकर जोर जोर से पुकारने लगा था, "अरे चदन बाबू ! मुशीजी !"

बटनिया छज्जे पर गयी—पीछे अजित।

"वह तो नही हैं। सब गाव गय हैं, भौजी, भइया मैं यहा हू—" बटनिया बडबडायी। अजित पीछे।

नीचे पोस्टमास्टर साहब हडबडाये से खडे थे। बोले, "खैर, कोई बात नही। अजित ! तुम आओ—नीचे !"

"क्या बात है बाबूजी ?"

"आओ तो सही ! सीधे ड्रायवर साहब के यहा आओ।" पोस्टमास्टर

जिस घबराहट मे बोल रहे थे, कुछ उसी तरह वापस हो गये।

अजित नीचे की ओर लपका। यह मुहल्ला भी खूब है! रोज कुछ-न कुछ कोई न कोई हगामा! हर दिन आदमी कुछ न कुछ शगल करता है।

पर आज शगल आदमी का किया हुआ नहीं—भगवान का।

ड्रायवर श्रीपालसिंह के यहा भीड लगी थी। सारा मुहल्ला एकत्र। कारण—श्रीपाल को लकवा मार गया। अच्छा भला शाम को छत पर लेटा पतग देख रहा था कि अचानक ही दायी ओर का अग रह गया। मुह टेढा। पोता—बदर्नसिंह का बेटा—पानी लेकर गया था, पर जब बाबा का बुरा हाल देखा तो चीखते हुए नीचे आकर खबर दी। बदर्नसिंह है नही। पाडेजी, पोस्टमास्टर, मोठे बुआ विचार कर रहे हैं कि क्या किया जाये। सबकी राय एक—सीधे अस्पताल ले जाओ!

कुछ बोले, "डाक्टरी इलाज इसम कारगर नही होता! सब देशी चलता है!"

मोठे बुआ ने चिंघाडकर कहा, "बकवास है सब! क्या नही होता कारगर? यह जो सरकार ने बडे बडे अस्पताल और हाथी खच डाक्टर पाल रखे है—क्या बेमतलब है? नेहरूजी पागल हुए हैं क्या, जो यह सब करेंगे?'

अत म अस्पताल ले जाना ही तय पाया गया।

अजित अजब घबरायी-सी नजरो से श्रीपालसिंह को देख रहा था। बदर्नसिंह की घरवाली यानी बहू चीख चीखकर रोती हुई सारे मुहल्ले को सिर पर उठाये थी। मोठे बुआ तागा लेने गये। पाडेजी बदर्नसिंह को फोन करने चल पडे। वैसे, क्या मालूम बदर्नसिंह आफिस से चल ही पडा हो और रास्ते म हो।

अजित ने देखा—श्रीपाल, मोटा-ताजा, इठे मशलस का आदमी चार पाई पर बाया होठ टढा किय हुए अजब-से ढग से सब कुछ देख रहा है। हाठो पर हल्की बहुत हल्की थिरकन। शायद समूची शक्ति से चीख रहा होगा पर आवाज नहीं। अजित ने श्रीपालसिंह को कभी रुआसा नही देखा था। जब देखा तब या तो गजन करते हुए, या फिर हसते हुए वही

श्रीपालसिंह एक बच्चे की तरह मासूम नजर आ रहा है अजित के दिमाग में एक तसवीर कौंध गयी है—सुरगो जब गोद की बच्ची को चबूतरे पर लिटाकर मोटनदास सिन्धी की भैंसो का गोबर उठाने चली जाती है, तब बच्ची रो रोकर बदहवास हो जाती है। फिर थककर खामोश भी। उसकी निगाहें भी इसी तरह भटकती रहती हैं

अजित पर सहा नही गया था। लौट पडा था अपने घर की तरफ। अभी सीढियो की ओर बढा ही था कि एक आवाज ने थाम लिया उसे—बदनसिंह चीखता हुआ गली मे घुसा था। किसी ने बतला दिया कि बाप को लकवा मार गया!

अजित भागता हुआ सा जैसे उन निगाहो और चीखो से पीछा छुड़ा रहा हो—अपने कमरे मे चला आया।

देर तक अंधेरे कमरे मे ही बैठा रहा था। श्रीपालसिंह हवा का कोई हल्का-सा झोका आया और शेर, खरगोश मे बदल गया! कितना निरीह, लाचार और बेबस!

देहरी पर अंधेरा कुछ गहरा हो गया अजित ने मुड़कर देखा, "कौन?"

"मैं हू।" बटनिया की आवाज आयी, "बिजली नही जलायी तूने?" फिर हल्की सी पदचाप।

अजित ने देखा—बटनिया ने स्विच ऑन किया। बोली, "माचिस चाहिए थी ना तुझे?"

"हा हा।" अजित को याद आया—बहुत पहले बीड़ी पीने का इरादा किया था उसने। हाथ बढ़ाकर बटनिया से माचिस ले ली। अलमारी की ओर बीड़ी उठाने बढ़ा, पूछा, "केशर मां कहां हैं?"

"वह नीचे गयी हैं। बदनसिंह की बहू बहुत रो रही है ना? सब मुहल्ले की औरतें वहीं हैं।"

अजित ने निश्चिन्त होकर बीड़ी निकाली और सुलगा ली। माचिस बटनिया की ओर बढ़ा दी, "ले!"

बटनिया माचिस लेकर खड़ी रही—अजित का देखती हुई।

"खड़ी क्यों है?" सहसा अजित को याद आया, "अच्छा, अच्छा!

आज तो तू वेशर गा वे पास ही सोयेगी ना ? चन्दन भाई साहब, भाभी कोई भी नहीं हैं।"

"हा।" बटनिया बोली, गरदन झुका ली।

"बैठ।" अजित बोल गया।

बटनिया चुपचाप सामने के सन्दूक पर बैठ रही। गरदन झुकाये हुए।

' ये भाई साहब भाभी किस चक्कर में गये हैं गाव ?"

"तुझे पता नहो है ?"

"नहो तो।"

"मेरी बात पक्की हो गई है ना—इसलिए।" बटनिया ने जसे फुस-फुसाकर कहा।

' काहे की बात ?"

" "

"अच्छा ! " अजित जैसे समझकर बोला, "तो तो लडका तय हो ही गया तेरे लिए ? क्यो ?"

बटनिया ने स्वीकार मे सिर हिलाया।

"तब तो मजे रहेगे तरे ! " अजित ने कहा, "कहा जा रही है ?"

"हरदोई।"

"हरदोई ? " चौंक पडा अजित, "हरदोई वाला वही लडका तय हुआ है क्या ?

बटनिया ने फिर से स्वीकार मे सिर हिलाया। अन्तर यही था कि अजित को लगा, उसका समूचा शरीर निर्जीव-सा है।

अजित हचमचा गया था। कुछ पल बात नही सूझी। सहसा कुछ नाराज होते हुए बोला, "तूने घर म कहा नही कि "

वह एकदम उठ पडी। जैसे ही खडी हुई, अजित ने देखा—उसके गालो पर आसू ढुलक आय हैं। उसने जोर से नाक सुडकी।

अजित परेशान हो उठा, पर क्रोध भी आ रहा था, "अजीब लडकी है तू ! इत्ती बडी बात हो रही है और तू कह भी नही सकती कि "

वह आचल मुह मे रखकर सुबकने लगी—लौट पडी।

' एय !"

वह नही रुकी।

अजित को जाने क्या हुआ। एकदम उठा और लपककर बटनिया की बाह पकड ली—इस जोर से अपनी ओर खीचा कि वह अजित की बाहो मे ही आ गयी। एकदम सकुच गयी, "यह क्या करता है ? "

"कहता हू कि बैठ।' अजित खुद उसके शरीर स्पर्शों से बुरी तरह हडबडाकर एक पल के लिए विषय, वार्ता, शब्द सब भूल चुका था—बटनिया सिहरती, सहमती हुई धम से सन्दूक पर बैठ गयी। उसका जिस्म थरथरा रहा था। बदन ज्यादा सुख हो उठा।

अजित ने अपने को सम्हाला। बोला, "बतलाती नहीं—तूने कहा नहीं कि ये अन्याय क्या कर रहे है ? तू नाही कर दे—साफ साफ।"

"फिर क्या करूगी ?" वह बोली। आवाज मे रुलायी।

अजित झुझला गया, "रोयगी तो एक लप्पड दूगा तुझम।"

वह जोर से रो पडी।

अजित अपनी कुर्सी मे कसमसा उठा। डरकर दरवाजे के बाहर देखा, फिर फुसफुसाकर कहा, "क्या करती है ? केशर मा आ गयी तो बेकार मे ही खुद मरेगी और मुझे भी मरवा देगी।'

वह रुलायी पर काबू पाने लगी।

"तुम लोग अजब गवार हो। यह भी नही सकते कि ज्यादती है ! अन्याय है ! ऐसे क्या बिनब्याही रह जायगी ? और रह भी गयी तो क्या फरक पडता है !' अजित बहकता सा बोल गया। जल्दी जल्दी बीडी के कश खीचे। वह बुझ गयी। अजित ने उसे धरती पर रगडकर जेब मे डाल लिया। केशर मा को ठूठ भी नही मिलना चाहिये। चीख चीखकर शोर मचा देंगी।

बटनिया की गरदन उसी तरह झुकी हुई थी। सीना जार जोर स चल रहा था। अजित को लगा कि कुछ ऐसा है, जो समझ नही आ रहा। बटनिया ने कहा, "कहते हैं कि आदमी अच्छे है भइया कह रहे थे कि आदमी का रूप रग हमेशा थोडे ही रहता है "

"पर पहले तो तू कह रही थी कि "

"मैं समझती नही थी।"

"तो तेरे भइया ने तुझे समझा दिया—क्यो ?" चिढकर अजित बोला।

"हा।" उसने आसू पोछ लिये।

"तू तू पागल है !" अजित को गुस्सा आने लगा—बेबसी मे उसने अपनी ही हथेलिया मसलनी शुरू कर दी। सचमुच बटनिया को क्या उस तरह समझाया जा सकता है, जिस तरह समझा दिया गया है ? और क्या उसे समझ लेना चाहिये ?

"हा, स्यात् मैं पागल ही हू !"

"उफ ! " अजित दात पीसने लगा, "जी होता है कि तुझमे एक चाटा दू ! "

"हा, दे ! मार मुझे !" बटनिया रोती हुई एकदम उठ पडी—अजब-सा पागलपन भरा था उसकी आखो मे, "भइया ने भी मारा है तू भी मार ! मार !" वह अजित के एकदम सामने खडी हो गयी। उसका पल्लू एक ओर झूल गया—सीने नग्न हो गये।

यह सब इतना आकस्मिक और अजब सा था कि अजित घबरा गया। वह हिलकिया भर-भरकर रोने लगी थी, "तू भी मार ले ! मुझे कोई भी मारो पीटो ! मैं हू ही इस काबिल ! मा नही है न मरी ! " वह फिर से सन्दूक पर गिर-सी पडी।

अजित मिटपिटाकर उसे देखने लगा बटनिया को चन्दनसहाय ने पीटा है ! इस बटनिया को—जो घर मे शायद पिछले दस बरसो से बन्द है—कैदी ! जिसको कभी अजित ने बडदत्ता की धोती धोते सुखाते देखा है, कभी चक्की चलाते कभी गेहू बीनते धुए को चीरती नली से फूक फूककर चूल्हा सुलगाते इस बटनिया को मारा है चन्दन ने ! अजित के दिल पर घूसा-सा लगता महसूस हुआ।

अब बटनिया की सिसकिया घोटने की कोशिश मे गुगु गहट बनकर रह गयी थीं, "पढी लिखी नही हू, चलना आता नही है मुझे। बात करने का भी शऊर नहीं—मैं गुण का क्या समझू ? फिर मुझे ता लडकी की तरिया रहना भी नहीं आता। मरे मारे सारा घर परेशान है। गुणी लडका खोज लिया है उन्होंने—रूप रग हमेशा रहता है कोई ? ये शरीर तो माटी है एक न एक दिन मिटेगा ही। "

अजित उसकी ओर क्षमा मागने के भाव से देखने लगा था, "मुझसे गलती हुई बटनिया मुझे माफ कर दे। मुझे पता नही था कि ऐसा जुल्म किया है भाई साहब ने! "

वह होठ भीचती हुई, सिसकिया पीने की कोशिश कर रही थी।

"बटनिया! " अजित अपनी जगह से उठा—उसके पास जा पहुचा।

वह उसी तरह आचल से आसू पोछती रही।

अजित की समझ मे नही आ रहा था कि बटनिया को किस तरह हल्का करे—चुप। फुसफुसाकर बोला था—उससे पहले चोर नजरो से इधर-उधर देख लिया था उसने—कोई नही था। केशर मा सीढिया चढती हैं तो 'हे राम—हे भगवान' बोलती आती हैं। आयेंगी तो आवाज सुनायी दे जायेगी।

'गुस्सा तो नही होगी—एक बात कहू ?"

"हू ?' वह अजित की पुतलियो म देखने लगी।

"तू तू इतना सब रोने धोने के बजाय एक बार एक बार गुस्सा हो जाती और और फिर तू सब मामला खुद ही ठीक कर लेती।" अजित ने हिलकती आवाज म कहा—वह खुद भी समझ पा रहा था कि जो कुछ कहना चाहता है—उसके लिए हिम्मत नही जुटा पा रहा है। अब भी जो बोला है, बहुत गडबडाकर काफी उलझाकर बोला है।

बटनिया हैरत से देखती रही—कुछ भी तो समझ नही आया। पूछा, "मैं क्या कर सकती हू ? और गुस्सा भी क्यो होती ? "

"अब मुश्किल तो यह है कि तूने न तो अच्छी-अच्छी किताबें पढी हैं, न ही कोई सिनेमा देखा है "

"मैंने रामायणजी सुनी है सिनेमा भी देखा है।" बटनिया ने जैसे आहत होकर कहा।

"कौन सा सिनेमा देखा ?" अजित न सोचा—अच्छा है। यू ही व्यर्थ की बहस सही। बटनिया रोना भूल जायगी।

" 'भरत मिलाप' देखा था। फिर 'रामभक्त हनुमान' भी देखा।" बटनिया न सीना कुछ ऊपर उठा लिया—जाहिर था कि यह गौरवान्वित

हो गयी है। अजित उसे मूख साबित कर रहा था, वह उसे नहीं होने दिया। सन्तुष्ट थी।

"इस सबसे बात नहीं बनती।" अजित कसमसाकर बोला, "अगर तू 'चाद' पढ़ती, 'माधुरी' और ऐसी ही पत्रिकायें पढती तो शायद बात बनती।"

बटनिया उसी तरह हतप्रभ रही। उसकी निगाहों ने जैसे घोषणा की कि अजित की हर बात उसे बेतुकी और समझ से परे लग रही है।

अजित फिर से चारपाई पर आ बैठा था। कुछ भय के साथ सोचता हुआ। वह बटनिया से जो कुछ कहना चाहता है—क्या वह सकता है? और अगर वह बैठा तो क्या बटनिया अपने तक ही रख पायगी? न रख पायी, उसके परिणाम कितने खराब हो सकते हैं—अजित जानता है। केशर मा, कमला जीजी सभी तक बात पहुचेगी। पढ़ा लिखा तो मैट्रिक नहीं और लड़कियां बिगाड़ने लगा। सब चौपट हो जायेगा। पर दिक्कत यह कि बिना कहे भी जी नहीं मानता। अनायास ही वह बडबड़ा उठा था, "नहीं नहीं, वह सब तू नहीं कर सकती। तुझ जैसी लड़कियां के बस म नहीं!"

"क्या नहीं कर सकती?" वह पूछने लगी।

अजित घबरा गया, "कुछ नहीं, मैं तो ऐसे ही कह रहा था"

'मैं जानती हू कि तू क्या कह रहा था क्या कह रहा था।' उसने कहा।

अजित चौंक गया, 'तू जानती है? तू क्या जानगी?"

'तू यही तो सोच रहा होगा न कि मैं मैं किसी के साथ भाग क्या नहीं जाती?' बटनिया ने एकदम कह डाला। अजित को लगा कि चारपाई से उछलकर धरती पर आ गिरा है। समझ की सारी गलतफहमी और आधुनिकता का बोध सुराही की तरह फूट गया है।

अजित न पिटी-सी आवाज म कहा था 'हा, मैं यही सोच रहा हू। अब भी क्या कम क्या है? किन्तु तुम जसी लड़की न खूब पढ़े लिखे पैसे वाले लड़के भी ब्याह करने को तैयार हो जायेंगे। दस आदमी हो गया है। जात-पांत सभी मिट जायगा, सिर्फ आदमी रहगा। तुमसे किसी भी ऊची जात का लड़का '

'वह सब मैं नहीं जानती क्या?' बटनिया ने एकदम कहा, 'पर

एसा करके भी मैं पार न लगी तब क्या होगा ? अगर उसने भइया की तरिया सोच लिया कि रूप रग हमेशा रहता है कोई ये शरीर तो माटी है—तब मैं क्या करूगी ?"

अजित एकदम उलझ गया—कुछ भी नही समझा। आश्चय से उसे दखता ही रह गया।

बटनिया उसी तरह गभीर आवाज मे कह गयी, "भइया को तो मैं जनम से जानती हू। उनके बोलने से पहले समझ लेती हू कि क्या कहने वाले हैं, क्या कहेंगे। पर इस घर आगन से तो निकली ही नही हू। किसीके साथ चली भी जाऊ तो उस क्या जानूगी ? कल वह मुझे पार न लगाये तो भइया तो जैसे भी है, पार उतार रहे ह।"

अजित समझा बहुत समझा। अविश्वास और अचरज से बटनिय को देखता ही रहा। पूरी बारहखडी भी नही जानती होगी सिफ आगन मे ही चहलकदमी करते देखा है। ज्यादा हुआ तो च दनसहाय और च दन सहाय की पत्नी के बीचोबीच चलते हुए किसी रिश्तेदार या भाई ब द यहा आते जाते देखा है—वही बटनिया सीधा सामा य ससार-चक्र समझत है *उतनी दूर तक समझती है, जितनी दूर तक अजित नही समझ पाया*

बटनिया बोली थी, 'और और जिसे जानती हू—वह खुद ही पा नहीं लग पा रहा है। फिर वह जात से बडा, ज्यादा अक्ल वाला, ति पर हिम्मती है कि नही—यह भी नही मालूम। क्या करूगी ? अब तो भा का लिखा-बदा—वही करगी।"

अजित भौचक्का सा बैठा ही रह गया। बटनिया बाहर निकल गयी वह चारपाई पर कुछ देर उलझना सा बैठा रहा फिर एक बीडी सुल ली। बटनिया ने आखिर आखिर मे किसी को जानने की बात कही थी- पर वह ऐसा है, जो जाति से बडा है, पढा लिखा है, खुद भी पार नही ल पा रहा हिम्मतवाला भी है या नही—बटनिया नही जानती। कौन सकता है ? *कश खीचते छोडत सहसा ही अजित के सामने अजित ही उभ* आया था हा, अजित खुद। वह अजित के बारे मे ही कह रही थी। अजित रोमाच से भर उठा था—पर यह रोमाच पल भर मे बलजले

बटनिया का दिमाग गड़बड़ा गया है। उसके लिए बदसूरत ~
क्या मिला है—'कुछ तो भी' सोचने लगी है। अजित ने
सोचना छोड दिया। लेट रहा।

पर बटनिया आगन मे टहलते रहकर भी बहुत कुछ
अजित चाहकर भी उसके बारे मे सोचना बन्द नही कर ।
समझता था कि वही सब जानता है—चन्दनसहाय ने वहाँ
हिसाब लगाकर बेईमानी की है। उसे याद है, एक दिन चन्दन
था केशर मा से—"यह तो अच्छा है केशर मा ! बटनिया लिख
पायी है नही तो लडका दस हजार से कम के लेन-देन पर नही मि
पुरान लोग शायद इसीलिए कन्या को नही पढात थे।"

और केशर मा न कहा था, "वह तो ठीक है चन्दन, पर इसम स
का कुछ भला भी है, कुछ बुरा भी "

"सो क्या ?"

' पढ लिख गयी होती तो ससार को ज्यादा समझती। बदलते वखत के
साथ फिट होती चली जाती हा, दहेज का चक्कर तो आता '

"ससार का क्या रोना केशर मा, वह तो चल ही जाता पर पढी
लिखी होती तो मेरी कमर जरूर तोड गयी होती।" चन्दनसहाय बडबडाया
था।

अजित करीब खडा था। मन हुआ था कि कह डाले—'बडी शान की
बात बतला रहे हो भाई साहब ! बटनिया से कह रहे हो कि पढने लिखन
योग्य न थी। उस बेचारी को तो जानबूझकर स्कूल म नही जाने दिया
तुमने ! दुनिया से काटकर ही रख दिया कि जहा चाहो सस्ते म कन्डे मापन
के लिए भेज दो। अगर ऐसा ही है तो गगा जमना का क्या पढ़ा रह
हो ? '

गगा जमना थीं चन्दनसहाय की बेटिया उन्हे जी भरकर पढा रहा
था चन्दन। क्या जानता नही है कि पढ लिख गयी तो इनका दहेज भी
लगेगा ?

अनायास ही याद हो आया है। कि चन्दनसहाय
ने गर कुछ किया—बटनिया को था थ।

भाई के लिए बोझ। अपनी सन्तान थोडे ही बोझ होती है !

किन्तु यह कल्पनातीत था कि जिस बारीक हिसाब को अजित समझ चुका है—उसे बटनिया-जैसी अशिक्षित, अपढ और मूख कही-समझी जाने वाली लडकी भी खूब खूब गहरे तक समझती है शायद ज्यादा ही समझती है !

मगर बटनिया अपने दिमाग मे कही अजित को लिये भी चहलकदमी कर रही है—यह बहुत बडा पागलपन। अनायास ही अजित को चारपाई पर बैठे बैठे हसी आ गयी। उसने बीडी बुझायी। करवट बदल ली।

"अजित !" अचानक वह फिर आ खडी हुई। इस बार उसकी आखो मे चमक थी।

अजित न सिफ करवट बदलकर उसे देखा। यह देखकर उसे कुछ परेशानी हुई कि थोडी ही देर पहले परेशान, थकी हुई बटनिया के चेहरे पर अब दमक है। वह बहुत खूबसूरत थी पर और ज्यादा लग रही थी। अजित उसके चेहरे ही नही, समूचे बदन पर निगाहे फिराता रहा।

"केशर मा देर मे आयेंगी " वह बोली।

अजित बैठ गया "फिर ?"

' तेरे लिए खाना बना दू ?"

"नही। अभी भूख नही है।"

वह खडी रही—सहसा मुसकरा पडी। आखें झुका ली।

अजित को कुछ अजब-सी लगी उसकी हर हरकत। ऐसे तो कभी करती नही है बटनिया !

"मैं मैं भइया से लड सकती हू।" अचानक बडी बतुकी सी बात उसने कही।

अजित स्तब्ध। पूछा, "क्या ?"

"तू—तू उस दिन आलू लेन आया था—याद है ?" वह पूछने लगी।

"हा याद है—एक सेर आलू।"

' भइया भाभी कभी नहीं बुलायें—मुझे इसकी चिन्ता भी नही है।"

"ठीक है—पर तू ?" अजित कुछ भी नही समझ पा रहा है। समझे भी क्या ? एकदम पागल हो जायगी। शादी से पहले नहीं हुई तो बाद म

बटनिया का दिमाग गडबडा गया है। उसके लिए बदसूरत लडका क्या मिला है—'कुछ तो भी' सोचने लगी है। अजित ने उसके बारे मे सोचना छोड दिया। लेट रहा।

पर बटनिया आगन मे टहलते रहकर भी बहुत कुछ जानती रही है। अजित चाहकर भी उसके बारे मे सोचना बन्द नही कर सका था वह समझता था कि वही सब जानता है—चन्दनसहाय ने बटनिया के साथ हिसाब लगाकर बेईमानी की है। उसे याद है, एक दिन चन्दनसहाय बोला था केशर मा से—"यह तो अच्छा है केशर मा! बटनिया लिख पढ नही पायी है नही तो लडका दस हजार से कम के लेन-देन पर नही मिलता पुराने लोग शायद इसीलिए कन्या को नही पढाते थे।"

और केशर मा ने कहा था, 'वह तो ठीक है चन्दन, पर इसमे लडकी का कुछ भला भी है, कुछ बुरा भी "

"सो क्या ?"

"पढ लिख गयी होती तो ससार को ज्यादा समझती। बदलते वक्त के साथ फिट होती चली जाती हा, दहेज का चक्कर तो आता

"ससार का क्या रोना केशर मा, वह तो चल ही जाता पर पढी लिखी होती तो मेरी कमर जरूर तोड गयी होती।' चन्दनसहाय बडबडाया था।

अजित करीब खडा था। मन हुआ था कि कह डाले— बडी भारी बात बतला रहे हो भाई साहब! बटनिया से कह रहे हो कि पढने लिखने योग्य न थी। उस बेचारी को तो जानबूझकर स्कूल मे नही जाने दिया गया! दुनिया से काटकर ही रख दिया कि जहा चाहो रास्ते मे खूटे बाधने के लिए भेज दो। अगर ऐसा ही है तो गगा-जमना को क्या पढा रहे हो? '

गगा जमना को चन्दनसहाय की बच्चियां उन्हें जी भरकर पढा रहा था चन्दन। क्या जानता नहीं है कि पढ लिख गयीं तो इनका दहेज भी लगेगा ?

अनायास ही याद हो आया है। बिलकुल हिसाब लगाकर चन्दनसहाय ने सब कुछ किया—बटनिया का बाप बहुत छोटी छोडकर मर गया।

भाई के लिए बोझ। अपनी सन्तान थोडे ही बोझ होती है !

किन्तु यह कल्पनातीत था कि जिस बारीक हिसाब को अजित समझ चुका है—उसे बटनिया जैसी अशिक्षित, अपढ और मूख कही-समझी जाने वाली लडकी भी खूब खूब गहरे तक समझती है शायद ज्यादा ही समझती है।

मगर बटनिया अपने दिमाग मे कही अजित को लिये भी चहलकदमी कर रही है—यह बहुत बडा पागलपन। अनायास ही अजित को चारपाई पर बैठे बैठे हसी आ गयी। उसन बीडी बुझायी। करवट बदल ली।

"अजित !" अचानक वह फिर आ खडी हुई। इस बार उसकी आखो मे चमक थी।

अजित ने सिफ करवट बदलकर उसे देखा। यह देखकर उसे कुछ परेशानी हुई कि थोडी ही देर पहले परेशान, थकी हुई बटनिया के चेहरे पर अब दमक है। वह बहुत खूबसूरत थी पर और ज्यादा लग रही थी। अजित उसके चेहरे ही नही, समूचे बदन पर निगाह फिराता रहा।

"केशर मा देर मे आयेंगी " वह बोली।

अजित बैठ गया "फिर ?"

' तेरे लिए खाना बना दू ?"

"नही। अभी भूख नही है।"

वह खडी रही—सहसा मुसकरा पडी। आखें झुका ली।

अजित को कुछ अजब-सी लगी उसकी हर हरकत। ऐसे तो कभी करती नही है बटनिया !

"मैं मैं भइया से लड सकती हू।" अचानक बडी बतुकी सी बात उसन कही।

अजित स्तब्ध। पूछा, "क्या ?"

"तू—तू उस दिन आलू लेन आया था—याद है ?" वह पूछने लगी।

"हा याद है—एक सेर आलू।"

"भइया भाभी कभी नही बुलायें—मुझे इसकी चिन्ता भी नही है।"

"ठीक है—पर तू ?" अजित कुछ भी नही समझ पा रहा है। ममने भी क्या ? एकदम पागल हो जायेगी। शादी से पहले नही हुई तो बाद मे

हो जायेगी—अजित ने सोचा।

"और तू च्-च। '" कान पकडे उसने—जीभ निकाली। फिर कहा, "नही-नही, तुम—तुम हमेशा ऐसे थोडे ही करोगे। सब ठीक कर लोगे।"

"हा हा, जरूर ठीक कर लूगा, पर वटनिया ' अजित को झुझलाहट आने लगी—फालतू दिमाग चाट रही है।

"मुझे वैनवती कहा करो।" वह कुछ नाराज होते हुए बुदबुदायी, "मैं भी तो तुम्हें तू नही कह रही हू अब।"

"ठीक है—वैनवती ही कहूगा।" वह कुछ घबरान लगा था। चिन्तित और बेचैन होता हुआ उसे देखे जा रहा था।

"और और भगवानजी की सौगध, मैं पढना लिखना भी सीख लूगी।"

अजित चुप रहा—सिर्फ उसे देखता हुआ। दिमाग तेज तेज दौड रहा था। एक सेर आलू वटनिया चन्दनसहाय और उसकी घरवाली की भी परवाह नही करेगी उसे वैनवती कहा जाना चाहिये—वह मुझे 'तू' नही कह रही है मैं सम्हल भी जाऊगा—हमेशा तो ऐसा रहूगा नही?

वटनिया बार-बार देखती है, नजरें झुका लेती है। किसी पल सुख और ज्यादा सुख होते गये गोरे रंग पर अनायास ही बदली घिर आती है। स्वर काप उठता है, "तो तुम्हें कुछ भी याद नही?'

"क्या?'

"मैं जल्दी-जल्दी भी चला करूगी " वटनिया की आवाज एकदम हल्की होकर दब गयी है—कमजोर, 'केशर मा कहती हैं कि मैं जल्दी नहीं चलती, पर अब चला करूगी और "

हुए राम। वटनिया! और ' केशर मां की आवाज आयी—कराह भी। वटनिया एकदम मुडी, 'मैं फिर आऊगी तेरे पास—क!—तुम्हारे पास।' फिर वह तेजी से दौडी चली गयी।

एकदम पागल हो गयी है! अजित बौखलाया हुआ सा लेट रहा। ९ सहानुभूति से मन भर आया अजित का—बेचारी! बहुत सम्मा

लगा है उसे। चन्दनसहाय के लिए एक गाली सोची और फिर याद आया—अजित को अपने बारे म साचना होगा

केशर मा ऊपर आ गयी हैं। अजित इस बटनिया के चक्कर मे उलझा रह गया—नही तो क्या कुछ कर सकता था वह? कमरा सूना पडा था। अजित नोट निकाल सकता था। केशर मा जमीदारी के मुआवजे के रुपये लायी हैं। अजित को याद है। पूरे छह हजार रुपये! सिफ हजार निकालने से काम बन जाता।

पर अब कुछ नही हो सकता। केशर मा अपने सदूक के पास ही विस्तरा लगाती हैं नीद ऐसी कि जोर की सास आये तो सवाल उछाल दें—'कौन?' लोग कहते हैं—बुढापे मे नीद कम हो जाती है।

यह और परेशानी। अजित ने बेचैनी से एक करवट बदली। कुछ न कुछ तो करना ही होगा।

बटनिया को सदमा लगा है पर वह फालतू बात नही कर रही थी। अजित अचानक ही अपने सोचो से करवट बदलकर बटनिया के पास जा पहुचा है—वह अजित को 'तुम कहने लगी है। खुद के लिए कहती है कि बैनवती कहा करे। अजित मुसकरा पडा है। पगली कही की! अजित को मार खाना है क्या? और इसका भी क्या कम बुरा हाल होगा? फिर अजित तो कौडी नही कमा सकता। सरस्वती के 'ग्रुप' मे जाने के बाद लक्ष्मी ने 'बायकाट' कर दिया है। कहानिया भी ठीक से छपती नही हैं। जब छपेंगी तब कुछ बात बनगी। प्रेमचन्द जब 'प्रेमचन्द' हो गये थे—तब कही जाकर एक कहानी के पाच रुपये मिले थे उन्हें, फिर आगे बढे। सरस्वती भूखों तो नहीं मारती, पर खासी थुका फजीहत करवा देती है। और इस हालत मे बटनिया कहती है कि वह अजित को तुम कहगी और अजित उसे बैनवती कहे। एकदम पागल। ऐसा कही हो सकता है?

अब फिर आन वाली है अजित ने सोचा। मन आनद से भर उठा है। करीब होती है—अकेले मे—तब अजित को अच्छा भी बहुत लगता है। आवाज भी तो बहुत मीठी है उसकी। अगर कुछ पढा लिखा होता अजित और ठीक से बात जमी हाती तो बटनिया—बैनवती लडकी बढिया है। घर का काम भी खूब करती है। कहती है—पढ लिख भी लेगी।

वैनवती कहती है—'तुम' कहा करेगी।

अजित को सन्दूक में रखे छह हजार याद है—ज्यादा नहीं, एक हजार काफी होंगे।

सरस्वती भूखा नहीं मारती पर

केशर मा एकदम सन्दूक के पास ही बिस्तरा लगाती हैं।

अजित को बतलाना तो होगा कि बेटे का बिछोह क्या होता है। जरा 'शाक ट्रीटमेंट' देना होगा।

बटनिया फिर आने वाली है

अजित ने करवट बदली। बटनिया फिर से दरवाजे पर थी। बोली, "केशर मा लेट गयी हैं। उन्हें भी भूख नहीं है। बेचारे सिरीपालसिंह के साथ बुरा हुआ' वह सन्दूक के ऊपर आ बैठी, "तू—तुम सो गये क्या?'

"नहीं।" अजित को हंसी आयी। यह बटनिया तो खूब! 'तुम' ही बोलने लगी! अचानक उसे याद आया—बटनिया सोयेगी केशर मा के पास। और बटनिया एकदम अजित के चक्कर में आ गयी है। इससे काम निकालना होगा। बोला, "बटनिया, एक काम करेगी मेरा?'

"बोलो!" वह लजाती हुई पूछने लगी।

अजित ने डरते डरते कहा, "केशर मा के सन्दूक से कुछ पैसे निकालने हैं।"

"दैया री! "उसने मुंह गोल कर लिया, "तुम तुम चोरी करोगे?"

अजित ने चेहरे पर उदासी उगायी, "देख, अगर ठीक से सब जमाना है तो चोरी करनी ही पड़ेगी।'

'पर पर ये बुरी बातें हैं—अपना ही धन का नाश करना' अचानक बटनिया की आवाज चिपक गयी।

'तू समझ तो कुछ रही नहीं है।' अजित ने ऐसी तरह कहा जैसे अब वह 'तुम' और वह 'वैनवती' हो चुके हैं—कुछ भी अलग नहीं। बोला, "इसी तरह शुरू में जमाना होगा फिर तू कह रही है कि सब बात जम चुकी है और इसके पहले कि चन्दन भाई साहब सब जमा आयें—अपुन को इतना भी तो जमाना पड़ेगा।'

बटनिया तब पल भर गंभीर बनी रही फिर पूछा, "कितना

शुरु मे लगेंगे ?"

"यही कोई चार-पाच सौ तो चाहिए । " अजित बोला, "कही मकान लेना होगा, आर्यसमाज मे सब बात जमानी पडेगी और तू क्या जानती नही है, शुरु म घर बार चलाओ तो "

"मुझे मालूम है पर, बेशर मा के पैसे मत निकालो।" वह प्रार्थना के स्वर मे बोली।

"तब ?" अजित ने कुढकर कहा, "तब क्या करेंगे अपन ?"

"मैं मेरे पास हैं—पूरे सात सौ हैं।"

"तेरे पास ?" अजित हकबका गया।

"हा। मैं बहुत साल से जोड रही हू ना।" वह लजाकर बोली, "उनमे काम निकाल लेंगे। है ना ?"

अजित एक पल के लिए खामोश, पर कमजोर नजरो से उसे देखता रह गया। वह खुश थी, बडी मासूमियत से पूछने लगी, "क्या, कम पडेंगे क्या ?"

'है ? " वह चौका, "कम ? नही तो। कम क्यो पडेंगे—बहुत हैं।"

"तो तो ले आऊ ?" वह एकदम उठ खडी हुई।

अजित के मुह से शब्द नही निकला। अपने को बहुत कठोर और निर्मम बनाये रखने की कोशिश के बावजूद उसे लगा, जैसे वह कुछ घबरा गया है।

"मैं अभी लाती हू।" वह तेजी से सीढिया उतर गयी थी—अधेरे म ही। अजित एकदम मस्त होकर चारपाई पर लेट रहा। वह अपने प्रति ही धिक्कार से भर उठा था। कितनी घिनौनी हरकत की उसने। भोली-भाली, लाचार लडकी को अपने स्वार्थ की कोशिश म उपयोग करने लगा ? यही है अजित की सरस्वती ? यही है उसकी मनुष्यता ? छि !

वह ऊपर आ गयी थी—खुश। एक पोटली उसके हाथ मे थी। बहुत छोटी पोटली। उसने पोटली अजित के सामने रख दी थी। खुश, उत्साहित स्वर मे बुदबुदायी थी, 'ये देखा मैंने कितना सारा जोडा है ! ये रुपये " उसने मुट्ठी स नोटो को उठाया था। कुछ पाच के नोट थे कुछ दो के, कुछ एक के—कलदार भी ढेर से थे। कुछ पर रोली लगी हुई थी। अजित भय

वह कुनमुनाता है—पलकें खोल देता है।

"च च्! आग लगे इस जीभ को। बुरी आदत पड गयी है ना !"

वह सामने खडी मुसकरा रही है।

अजित जैसे चौंककर आलस तोड लेता है—'तुम' और 'बैनवती ?' रात को बहुत घपला हुआ। वह बटनिया की ओर चाहकर भी नही देख पाता। उठकर सीधा हाथ-मुह धोने चल पडता है। बटनिया की आवाज आती है, "मैं चाय बनाती हू।" वह जैसे इन शब्दो से भी भाग रहा है।

जसे-तैसे उसने चाय पी। किसी भी बार बटनिया की ओर देखने का साहस नहीं जुटा सका। प्याला खाली किया तो बटनिया बोली थी, "तुम आज सब ही सोच लना कल ता भइया लौट आयेंगे ना।"

अजित ने कुछ कहा नही, खाली कप-प्लेट उसके हाथो मे थमाकर जल्दी से फिर बाथरूम मे समा गया। उसे दोपहर तक खिसक जाना होगा कही भी। रात तीन बजे के बाद सोया था। आखो मे अब भी हल्की हल्की जलन। नहाया और कपडे बदले। किताबो के पीछे रात तीन बजे तक लगभग दो घटे की कोशिश के बाद केशर मा के सदूक से उडाये सौ सौ के नोट और एक अगूठी छुपा रखे थे। उन्हे जेब के हवाले किया। सब्जी वाली आया और केशर मा पेटी खोलेंगी। एकदम शक तो नही होगा, पर क्या मालूम गिन बैठें निकल पाना कठिन।

वह जल्दी जल्दी सीढिया उतरने लगा। हाथ मे सिफ एक बैग। कुछ अधूरी लिखी कहानिया प्लाट। एक उपन्यास। रास्ते मे काम आयेगा।

गली मे आया। देखा—मैनपुरीवाली एक थाली मे बहुत सा कलाकद लिये हुए सबको बाट रही है। एक ओर रामप्रसाद खडा है—अपशकुन! अजित का जी खराब हो गया।

"लो, लाला!" मैनपुरीवाली ने कलाकद का एक टुकडा अजित की ओर बढा दिया।

अजित ने हथेली फैलायी। पूछा, "किस बात का प्रसाद है भाभी ?"

'रात आठ बजे सहोदा के बेटा हुआ है।" मैनपुरीवाली ने खुश आवाज म कहा, फिर आगे बढ़ गयी।

भीत-सा देखता रहा। निर्जीव भाव से। ये रोली लग रुपये टीको या रक्षा बधन पर मिले हुगे उसे। नोटा के साथ चादी के कुछ गहने थे—पायलें, छल्ले और सोने के इयरिंग

अजित की सास तेज हो गयी थी। हर सास के साथ खुद के लिए धिक्कार। वह बाली थी, "तुम रख लो इन्हे। मुझसे जैसा कहोगे—वैसा ही करुगी। मुझे मालूम है, तुम डरते नही हो! सब सम्हाल लोगे। फिर बाहर भी तो खूब घूमे फिर हो तुम।' वह बडबडाये गयी थी, "बस, इसमे से बीस रुपये मैं रख लेती हू।'

अजित ने उसे देखा था। उसकी खूबसूरत आखो मे पनीलापन था। कापते स्वर मे कहा था उसने, "मैं मैं बिछुए बनवाऊगी ना ?"

बुरी तरह आहत हो गया था अजित। वह उसी तरह खुश, उत्साहित, बडबडाये गयी थी, और अजित न ठीक से कुछ सुन सका था, न ही समझ सका। सहसा उसने कहा था "ऐसा कर। ये, ये सब रख आ। अभी जरा सब कुछ ठीक तरिया सोचने दे मुझे। कल तलक ।"

वह चुप हो गयी थी—सिर्फ अजित को देखती रही।

अजित ने उसी तरह कहा था, "इत्ती जल्दी य सब करना ठीक नहीं होता काम करेंगे, पर जरा समय बूझकर! है ना ?"

उसने स्वीकार मे सिर हिलाया, फिर सब कुछ उसी तरह समेटकर चली गयी।

एक गहरी साम लेकर अजित थका-सा लेटा रहा था—चुप। सोच समय से खाली होकर। सिर्फ बटनिया दीख रही थी चारो तरफ दीवारो पर, कमरे मे हर चीज के साथ बटनिया यानी वैनवती!

वह फिर आयी तो जानबूझकर अजित सोने का बहाना कर गया था। उसने एक-दो बार हौले से अजित के करीब झुककर बुदबुदाया, पुकारा भी था, "सुनो! सो गये क्या सुनो अजित! नही-नही, सुनो! "

फिर एक निश्चिन्त गहरी सास का स्वर आया था अजित के कानो मे। फिर अजित ने बदन पर चादरे का अहसास किया था दो मिनट बाद आखें खोली—कमरे म अधेरा था, पर अजित के ऊपर चादरा पडा था।
"ऐ अजित! उठ!"

वह कुनमुनाता है—पलकें खोल देता है।

"च च! आग लगे इस जीभ को। बुरी आदत पड गयी है ना !"
वह सामने खडी मुसकरा रही है।

अजित जैसे चौंधकर आलस तोड लेता है—'तुम' और 'बैनवती ?'
रात को बहुत घपला हुआ। वह बटनिया की ओर चाहकर भी नही देख पाता। उठकर सीधा हाथ-मुह धाने चल पडता है। बटनिया की आवाज आती है, "मैं चाय बनाती हू।" वह जैसे इन शब्दो से भी भाग रहा है।

जैसे-तैसे उसने चाय पी। किसी भी बार बटनिया की ओर देखने का साहस नही जुटा सका। प्याला खाली किया तो बटनिया बोली थी, "तुम आज सब ही सोच लेना कल तो भइया लौट आयेंगे ना।"

अजित ने कुछ कहा नही, खाली कप प्लेट उसके हाथो मे थमाकर जल्दी से फिर बाथरूम मे समा गया। उसे दोपहर तक खिसक जाना होगा कही भी। रात तीन बजे के बाद सोया था। आखो मे अब भी हल्की हल्की जलन। नहाया और कपडे बदले। किताबो के पीछे रात तीन बजे तक लगभग दो घण्टे की कोशिश के बाद केशर मा के सन्दूक से उडाये सौ सौ के नोट और एक अगूठी छुपा रखे थे। उन्हे जेब के हवाले किया। सब्जी वाली आया और केशर मा पटी खोलेंगी। एकदम शक तो नहीं होगा, पर क्या मालूम गिन बैठें निकल पाना कठिन!

वह जल्दी जल्दी सीढिया उतरने लगा। हाथ मे सिर्फ एक बैग। कुछ अधूरी लिखी कहानिया प्लाट। एक उपन्यास। रास्ते मे काम आयेगा।

गली मे आया। देखा—मैनपुरीवाली एक थाली मे बहुत सा कलाकन्द लिये हुए सबको बाट रही है। एक ओर रामप्रसाद खडा है—अपशकुन! अजित का जी खराब हो गया।

"लो, लाला!" मैनपुरीवाली ने कलाकद का एक टुकडा अजित की ओर बढा दिया।

अजित ने हथेली फैलायी। पूछा, "किस बात का प्रसाद है भाभी ?"

"रात आठ बजे सहोद्रा के बेटा हुआ है।" मैनपुरीवाली ने खुश आवाज में कहा, फिर आगे बढ़ गयी।

सुरगो बच्ची को गोद म लिये रामप्रसाद से वह रही थी, "अच्छा हुआ लालाजी भगवान देर म ही सही, पर भगत की सुनता है। सुनते है बहुत गोरा भूरा है। "

पास खडी वैष्णवी ने कहा, "बिल्कुल डिलेवर साहव की शकल सूरत ! सहोद्रा पर छाह पड गयी।"

रामप्रसाद न सिर झुका लिया। चेहरा ज्यादा काला। अजित कलाकद गले से उतार चुका है, पर अजब सा कसैलापन अनुभव करता हुआ गली पार करता है। रामप्रसाद का झुका सिर, सहोद्रा की भगवान ने देर से सुनी, पर सुन ली डिलेवर श्रीपालसिंह की छाया पड गयी है बच्चे पर ! अचानक याद हो आता है—ड्राइवर श्रीपालसिंह की वह बच्चे जैसी आखें सिल चुके होंठ, लम्बे चौडे शरीर के बावजूद लकवे से जकड गयी शक्ति

श्रीपालसिंह के पास भी खबर पहुचेगी शायद पहुच ही चुकी हो? सहोद्रा को याद करेगा। कैलेन्डर बैठक मे लगे हैं। बच्चा सहोद्रा की गोद मे है। रामप्रसाद मिठाई बाट रहा है

सहोद्रा का गणित पूरा हुआ। पर श्रीपाल का गणित ? या उसका कोई गणित ही नही था ? थे सिफ कैलेन्डर ?

दोपहर को पजाब मेल बम्बई जाता है। अजित सीधा उसी म सवार होगा। कुछ रास्ता पार करेगा—उपन्यास पढता हुआ।

गली पार करके जैसे ही निकला, मोड पर मोटे बुआ, छोटे बुआ, महेश और गली के तमाम लडके एकत्र मिले। अजित कतराकर निकल जाना चाहता था, पर छोटे बुआ न रोक लिया, 'पण्डित !'

अजित लाचारी से उनके सामने जा खडा हुआ। उनमे शरीक। उसे जल्दी से जल्दी बाजार स सरक जाना होगा। एक बार शहर मे जा पहुचा फिर खतरा नही। इस पल तो पता नही कब केशर भा सन्दूक खोल बैठें और

"अब पण्डित तुमे पता है सहोद्रा के गोरा भूरा लौंडा हुआ ?" मोटे बुआ ने मजा लेते हुए कहा।

'हा।"

' मिस्टर मिरीपालसिंह अस्पताल म पडा है।" छोटे वाला, ' ये भगवान

भी एक ही चीज है। "

"चीज तो है ही।" मोठ बडबडाया, "अब ये पण्डित भी क्या कम चीज है? इसको पूछने से बोलेगा थोडे ही कि मि नी किसका पाप खाली करने गयी है डाक्टर घाटपाण्डे के यहा।"

अजित ने परेशान होकर उन सभी को देखा—बुदबुदाया, "मिनी घाटपाण्डे के यहा गयी है—क्या ?"

"घाटपाण्डे के यहा औरत लोग काह के लिए जाती है? विसका जच्चा-खाना है ना? ये सुरगो भी तो विदर ही गयी थी। बच्चा ले के आयी ' मोठे कहता गया।

"पर सुरगो बच्चा ले के थोडे आयगी?" छोटे बुआ बोला।

"क्या बकते हो तुम लोग! " अजित ने एकदम बिगडकर कहा, "मोठे, फालतू बातो के सिवाय तुम्हारे पास कुछ नही है! " वह बुरी तरह क्रोध से भर उठा था।

"अबे तू हमेशा पागा पण्डित रहा है—आगू भी रहेगा! " मोठे बुआ ने जवाब दिया, "सब माहल्ला कह रहा है। मिनी को चार महीने का पेट था।"

"बस भी करा यार! " अजित चल पडा था। वे हसने लगे। अजित थोडी देर के लिए बुरी तरह परेशान हो गया था—हो सकता है कि सच हो। यह होना ही था वह मिनी के प्रति घृणा से भर उठा था। कुछ दिनो से वह एकदम बदल गयी थी। न सिफ बदली थी। अपने बदलाव पर तक की मोहर भी लगान लगी थी! छि!

पर कितनो को लेकर य छि छि करता रहेगा अजित? किस किस तरह किस किसलिए?

अजित जब टिकट लेकर ट्रेन मे बैठा तब भी वह ये भूल नही पाया था कि उसके अपन भीतर भी तो कितना कुछ है—जिसे लेकर घृणा की जा सकती है! छि-छि! की जा सकती है? पर अजित यह न करता तो क्या करता? उसे लग रहा है ठीक किया

शायद उस दिन मिनी को भी यही कुछ लगा होगा हर बार लगता रहा हागा। तब, जब वह डा० गाविल की कृपा लायी थी, तब जब नौकरी

के लिए वह इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स सक्सेना के साथ सैकिण्ड शो देखने लगी थी और तब, जब वह घाटपाडे के जच्चाखाने से बिना बच्चा लिये लौट आयेगी।

सबके पास तक ह हर गलत के पीछे एक सही है। सबका एक हिसाब किताब गणित।

ट्रेन म उपन्यास खोलकर भी उपन्यास वहा पढ़ सका था अजित। लगता था—हर वक्त मे, हर शब्द के भीतर स वटनिया झाक रही है, सलज्ज, मुसकराती हुई लज्जामयी वैनवती बोली थी, ' तुम आज ही सब सोच लेना। कल तो भइया लौट आयेंगे ना ?'

अजित लौटेगा, तब तक वटनिया उस काले, आबनूसी, चेचकभरे हरदोई वाले चेहरे को वरमाला डाल चुकी होगी। वह आगन से शायद विदा भी हो चुके ?

सुनहरी अब भी जेवरो की याद कर करके रोती है। बहुत दुबली हो गयी। यदाकदा भाग पीकर मुकुल उस पर हसता होगा। वह उसे गालिया देती होगी। ड्राइवर लकवे से मारा हुआ अस्पताल मे पडा है—सुरगो को शीतला ने वदनसिंह की बहू के शरीर मे आकर साक्षात कहा— निराश न होना। पुत्र होगा।' यह बात बहुतो ने बहुत पहले, लगातार कही है। नौ बेटिया हो गयी, रशमा सतीत्व को सम्हाले हुए और सफेद साडी पहने उस कुतुबमीनारनुमा मकान की चौथी मजिल पर चली रहती है।

सबके तक सबके हिसाब किताब। कुछ गलत हो चुके, कुछ होंगे *या शायद आकडे सही बैठ जायें। सहोदरा का आकडा सही बैठ गया।* गोरा भूरा बच्चा उसकी गोद म है।

पर हिसाब किताब चलते ही रहते हैं किसके हिसाब पर घणा की जाय, किसके हिसाब को प्यार किया जाय ?

ज्यादातर गणित पूरे ही नही हुए—अभी दौर म हैं। राशिया लगी हैं। जोड नही हुआ। जितना जाड गडबडाया, व फिर से हि
लगे हैं कुछ अजित का मालूम—कुछ नामालूम।

जया मौसी का गणित भी तो कुछ ऐसा ही है यहा है

सी सबसे पहले सवाल करेंगी—'तू बता, मिन्नी उस हादसे के बाद
डजस्ट कर सकी होगी? और यह सब हुआ कैसे था? क्या
ा ही अंधे हो गये थे जीजी जीजाजी?'
ौर सिर झुकाकर अजित को उत्तर देना होगा—'अंधे ही क्यों,
ी तो हो गये थे मौसी। फर्क यही है कि मिन्नी न अंधी थी, न
। वह शायद कुछ और ही थी '
क्या जया मौसी अंधी नहीं हुई थी? अजित यह भी तो पूछ सकता है
, 'तुम मास्टर साहब की ग्रेजुएट साली होकर इस कोठे पर आ
।—क्या तुम अंधी नहीं थी? बतलाओ, सुरेश जोशी के साथ
भागी थी तुम? इतना बडा पहाड तो नहीं टूट पडा था तुम पर?
ा माथुर से विवाह के लिए तुम खुल्लमखुल्ला विरोध क्यों नहीं कर
? विद्रोह ही क्या न कर दिया तुमने? पर तुम कायरा की तरह
घडी हुई। आज भी कायरों की तरह तुमने अपनी बेटी को अपने से
र रखा है—उसे धोखा दे रही हो कभी-कभी तो लगता है कि तुम
को भी धोखा दे रही हो।'

"अजमेरी गेट—किस साइड उतरना है बाबूजी?"

'बस, चौक पर वह जाकिर हुसैन कालिज है ना—वही।" एकदम
कर बोल पडा है अजित। पुल उतरकर टक्सी कालिज के गेट पर आ
ी है। अजित भुगतान करके कुछ सहमता हुआ सा जी० बी० रोड की
र बढ रहा है यह ड्राइवर देख रहा होगा। अजित का मन होता है—
ठकर देख ले। पर साहस नहीं होता। अजित भी तो कायर है! कौन
ीं है कायर? शायद जया मौसी भी यही कह बैठें?

पीक से सनी दीवारोंवाली सीढियाँ चढ रहा है अजित मालूम ही
ं—ऊपर क्या देखना पडे?

अजित दरवाजे पर थपथपाता वही लडकी—कस्तूरी नाम है
का—दरवाजा खोलेगी, फिर जया मौसी की बैठक में ले जायेगी।
र अलग है कोठे के नाच-गान का कमरा अलग।

वह कस्तूरी भी शायद कहाँ था जया या मिन्नी हो ?

दरवाजा खुला हुआ है। अजित सहमता हुआ भी

बैठक की ओर।

कदम देहरी पर पडते ही चौंक जाता है अजित। भीतर से आधी की तरह एक दुबला पतला, बीमार आदमी झूमता सा निकलता है—अजित के कधे से टकरा गया, 'सौरी ! सौरी भाई साहब !"

ये आवाज ये चेहरा, ये आख ? अजित मुडकर चीख पडना चाहता है, "सुरेश जी ! ऐय जोशी साहब ! " वह लपका भी है सीढियो की तरफ वापस।

वह आदमी उसी तरह गिरता पढता सीढिया उतर रहा है

"सुरेशजी ! ऐ !"

"तू इधर आ। मैं तो समझ रही थी, तू शायद आज आये ही नही।" अजित चौंक जाता है—जया मौसी ने कधे पर हाथ रख दिया है। मुसकरा रही ह, "आ ! "

'ये सुरेश जोशी थे ना ? "

"हा—तू तो आ " जया मौसी ने बाह थाम ली है अजित की। सहसा चौंका है वह—जया मौसी के मुह से शराब की बू आ रही है अजित मुड मुडकर उन सीढियो की ओर देखे जा रहा है, जिनसे अभी अभी वह कृशकाय जोशी लगभग लुढकता हुआ उतर गया है

"पर मौसी, ये जोशी ?'

"सब कुछ यही जान लेगा क्या ? " जया मौसी उसे भीतर ले आयी हैं।

उस दिन लगा था कि यही किसी स्कूटर, बस या कार से टकरा न गया हो। उसन नशे की हालत म जान नही देना था। बदन का कोई भी हिस्सा तो काबू म नहीं था उसके—पर जया वाली थी, 'तू यो ही डर रहा है।'

विस्मय स अजित चेहरा देखने लगा था जया मौसी का। सुरेश जोशी के प्रति पट गये उसके शब्दो पर विश्वास नही हुआ था—कहा, "तुमने

ध्यान नही किया मौसी, किस कदर लडखडा रहे थे जोशी बाबू। सीढिया भी कैसे पार की हैं—मैं ही जानता हू। फिर सडक पर ट्राफिक भी बहुत है उनका हर पैर काप रहा था "

धीमे से हसी थी वह। उपेक्षा से पूछा था, 'सच ? तुझे लगता है कि जोशी के पास पैर हैं ?"

स्तब्ध देखता ही रह गया था अजित।

जया मौसी बोली थी "नही रे! पैर ही नही हैं उसके। पैर होते तो इस तरह मिला होता तुझे ?"

उस पल कुछ भी नही समझ सका था अजित, सब कुछ जान लेने के बाद लगा था—ठीक ही बोली थी वह। सचमुच सुरेश जोशी के पास पैर नही थे। और अकेले सुरेश जोशी के पास ही क्यो, कितने लोगो के पास पैर नही होते ? चलने के नाम पर जो दिखता है—देखने और चलनेवाले दोनो के लिए ही पैरो का धोखा होता है। सुनहरी, बटनिया, मिन्नी कितने ही लोग। किसीके पास पैर नही—फिर भी वे जीवन के आगन मे घूमते हैं गलिया पार करते हैं, खुश रह लेते हैं। समझते रहते हैं सब कुछ अपने पैरो पर चलकर या खडे रहकर ही पाया या पार किया है।

मास्टरजी अपने गृहस्थ ससार को कुन्दन दरजी के पैरो से पार कर रहे थे। खुद मायादेवी भी अपने सतीत्व का ढेर-सा सामाजिक वजन सिर पर उठाये खडी थी—घुटनो से नीचे का सारा हिस्सा कुन्दन ने सम्हाल रखा था। सुनहरी शरीर-व्यापार के जरिए ढेर-ढेर जेवर और नकदी इकट्ठा कर रही थी। सोचा था कि जीवन-यात्रा उस नकद के पहियो पर घूमते जेवर-रथ से कर लेगी। चन्दनसहाय कचहरी मे सही-गलत ढग से पैसा कमाता और फिर गायत्री मन्त्र, सत्यनारायण कथा या रामायण-पाठ करके सोचता भवसागर से पार हो जायगा किसी की यात्रा अपने पैरो पर नही। उस दिन जया मौसी के चार शब्दो वाले उत्तर ने समूचा ससार रहस्य ही खोल डाला था अजित के सामने। कहने लगी थी, "मैं भी तो उनसे अलग नही थी अजित। सोचती थी कि जोशी के पैरो से चलकर गली के नरक को पार कर जाऊगी पर एक दिन पता लगा था कि जिसके पैरो का सहारा लेकर दौडने लगी हू—उसके पास तो पैर हैं ही नही। बिलकुल मेरी ही तरह

अपग और लाचार ! " उन्होंने पास रखे टेबल पर खाली पडे काच के गिलास में फिर से व्हिस्की उडेली थी—हसती हुई कुछ घूट लेने लगी थी, 'तुझे भय लगा है कि सुरेश कहीं टकरा न जाये ? पर निश्चिन्त रह—उसके टकराने का कोई मतलब नहीं होता। उसी तरह जैसे सुरेश के जीने या मरने का कोई मतलब नहीं है।"

"क्या कह रही हो मौसी ?" विस्मय के निरतर थपेडे सहता झेलता अजित आश्चय और अविश्वास से जया मौसी के शब्द, चेहरे और हरकता को पचान की कोशिश कर रहा था।

'बिलकुल ठीक कह रही हू। टकरात तो वे हैं, जिनके अपने पैर होते हैं—उधार के पैर लेकर कहीं जीवन यात्रा तय की जाती है रे ? प्यार, श्रद्धा और विश्वास की कावर पर चढकर जो जल एक नदी से दूसरी नदी तक की यात्रा करता है—भला उस जल को पुण्य का क्या श्रेय ? उसकी यात्रा कैसे अथवान हुई ?' जया मौसी नशे से बोझिल आखा के बावजूद बहुत जागृत सवाल कर रही थी। कहा, "नहीं ! यात्रा तो कावर का कधे पर ढोकर ले जान वाले की हुई। इसलिए प्यार, श्रद्धा और पुण्य का भागी भी वही। कावर ले जाने वाला अथवान !"

उस दिन वेश्या के कोठे पर बठे हुए अजित की निगाहें चन्दारानी पर इस तरह टिकी रह गयी थी, जैसे साक्षात जीवन के दशन ही कर रहा हो। वह जीवन दशन न होता तो शायद अजित उन दसियो कहानियो की अथवत्ता और अथहीनता को न समझ पाता, जो उसीके गिद थी—उसके पास। इतने पास कि उन्हें छूता हुआ वह पल पल उस गली से गुजरा था

जया मौसी—उफ चन्दारानी—अपन जिस्म से लापरवाह होकर सोफा कुरसी पर अधलेटी सी पडी थी। अजित न शराव की उस बोतल पर निगाह डाली थी—लगा था जसे एक ही पैग बची होगी। कुछ घूट तब क्या जया मौसी क गले म पूरी बोतल ही पडी हुई है ? याद आया—थोडी देर पहले ही सुरश जाशी गया है। हिलता, लडखडाता हुआ। जरूर काफी कुछ वह पी गया होगा। पीना ही चाहिए। उसके पास पैर जो नहीं हैं उसक अपन। शायद जीवन-यात्रा के शष पडाव उस दसी व्हिस्की के पैरा स पार कर रहा हो। यही कर रहा होगा।

पर जीवन-यात्रा के जो बीच वाले पृष्ठ है—उनका क्या हुआ ? उन्ही पष्ठो की खोज खबर लेने के लिए आया है अजित। मन हुआ याद दिला दे उन्हे—'तुमने वायदा किया था मौसी, सुरेश के बारे म बतलाओगी। उस बेटी के बारे मे भी बतलाओगी, जो नैनीताल के उस प्राइवेट स्कूल में है और जिसके पास पिता की जगह सुरेश जोशी का नही—किसी और मद का चेहरा है। कैसे हुआ यह ? तुम किसन माथुर जैसे अयोग्य वर के चुनाव से बचने के लिए ही तो घर से भागी थी। सुरेश तुम्हारे साथ था फिर ऐसा कैसे हुआ कि तुम्हे कोठे पर पाया है मैंने ? मुझे सब कुछ बतलाना होगा व सारे पष्ठ पढना चाहूगा मैं—जो इस कहानी के बीच से गुथे रहकर भी गायब है। '

बोतल की बची खुची शराब भी उन्होने गिलास मे उडेल ली। बोली, "तू भी एकाध पेंग ले ले।"

"नही।" वह कठोरता से बोला था। उसे कुछ चिढ भी हो रही थी। कही ऐसा न हो कि यहा तक आना व्यर्थ चला जाये। कहानी के वे गुथे पर गायब पष्ठ मिलें ही नही। और यह होने की आशका उसे निरतर दहला रही थी। हो सकता है। हो सकता है नही—शायद यही होगा। पिछले दो बार की तरह इस बार भी अजित को उखडाव लिये हुए ही लौटना पडेगा आधा बोतल शराब गले म उडेल लेने के बाद कब तक जया—नही चदारानी—अपने आप पर काबू रख सकेगी ?

"ले-ले ! " वह बोली, फिर कस्तूरी को पुकारा था उन्होने। अजित कुछ कह सके—इसके पहले ही कस्तूरी को आदेश दिया था उन्होने, "अलमारी से बोतल तो निकाल !"

'नही नही, मौसी "

"नही नही—क्या ? ले ! ज्यादा नही—दो पैग ले लेना।"

"मैं बेसुध नही होना चाहता !" अजित के स्वर म कुछ नाराजी और उपेक्षा बोली। जया मौसी को मालूम होना चाहिए कि वह चिढ रहा है। इस व्यवहार से ही शायद कुछ समझेंगी।

वह हस पडी, "सुध और बसुधी के दौर म किसी मीठे कडवे सपने की तरह जो जाना ज्यादा सहज होता है रे ! मुझे सुनाना है और तुझे सुनना

है। तकलीफ तो होगी पर इससे आराम भी मिलेगा।"

कस्तूरी ने पैग बना दिया था। जया मौसी ने उठाकर अजित की ओर बढाया। अजित ने ज्यादा बहस न करके पैग ले लिया था।

जया मौसी बोली थीं, "सुनने आया है ना—तो सुन! अगर कभी लिखना ही हो तो मेरे साथ न्याय करना। अगर मेरे साथ न्याय न कर सका तो न सुरेश के साथ कर पायेगा, न अपने साथ"

•••